श्री

भाषाग्रंथकारका कथन.

यह ईशावास्यादिक अष्ट उपनिषत् जो भाषाफक्किाविषे हमने कथन करी है सो शंकरभाष्यादिककी रीतिसे अर्थ निरूपण किया है ॥ और सर्व उपनिषदोंका तात्पर्य साक्षात् अथवा परंपरासे एक ब्रह्मात्मस्वरूपकू भेदके बोधमें है ॥ इस हेतुसे सर्व वाक् उपनिषदोंके यथार्थ हैं ॥ यद्यपि विद्वान् पुरुषको तो संशय कदाचित् उत्पन्न होवे नहीं, तथापि अल्पबुद्धि पुरुष उपनिषदोंके नानाप्रकारके वाक्य देखकर संशययुक्त होकर मोहको प्राप्त होवेहै, तातें उचित है जो उपनिषदोंका शांकरभाष्य देखो, अथवा शारीरक शांकरभाष्य देखो.

जिसके देखनेसे उपनिषत्रूप वेदांतवाक्योंकी विरोधशंका दूर होकर बुद्धि एकाग्रताको प्राप्त होवे॥यद्यपि आत्मपुराणमेंभी उपनिषदोंकाही अर्थ है तथापि वहां 'ननु, नच' हो ऐसे बहुत विस्तार है ॥ द्वितीय जो उपयोगी वाक्य थे तिनका ग्रहण किया हुआ है ॥ और यहां संक्षेपसे भावार्थपूर्वक सर्ववाक्योंका ग्रहण करके अर्थ किया हुआ है ॥

॥ श्री ॥

॥ अथ ईशाद्यष्टोपनिषदनुक्रमणिका ॥

इत्यनुक्रमणिका समाप्तः

अथ भूमिका.

इशावास्यसे आदि लेकर जो वेदके मंत्र हैं उनका कर्म विषेसंबंध नहीं है काहे ते जो तिन वेदके मंत्रोंको कर्मोंके अनुपयोगी आत्माके स्वभावके प्रकाशक होनेसे और तिस आत्माका स्वभाव जो है शुद्धपना निषपापपना, तथा एकपना, नित्यपना अशरीरपना, तथा सर्वगतपना, इत्यादिक जो आगे कहेंगे सो कर्मसे विरुद्ध होवे है तांते इन मंत्रोंका कर्म विषे संबन्ध नहीं है और पूर्वोक्त जो आत्माका स्वभाव सो उत्पत्ति होने योग्य अथवा विकारी होनेयोग्य अथवा संस्कार करनेयोग्य अथवा प्राप्त होनेयोग्य अथवा कर्ता भोक्ता होवे तब तौ आत्मा कर्मनका शेष होवे अर्थात् कर्मन विषे उपयोगी होवे जिससे आत्माका स्वभाव वैसा नहीं है यांते आत्मा कर्मोंका शेष नही है. किंवा सर्व उपनिषद्की आत्माके स्वभाव निरूपण करही समाप्ति है तथा गीता आदिक मोक्ष शास्त्र विषे कथन किये हुए जो मोक्षके धर्म तिनोंको आत्मपरायण होनेसे भी आत्माको कर्मनकी शेषता नहीं है।

शंका—यदि आत्मा असंग अकर्ता अभोक्तादिक स्वभाव वालाहै तब कर्मनका विधान वेदने किस निमित्त किया है ?

उत्तर—आत्माका अनेकपना कर्तापना तथा भोक्तापना आदिक तथा अशुद्धपना पापसंबन्धिपना इत्यादिक जो धर्म हैं तिन धर्मोंको अंगिकार करके लोकोंकी बुद्धिसे सिद्ध कर्म विधान किया हैं. जो पुरुष ब्रह्म तेजादिक दृष्ट तथा स्वर्गादिक अदृष्ट रूप कर्मनके फलका अर्थी है; मैं द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य हूं तथा अंग भंगादिक अनधिकारके धर्मवाला नहीं हूं ऐसे जो आपनेको मानता है सो पुरष कर्मों विषे अधिकारी है; ऐसे अधिकारके जाननेवाले जैमिनि ऋषिआदिक कहते हैं तांते यह वेदके मंत्र आत्माके स्वभावको प्रकाशनसे और आत्माको विषे करनेवाला जो स्वभाविक कर्मोंका ज्ञान है तिसको निवृत करते हुए शोक मोहादिक संसारके धर्मनकी निवृतिका साधन जो आत्माके एकतादिक स्वभावका ज्ञान है उसको उत्पन्न करते हैं। और चार वेदनकी एकसौ आठ उपनिषद् हैं तिनोंमेसे ईश १ केन २ कठ ३ प्रश्न

४ मुंडक ५ मांडूक ६ तैत्रीय ७ ऐत्रेय ८ छांदोग्य ९ वृहदारण्यक १० ये दश उपनिषद् मुख्य हैं इन दश उपनिषदूपर श्रीमत् स्वामी शंकराचार्यजीने भाष्य किया है; और मैं तटस्थ दृष्टिसे कहताहूं कि, श्रीमतस्वामी शंकराचार्यजी पक्ष-पातको छोड़कर कर्मकांड उपासना तथा ज्ञानकांडका यथा संभव अर्थ करते गये हैं, कुछ जानबूझकर खैंच पूर्वक अर्थ नही किया है; इस निमित्तसे तिनके किये हुए अर्थोंका आशय लेकर संक्षेपसे भावार्थ पूर्वक अष्ट उपनिषदनको भाषा फक्का विषे करताहूं। सो अष्ट उपनिषदनके नाम ये हैं ईश १ केन २ कठ ३ प्रश्न ४ मुंडक ५ मांडूक ६ तैत्रीय ७ ऐत्रेय ८ ये आठ उपनिषद् हैं और चार वेदोंकी संपूर्ण उपदिषद्नमेंसे कोई उपनिषद् तो ब्राह्मणभागकी हैं कोई मंत्र भागकी हैं और ईशावास्य उपनिषद् तो यजुर्वेदका चालीसवां अध्याय होनेते केवल मंत्रभागकी उपनिषद् है। जो समीप स्थित होकर ब्रह्मको आत्मस्वरूप करके जनावे उसका नाम उपनिषद् है।तात्पर्य यह उपनिषद् नाम वेदांत नामका है काहे ते जो जगतकी उत्पति काल विषे जीवोंके कल्यान वास्ते ईश्वरकी प्रेर्णासे हिरण्य गर्भ रूप ब्रह्मा द्वारा वेद प्रकट हुए हैं। तिन वेदोंके तीन कांडहै कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, और पुरुषके हृदय विषेभी तीन दोष होते हैं मल, विक्षेप और आवर्ण। मल नाम पापोंका है तिसकी निवृति वास्ते कर्मकाण्ड वेद विषे निरूपण किया है। और विक्षेप नाम चंचलताका है उसकी निवृति वास्ते उपासनाकाण्ड वर्णन किया है। और आर्वण नाम अज्ञानका है उसकी निवृति वास्ते तीसरा ज्ञानकाण्ड कथन किया है।सो ज्ञानकाण्ड उपनिषद्का नाम है वह उपनिषद्ही वेदोंका सिद्धांत रूप वेदांत है। और विक्षेप दोषसे रहित चतुष्ट साधन संपन्न केवल ज्ञानार्थी पुरुष इस उपनिषद् रूप वेदांतका अधिकारी है। और ब्रह्मात्म ऐकत्वज्ञान उपनिषदूनका विषे है और ब्रह्मके साथ उपनिषद्नका प्रतिपाद्य प्रतिपादकभाव संबन्ध है। और अत्यंत दुःखकी निवृत्ति तथा परमानंदकी प्राप्ति, उपनिषद्नका प्रयोजन है। पूर्वोक्त प्रकारसे चार अनुबंध वेदांत ग्रंथ विषे होते हैं, सो यहांभी कथन करादिया है। और उपक्रम, उपसंहार १ अभ्यास २ अपूर्वता ३ फल ४ अर्थवाद ५ उपपात्ति ये षट्लिंग उपनिषद्न विषे कथन किये हैं। इन षट्लिंगन द्वारा संपूर्ण उपनि-षद्नका परंपरा अथवा साक्षात् तात्पर्य एक अद्वितीय ब्रह्मात्म स्वरूपके जनावने

विषे है अन्य किसी अर्थके बोधन विषे अभिप्राय नहीं है । जिस प्रकार करके मुमुक्षुको अद्वैत ब्रह्मका बोध हो जावे सोई प्रकार श्रेष्ठ है केवल अद्वैत ब्रह्मके बोध करानेके वास्तेही उपनिषदोंमें सृष्टिके नाना क्रम तथा बहुत प्रकारके जीव ईश्वरके स्वरूप तथा नानाप्रकारके प्रश्न उत्तर और बहुत प्रकार साधन इत्यादि-कके कथनका अभीप्राय है । जो श्रद्धावान उज्वल बुद्धि उत्तम जिज्ञासू है सो अपनी निर्मल बुद्धिद्वारा अथवा शास्त्र प्रतिपादित साधन संपन्न ब्रह्मनेष्टि ब्रह्मश्रोत्रिय गुरूद्वारा वेद वेदांतके तात्पर्यको समझकर निर्पक्ष हुआ ज्ञानाभ्यास द्वारा ब्रह्मानंदको अनुभव करके; वीत राग हुआ शांतिको प्राप्त होता है । और मलिन चित्तवाला मूढ बुद्धि पुरुष तात्पर्यको न समझकर मतमतांतरों विषे फसकर स्वउत्कृष्टता लालचादिकमें अशक्त होकर सर्व काल राग द्वेष करके जलता रहता है और यदि पूर्वापरका विचार किया जावे तो संपूर्ण वेद शास्त्रादिकका तात्पर्य--निवृतिमें है; प्रवृति विषे किसीका अभिप्राय नहींहै । काहेते जो श्रुति माता केवल अप्रच्छिन्न पदार्थ विषे सुख कथन करतीहै और प्रच्छिन्न पदार्थ विषे सुखका निषेध करती है.

तथाच ॥ छांदोग्य—योवैभूमः तत् सुखंनाल्पे सुखमस्ति ॥

अर्थ—यह है जो त्रिपुटि रहित भूमा रूप ब्रह्म है सोई सुखरूप है अल्प अर्थात् प्रच्छिन्न पदार्थों विषे सुख नहीं है और सकाम कर्म प्रतिपादक वेद वाक्यनकाभी पापकर्म परित्याग द्वारा निवृत्ति विषेही तात्पर्य है । काहेते कि प्रवृति विषे कदाचित् सुख नहीं है, यदि वेदवाक्यनका तात्पर्य प्रवृत्तिमें होवे तो संन्यासादिक निवृत्ति प्रतिपादक वाक्य सर्व व्यर्थ होजावें और उत्तर ज्ञान-काण्ड उपनिषद् आदिक संपूर्ण व्यर्थ होजावें; याते सर्व वेदवेदांत उपनिषदोंका तात्पर्य एक अद्वैत ब्रह्मात्म अभेद स्वरूपके बोधनमें है । इस प्रकार मुमुक्षु पुरुषोंको वेद उपनिषद्नका तात्पर्य समझकर और वादविवाद कुतर्कादिकको त्याग कर तथा मतमतांतर खंडन मंडनादिक ग्रंथनकी प्रवृत्तिको छोडकर ब्रह्मात्म अभेद ज्ञानको प्राप्त होकर निरतिशय जीवन्मुक्तिका शांति सुख लेना चाहिये.

अब पूर्वोक्त प्रथम ईशावास्य उपनिषद्के मंत्रनका संक्षेपसे भावार्थ निरूपण करते हैं और मंत्रनके क्रमपूर्वक अंकभी साथ रखते जावेंगे.

श्रीगणेशायनमः । श्रीगुरुभ्योनमः ॥

अथ

श्रीईशादि अष्टोपनिषद् भाषाफक्का ।

बावा हरिप्रकाश परमहंसकृत प्रारभ्यते.

अथ मंगलाचरण प्रारंभः ।

दोहा—चैतन्य ब्रह्म सुखरूप नित, नमो निजातम सार ॥
हरिप्रकाश जिस ज्ञानसे, मिटै स तम संसार ॥ १ ॥
नेति नेति कहि वेद जिस, सो मेरो निज रूप ॥
हरिप्रकाश मन वच थकत, इदमिथ कहि न स्वरूप ॥ २ ॥

कबित्त—जीवोंके कल्याण हित वेद कीने ईश चार करम उपासना सज्ञान उर धारतूं। तीन कांड गाये सकल भ्रम मिटाये एक ब्रह्मको जनाये कर भेदको निवारतूं ॥ एकसौ आठ उपनिषद् चार वेदनकी तिनमें प्रधान दश उत्तम विचारतूं। दश उपनिषद् पर शंकरने भाष्य कन्यो हरिप्रकाश कहै द्वैत दृष्टि डारतूं ॥ १ ॥

दोहा—वेद सार वेदांत जो, उपनिषद् नाम प्रसिद्ध ॥
ईशादिक उपनिषद् अष्ट, भाषा करों सुखनिद्ध ॥ ३ ॥
जिमि शंकर भाष्यादिकका, तात्पर्य सुनहू मीत्त ॥
यथा बुद्धि अनुसार तेंहि, भाषों अर्थ धर चीत्त ॥ ४ ॥
मूढ न पंडित कवि कछु, संतनको मैं दास ॥
तिनकी कृपा कटाक्षते, चितमें उठा हुलास ॥ ५ ॥
लेत सार गुण गंध भ्रमर, कंटक दृष्टि तजि देत ॥
तिमि बुद्धिमान विचारके, सार अंश चुनि लेत ॥ ६ ॥
भूलचूक कछु देखिके, क्षमहु संत सुजान ॥
सुत कहित वचन सुत तोतले, पिता सुने सुख मान ॥ ७ ॥

अथप्रथमईशावास्यउपनिषत्प्रारभ्यते।

मंत्र.

ईशावास्यमिदꣳ सर्व्वं यत्किञ्च जगत्या जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥ १ ॥

अर्थ–ईश जो परमात्मा है, सोई निजरूप हुआ सर्व जनोंका आत्मा है ॥ और यह जो कुछ नाम रूप क्रिया स्वरूप पृथ्वीमें (जगत) दृष्टि आवताहै सो सर्व उस ब्रह्म स्वरूप आत्मा कर व्याप्त है ॥ जैसे भूषण अंतरबाह्य स्वर्ण कर व्याप्त है ॥ तात्पर्य यह है जो अस्ति, भांति, प्रिय रूप ब्रह्म है और नाम, रूप जगतहै ॥ तिस नामरूपात्मक अध्यस्त जगतको आच्छादन अर्थात तिरोधान करके अस्ति, भाति, प्रिय रूप अधिष्ठान ब्रह्मात्म स्वरूपको जानकर अपने आत्माका पालनकर अर्थात अपने आत्मानंदका अनुभव कर ॥ और किसीके धनको मत ग्रहणकर अर्थात अपने अथवा पराया किसीके धनकी इच्छा मत कर ॥ किसका धन है अर्थात मिथ्या होने से किसीका धन नहीहैं याते झूठे की इच्छा मत कर ॥ तात्पर्य यह जो वित्त ईषणा, सुत ईषणा, लोक ईषणा करके तीन प्रकारकी ईषणा है ॥ सो ब्रह्मात्मज्ञानार्थी पुरुषका इन तीनों ईषणाओंकेही सन्यास अर्थात त्याग विषै अधिकार है; कर्ममें नहीं: यह अभिप्राय है ॥ १ ॥

इस प्रकार आत्मज्ञानीको पुत्रादिक तीन ईषणाओंके त्यागसे आत्मज्ञान विषै निष्ठावान होकर आत्माका पालनकरना योग्य है । इसप्रकारसे वेदका अर्थ प्रथम मंत्रमें दिखाया ॥ अब दूसरे मंत्रसे अज्ञानियों (आत्माके ग्रहण विषै असमर्थ अन्य पुरुष को) कर्मका उपदेश करते हैं ॥

सौ वर्ष प्रयंत पुरुषकी परम आयु वर्णन करी है ॥ जो पुरुष यहां सौवर्ष

प्रयंत जीनेकी इच्छाकरता है, सो पुरुष अग्निहोत्रादिक कर्मोंको करता हुआ जीनेकी इच्छा करेः यह वेदकी विधि है॥ इस प्रकार अग्निहोत्रादिक कर्म करते हुए तुझ नर मात्र अभिमानी पुरुष विषैं असुभ कर्मनका लेप होवे नहीं। इससे भिन्न दूसरा प्रकार कोई नहीं है॥ २॥

इस प्रकार प्रथम मंत्र विषै तीन ईषणाओंके सन्यासस ज्ञाननिष्ठा वर्णन कर और दूसेरे मंत्रमें कर्मनिष्ठाका कथन कर अब अज्ञानी पुरुषोंकी निंदा अर्थ तीसेरे मंत्रका आरंभ करते हैं॥

आत्मस्वरूप ज्ञानीका नाम सुर है, तिससे भिन्न अज्ञानी देवादिक असुर हैं॥ तिन बोध रहित अज्ञानी पुरुषों कर प्राप्तहोने योग्य जो पुण्य पाप कर्मोंका फल लोक है, तिस लोकका नाम असूर्य है॥ देवतासे लेकर स्थावर प्रयंत जो यूनिहै, सो संपूर्ण असूर्य नामकरके प्रसिद्ध है॥ और अज्ञानरूप अंध तम करके आच्छादित है॥ तिनोंको वे पुरुष (ज्ञानहीन) मरकर प्राप्त होते हैं॥ वे (अज्ञानी) पुरुष आत्महत्यारे हैं॥ **शंका**॥ वे पुरुष नित्य आत्माका कैसे हनन करते है?॥ उत्तर॥ शुद्धस्वरूप आत्मा विषै "मैं कर्ता, भोक्ता, सुखी, दुखी, हूं"॥ इस प्रकार सुख दुःखादिक धर्म रहित अकर्ता, अभोक्ता, शुद्ध आत्माविषे, कर्तत्व भोक्तृत्त्वादिक धर्मोंका आरोपण करनाही आत्माका हनन है॥ काहेते जैसे कलंक रहित महात्मापर कलंक आरोपण करनाही उसकी हिंसा करनी है; तैसे शुद्ध आत्मामें कर्तृत्त्वादिक धर्मोंका आरोपण करनाही आत्महनन है॥ ३॥

अब जिस आत्मतत्वके ज्ञानकर मोक्ष होवे है॥ तथा जिसके न जाननेसे जन्म मरणादिक संसारकी प्राप्ति होवेहै॥ उस आत्माके वास्तव स्वरूपको चतुर्थ मंत्रमें निरूपण करते हैं॥

सो (आत्मा) अचल अर्थात क्रिया रहित है, एक है, मनसेभी अधिक वेगवाल है॥ भाव यहहै, जो जिस पदार्थकी मन इच्छा करता है तिस पदार्थको सो मन संकल्प कर प्राप्त होता है परंतु यह आत्मा तो तिस मनके गमनसे प्रथमही तहां व्यापकरूप है॥ और इस आत्माको चक्षु आदिक इंद्रिय विषय नहीं कर सकते, काहेते जब चक्षु आदिक इंद्रिय मनकोही विषय नही करसकते, तब मनसे अधिक वेगवान मनका अविषय आत्मा कैसे इंद्रियों का विषय होवे॥ इस

निमित्तसे इंद्रिय आत्माको नहीं प्राप्त होसकते; भाव यह है जो मन, इंद्रिय, जहां जहां जातेहैं ॥ यह ब्रह्मरूप आत्मा आगेही तहां तहां विद्यमान है ॥ आकाशकी न्याई व्यापकरूप होनेसे ॥ और यह आत्मा आप सुमेरु पर्वतवत अचल स्थिर रूप हुआभी शीघ्र गमन करनेहारे जो अन्य मन वायु आदिक हैं तिनको उलंघन कर आगे जाता है ॥ और तिस परमात्माकर प्रेरित हुआ हिरण्यगर्भ रूप समष्टि वायु सर्व प्राणियोंके कर्मोंका विभाग करताहै अथवा धारण करताहै ॥४॥

इन मंत्रनको आलस नहीं है इस अभिप्रायसे पूर्व मंत्र विषे कथन किय अर्थको फिर कथन करतेहैं ॥ पूर्वोक्त आत्मतत्त्व चलता हुआ भी वास्तव स्वरूपसे नहीं चलता है ॥ जसे सूर्यका प्रकाश वास्तवसे अचल हुआभी हाथके हिलने चलने सै हिलता चलता दृष्टि आता है ॥ तैसे वास्तवसे आत्मा निरु-पाधिक होनेसे यद्यपि क्रिया रहित अचलरूप है, तथापि देहादिककी उपाधि-के संबंधसे चलतेकी न्याई प्रतीत होताहै ॥ और सो आत्मा सूक्ष्म रूप होनेसे अज्ञानियोंकी दृष्टिसे अति दूरहै; तथा ज्ञानवानोंका अपना निजरूप होनेसे अति समीप है ॥ और सो आत्मा सर्वके अंतर है तथा व्यापकरूप होनेसे सर्वके बाह्यभी प्रगटहै ॥ ५ ॥

अब दो मंत्र आत्माके यथार्थ ज्ञान पूर्वक फलको निरूपण करतेहैं ॥

जो विवेकी पुरुष ब्रह्मासे आदि स्थावर पर्यंत सर्व भूतनको अपने आत्मा-विषे एकरूप करके देखताहै; तथा सर्व भूतन विषै आपने आत्माको अभेद रूपकरके देखताहै; सो पुरुष कभी दुखको नही प्राप्त होता ॥ अथवा किसीकी निंदा नही करता ॥ काहेते जो आपसे भिन्न की निंदा होतीहैं ॥ ६ ॥

और जिस विवेकी पुरुषकी ज्ञान दशा विषै सर्व चराचर भूत आत्मभावको प्राप्त भयेहैं ॥ तथा जिस विद्वानने गुरु शास्त्रके उपदेशसे आत्माकी एकता निश्चय करीहै, तिस विवेकी पुरुषको तिस ज्ञान कालमें, अथवा तिस आत्मा विषे, आवरणरूप मोहकी तथा विक्षेपरूप शोककी प्राप्ति होवे नहीं ॥ मोह शोककी निवृत्तिभी मूलाविद्या सहितही होवेहैं ॥ याते बीजनाश होनेसे फिर क-दाचितभी शोक मोह होवेनहीं ॥ ७ ॥

अब फिर आत्माके वास्तव स्वरूपका और मंत्रसे उपदेश करतेहैं ॥

सो आत्मदेव सर्वत्र व्यापक है, स्वयं ज्योतिरूप है, लिंग शरीरसे रहित-है, व्रण और नाडीसे रहित है ॥ तात्पर्य यह है जो स्थूल शरीरसे रहितहै और शुद्ध है अर्थात् अविद्यारूप कारण शरीरसे रहित है तथा धर्म-अधर्म पापरूपसे रहित है, सर्वज्ञ है तथा मनका नियामक है, सर्वके ऊपर है तथा नीचे और ऊपर आप है ॥ सो परमात्मा प्रजापतिरूप से सर्व प्राणियोंके कर्मों-को तथा तिनकर्मोंके फलोंको यथार्थरूपसे धारण करेहै ॥ ८ ॥

इस ईशावास्य उपनिषदके प्रथम मंत्रमें सर्व ईषणाके त्यागसे ज्ञान नि-ष्ठा वर्णन करी ॥ और सर्व ईषणाके त्याग विषै असमर्थ जीनेकी इच्छा करने-वाले अज्ञानियोंके प्रति दूसरे मंत्रमें कर्मनिष्ठा कथन करी ॥ इसप्रकार वेदने आपही आत्मज्ञान तथा कर्मोंका परस्पर विरोध दिखाया ॥ काहेते जो तिन दोनोंके कारण तथा फल भिन्नभिन्न होनेसे समुच्चय संभवै नहीं ॥ और जिन्हों का समुच्चय परस्पर बने हैं सो आगेके मंत्रसे प्रगट कर दिखाते हैं ॥

सो कर्म तथा उपासनाका समुच्चय बने है ॥ अब तिन कर्म तथा उपास-नाके भिन्न भिन्न करनेकी निंदा करते हैं ॥ सो निंदा केवल समुच्चयके विधान अर्थ है ॥ समुच्चय कहिये उपासना करने तथा साथही कर्म करनेको ॥ सो आगे दिखातेहैं ॥ जो केवल अविद्यारूप कर्मोंको करताहैं सो पुरुष अदर्शन रूप तमको प्रवेश करताहैं और जो केवल विद्यारूप उपासना को करता है, सो पुरुष उससेभी अधिक दारुण तमको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

काहेते जो, कर्मरूप अविद्याका फल पितृलोक होवेहै और उपासनारूप विद्यासे देवलोक तथा ब्रह्मलोक प्राप्त होवैहै ॥ (ऐसे कहते हैं) इस प्रकार पूर्व आचार्योंसे हमने श्रवण किया है ॥ जो हमको वे कहते भये हैं ॥ १० ॥

जो पुरुष कर्म तथा उपासना दोनोंको जानकर साथही करता है सो पुरुष कर्मों करके निषिद्ध कर्मनको त्याग देवभावरूप अमृतको प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥

अब कारण उपासना तथा कार्य उपासनाके समुच्चयके विधान अर्थ भिन्न भिन्न कारण उपासना तथा कार्य उपासना का निषेध करते हैं ॥ जो पुरुष केवल अव्यक्तरूप मायाकी उपासना करताहैं सो पुरुष अदर्शनरूप तमको प्रवेश करताहै ॥ और जो पुरुष हिरण्यगर्भ रूप कार्यकी उपासना करताहै ॥ सो पुरुष अधिक घोर तमको प्राप्त होताहैं ॥ १२ ॥

अब इन दोनों उपासनाके समुच्चय विषे कारण और स्वरूप तथा फलका भेद कथन करतेहैं ॥ हिरण्यगर्भ रूप कार्यकी उपासनासे अणिमादिक ऐश्वर्यरूप अन्य फल कह्याहै ॥ और कारणरूप अव्याकृत मायाकी उपासनासे मायामें लयरूप अन्य फल कह्या है ॥ जैसे सुषुप्तिमें लय होनेसे विक्षेपकी निवृत्ति होती है तैसे मायामें लय होना रूप फलभी संभवता है ॥ इस प्रकार बुद्धि मान आचार्योंके वचनोंको हमने श्रवण किया है ॥ जिन आचार्योंने हम मुमुक्षुजनोंसे कहा है ॥ १३ ॥

जो पुरुष कार्य उपासना तथा कारण उपासनाको मिलाकर उपासना करताहै सो पुरुष हिरण्यगर्भरूप कार्यकी उपासनासे अनैश्वर्य अधर्म कामादिकरूप मृत्युको तर करके अर्थात् दूर करके प्रकृतिमें लय रूप अमृत भाव फलको प्राप्त होताहै ॥ १४ ॥

वह जिस मार्गसे अमृतको प्राप्त होताहै, सोई कहते हैं ॥ जो सत्यहै, वह सो आदित्य है ॥ जो वह उस मंडलविषे पुरुष है और जो यह दक्षिण नेत्र विषे पुरुष है, सो दोनो सत्य ब्रह्म हैं ॥ ऐसे उपासना करता है ॥ और यथोक्त कर्म करता है ॥ सो अंतकालके प्राप्त भये सत्य आत्माको आत्मस्वरूपता करके प्राप्तिके द्वारकी याचना करताहै ॥ प्रकाशमय पात्रसे सत्यरूप आदित्य मंडल विषे स्थित ब्रह्मका द्वार ढका हुआहै ॥ इस कारणसे प्रतीत होता नहीं ॥ सत्यरूप परमात्माका उपासक जो मै हूँ; सो हे पूषन अर्थात् पोषन करनेहारे सूर्य ! तिस (द्वार)को तू खोल दे; सत्य है धर्म जिस (मुझ) का, तिस मुझ सत्य धर्मीके अर्थ ॥ १५ ॥

तहां किस प्रयोजनके वास्ते खोलदो ? ऐसी शंकाका उत्तर—हे सर्वके पोषक सूर्य ! हे अकेले गमन करनेवाले ! हे सर्वके नियंता ! तथा हे रसोंके अंगिकार करनेहारे ! हे प्रजापतिके पुत्र ! अपनी संपूर्ण किरणोंको दूरकर, और जो तेरा ताप करनेहारा ज्योतिरूप तेज है, तिसको संकोचले जिससे तेरा अत्यंत कल्याणरूप जो है; तिसको तुझ आत्माके प्रसादसे देखूँ ॥ किंवा मैं तुझको अनुचरकी न्याईं याचना नही करताहूं, किंतु यह जो आदित्य मंडल विषे स्थित पुरुष अर्थात् परमात्मा है सो मैंहीहूं ॥ १६ ॥

इसके अनंतर जब मुझ मरनेहारे का प्राणरूपवायु जो है सो अध्यात्म भावरूप प्रच्छेदको छोड कर अधिदैवतरूप सर्वात्मक अमृतमय वायुरूप सूत्रात्माको प्राप्त होवे अर्थात् ज्ञान और कर्मके संस्कार कर युक्त यह लिंग शरीर इस स्थूल शरीरसे बाह्य गमन करे तब इसे मार्ग याचनाके सामर्थ्यसे देखना ॥ और अब यह स्थूल शरीर अग्नि विषे होम किया हुआ भस्म होवे; ओंकारकी जैसी उपासना होवे तैसी होवे; हे संकल्परूप क्रतो ! जो मुझको स्मरण करने योग्य है तिसका यह समय प्राप्त हुआ है ॥ यांते स्मरणकर ॥ और जो मैने बाल अवस्था से लेकर अब प्रयंत कर्मानुष्ठान किया है, तिनोंको स्मरणकर ॥ हे क्रतो ! मैंने जो कर्म किया है तिनको स्मरणकर ॥ यहां फिर फिर कथन आदरके निमित्त है ॥ १६ ॥

अब फिर अन्य मंत्रसे मार्गकी याचना करतेहैं ॥ हे अग्ने ! शोभन मार्गसे अर्थात् देवयान मार्गसे मुझको लेजा ॥ क्यों कि, मैंने गतागतरूप दक्षिणायन मार्गसे बहुत खेदको पायाहै याते जीवनेके अर्थ तुझको मैं याचताहूं ॥ यांते वारंवार गमनागमन रहित देवयानमार्गसे मुझको कर्मफलके भोग अर्थ लेजा ॥ क्या करता हुआ लैजा ? सो कहतेहैं ॥ हे देव ! शास्त्रमें जैसा पुण्यका फल कह्याहै तिससे युक्त हमको और हमारे सर्व कर्म तथा उपासनारूप ज्ञानोंको जानताहुआ लेजा ॥ किंवा हमसे जो कुटिल वचनरूप पाप भयेहैं तिनको नाशकर, जिससें बिशुद्ध हुआ अपने इष्टको प्राप्त होऊँ ॥ यह अभिप्रायहै ॥ और अब हम तेरी बहुत सी पूजा करनेको समर्थ नही हैं ॥ यांतें तुझ अर्थबहुत से नमस्कारकी उक्ति अर्थात वचन करतेहैं ॥ अर्थ यह जो तेरी नमस्कार से पूजा करते हैं ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्री मत् स्वामी शंकराचार्यादिकोंने ईशावास्य उपनिषदके अठारह (१८) मंत्र रखकर भाष्यादिक कियाहै ॥ हमनेभी तिनहींके अनुसार अठारह (१८) मंत्र रखकर अर्थ कियाहै ॥ और कईएक महात्मा पंडित सत्रह (१७) मंत्रही ईशावास्यउपनिषदके कथन करतेहैं ॥ सो इस प्रकार कहतेहैं ॥ पूर्वोक्त षोडशवे (१६) मंत्रको अंगिकार न करके और पंचदशवें मंत्रको सतरवें अंक पर पढकर इस मंत्रके उत्तरार्द्ध पदनको दूर करके अन्य प्रकार उतरार्द्धको पाठकर यह अर्थ करतेहैं ॥ "हिरण्यमय पात्र अर्थात प्रकाश

मय पात्रसे सत्य स्वरूप परमात्माक मुख अर्थात सूर्य मंडल विषे स्थित सत्य रूप ब्रह्मका मुख अर्थात स्वरूप अथवा द्वार आच्छादितहै सो किसप्रकार खुले? अब महावाक्यका उपदेश करतेहै ॥ योसावादित्येपुरुषः सोसावहम् ॥ अर्थ यह जो सो आदि—मंडल विषे स्थित परमात्मा पुरुषहै सो मै हूं ॥ इस प्रकार अभेद ज्ञानसे परमात्माके सत्य स्वरूपका आवर्ण दूर होजाताहै " ऐसे अर्थ लगातेहैं ॥ यहभी अंगीकार है ॥

सोरठा—ईशावास्य पछान, इति श्रीमुख उपनिषदयह।
हरिप्रकाश हो ज्ञान, पठे सुने नित्य प्रेमसे ॥ १ ॥

इतिश्रीईशावास्य उपनिषद यजुर्वेदका चालीसवां अध्याय भाषा फक्का, बाबा हरिप्रकाश परमहंस कृत संपूर्ण ॥ शुभमस्तु ॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

श्रीपरमात्मनेनमः ॥

अथ श्रीसामवेदीय तलवकारोपनिषद् प्रारभ्यते ॥

॥ दोहा ॥

तलवकारउपनिषद् कठिन, सामवेदकी जान ॥
हरिप्रकाश लख केन तिहिं, दूसर नाम प्रधान ॥ १ ॥

" केनेषितं " " अर्थ—यह किस कर वांच्छित " इससे आदि लेकर जो यह सामवेदकी तलवकार अर्थात् केन नामक उपनिषद् है सो केवल परब्रह्मको विषय अर्थात् प्रतिपादन करनेवाली है ॥ इस प्रकारसे इस केन उपनिषदरूप नवम अध्यायका प्रारंभ होता है ॥ तात्पर्य यह है कि, सामवेदकी तलवकार शाखाके नौ अध्याय हैं तहां, प्रथम अष्ट अध्यायों विषे संपूर्ण कर्म उपासना कथन किया है ॥ ये सर्व कर्म तथा उपासना जैसे शास्त्रों विषे कहेहैं तैसे अनुष्ठान कीये हूए निष्काम मुमुक्षु पुरुषोंको अंतःकरणकी शुद्धिके कारण हैं और उपासना रहित सकाम पुरुषोंको श्रौतस्मार्तकर्म अर्थात् श्रुति स्मृति उक्त कर्म दक्षिणायन मार्ग तथा पुनर्जन्मके अर्थ होते हैं ॥ स्वभाविक शास्त्र निषिद्ध जो प्रवृत्ति है उससे पशुसे आदि स्थावर प्रयंतोंकी अधोगति होतीहै ॥ तैसे हुए इन ज्ञान और कर्म दोनो मार्गोंमेंसे किसी एक मार्गपरभी जो प्रवृत होते नहीं सो निषिद्ध कर्मके अनुष्ठान करनेहारे बारंबार जन्म मरणको अंगिकार करनेहारे तुच्छ प्राणी होतेहैं ॥ और बारंबार जन्म मरणको पाते रहतेहैं ॥ और शुद्ध चित्त वाला निष्काम पुरुष इस जन्म विषै किये हुए अथवा पूर्व जन्मविषै किए हुए किसी पुण्यरूप संस्कारके उद्भवसे बाह्यसाध्य स्वर्गादिक फल तथा यज्ञादिक साधनोंके संबंधसे विरक्त होकर प्रत्यक् आत्मा का जिज्ञासू होताहै ॥

अर्थात् उसको प्रत्यक् आत्माके जाननेकी इच्छा होती है ॥ सो उसी (प्रत्यक् आत्माको) प्रश्न उत्तरमय "किस करवांछित" इत्यादिक रूपसे यह श्रुति केनउपनिषद दिखाती है । कोई एक शिष्य ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मश्रोत्रिय गुरुके निकट विधिपूर्वक जाकर और प्रत्यगात्मासे भिन्न अपने रक्षा कर्ताको न देखता हुआ और अभय, नित्य, अचल वस्तुकी इच्छा करता हुआ "किसकर वांछित" इत्यादिक रूप अर्थको पूछता भया ॥ ऐसी कल्पना करते हैं ॥ शिष्यउवाच ॥

मूलमंत्र—केनेषितं पतति प्रेषितं मनःकेन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।
केनेषितां वाचमिमा वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥ १ ॥

अर्थ॥ हे गुरो ! किस कर वांच्छित अर्थात् अभिप्रायका विषय हुआ और किसकार्य अर्थ भेजा हुआ मन अपने विषयके प्रति जाता है और किसकर भेजा हुआ प्रथम अर्थात् सर्व इंद्रियों विषे मुख्य प्राण अपने व्यापारके प्रति जाता है; और किस कर वांच्छित इस शब्दरूप वाचाको लौकिक जन कहते हैं; तैसे चक्षु और श्रोत्रको अपने अपने व्यापार विषे कौन देव भेजता है ? ॥ १ ॥ ऐसे पूछने हारे शिष्यकेतांई गुरु वक्ष्यमाण उत्तरको अर्थात "श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो" इत्यादिक उत्तर कहते हैं॥श्रीगुरुरुवाच॥हे शिष्य ! तुमने जो पूछा है ॥ मनादिक करणके समूहके कौन देव उनके उनके विषयोंके प्रति भेजनेहारा है ? अथवा सो कैसे भेजता है ? तिसका उत्तर श्रवण कर ॥ जिस कर पुरुषशब्दको श्रवण करता है, सो शब्दके श्रवणका साधन है अर्थात शब्दका प्रकाशक जो श्रोत्र है, सो तिस श्रोत्रका श्रोत्ररूप है ॥ फिर पूछा है कि चक्षु और श्रोत्रको कौन देव भेजताहै ? सो तुमारे प्रश्नका उत्तर ऐसा देना चाहिये कि वहीदेव श्रोत्रादिक इंद्रियोंकोभी भेजता है ॥ "सो देव श्रोत्रका श्रोत्ररूप है" यह उत्तर मेरे प्रश्नके अनुसार नहीं है ? इस शंकाका समाधान यह है॥ हे शिष्य! तिस देवको अन्य प्रकारका कोईभी चिन्ह जाननेको अशक्य है; याते इसी प्रकारका उत्तर संभवे है ॥ ताते हे शिष्य ! सो चैतन्यात्मा श्रोत्रका श्रोत्र है; तथा मनका मन है और जो चैतन्यात्मा वाक्यका वाक्य है; सोई चैतन्यात्मा प्राणका प्राणरूप है तथा चक्षुका चक्षु रूप है ; तात्पर्य यह है कि, यह सर्व श्रोत्र, मन, नेत्र वाक्यादिक, उस चैतन्यात्माकी सत्ता स्फूर्ति कर अपने अपने कार्य विषैं प्रवृत्त होते हैं ॥ उस चैतन्यात्माकी सत्ता स्फूर्तिके विना यह सर्व श्रोत्र मनादि-

क जड़ हैं, इसीसे अपने अपने कार्यविषे प्रवृत्त होनेको असमर्थ हैं ॥ इस प्रकार मन इंद्रियादिकसे उस प्रेरक चैतन्यात्माको भिन्न जानकर और तिन मनादिकोंमें आत्मत्व भाव त्यागकर धीर विवेकी पुरुष सर्व पुत्र, मित्र, कलत्र और संबंन्धियोंमें अहं मम भाव व्यवहाररूप इस लोकविषयक सर्व ईषणा को त्याग करके मरणधर्मसे रहित होते हैं ॥ २ ॥ श्रोत्रादिक कोभी सत्ता स्फूर्ति देनेहारा प्रकाशक आत्मा है इस निमत्तसे उस स्वयंज्योति आत्मा विषै न चक्षु इंद्रिय प्राप्त होसकतीहै, न वाक्य इंद्रिय और न मनही प्राप्त हो सकता है ॥ हे शिष्य ! जिस कारणसे मनादिकों सेही ज्ञान होता है और आत्मा स्वयंप्रकाश होनेसे मनादिकोंका विषय नहीं है याते मनादिकोंसे अविषय आत्माको हम नहीं जान सकते ॥ और जिस प्रकार शिष्यको गुरु उपदेश करते हैं सो भी हम नहीं जानते ॥ हे शिष्य ! यद्यपि ब्रह्मात्मा मन वाणी आदिकोंका अविषय है तथापि निषेध मुखकरके श्रुति भगवती अधिकारी पुरुषोंके ताईं उपदेश करती है कि, यह आत्मस्वरूप ब्रह्मकार्यसे भिन्न है, तथा कारणसे न्यारा है ॥ इस प्रकार पूर्वाचार्योंसे हमने श्रवण किया है जो हमको वह उपदेश करते भये है ॥ ३ ॥ हे शिष्य जो स्वयं प्रकाश अविषय आत्मा है, उसका स्वरूप फिर श्रवण कर ॥ जो आत्मा वाणीकर नहीं कहा जाता, और जिसकी प्रेरणा कर प्रेरित हुई वाणी नाना प्रकारके शब्दोंको उच्चारण करती है ॥ तिस प्रत्यक् देव स्वरूपको तूं ब्रह्मरूप जान ॥ और जिसकी इदं विषय रूपसे पुरुष उपासना करता है सो विषय जड़ प्रच्छिन्न पदार्थ ब्रह्म नहीं है ॥ ४ ॥ और जो आत्मा मन कर मनन नहीं हो सकता तथा जिस आत्माकर प्रकाशित हुआ मन नाना प्रकारका संकल्पविकल्प करता है (महात्मा ऐसेही कहते हैं) उसीसाक्षी आत्माको तूं ब्रह्मरूप जान ॥ और जिसकी इदं रूपसे लोक उपासना करते है सो ब्रह्म नहीं है ॥ ५ ॥ जिस आत्माको अंतःकरण की वृत्ति सहित चक्षु इंद्रियसे लोक नहीं देखते हैं ॥ तथा जिस चैतन्यरूप ब्रह्मसे अंतःकरणके भेदसे भिन्न भिन्न चक्षुकी वृत्तियोंको विषयकिया जाता है तिसीको तूं ब्रह्म रूप जान ॥ और जिसकी इदं रूपकर लोक उपासना करते हैं सो ब्रह्म नहीं है ॥ ६ ॥ जिस आत्माको पुरुष श्रोत्र इंद्रिय कर नहीं सुनता अर्थात् विषय नहीं कर सकता ॥ तथा जिस चैतन्यात्मा कर प्रकाशित हुई श्रोत्र

इंद्रिय नाना प्रकारके शब्दोंको श्रवण करती है, उस चैतन्यात्माको तूं ब्रह्मरूप जान; और जिस प्रच्छिन्न जड पदार्थको ब्रह्मरूप जानकर लोक उपासना करते हैं वह ब्रह्म नहीं है ॥ ७ ॥ जिस ब्रह्मको नासिकापुटके भीतर स्थित और अंतःकरण तथा प्राणवृत्तिकर सहित घ्राण इंद्रिय लौकिक गंधकी न्याई विषय नहीं करता वरन जिस चैतन्यात्मासे प्रकाशित हुआ घ्राण इंद्रिय अपने विषय की और जाता है, तिसीको तूं ब्रह्मरूप जान ॥ जिसकी इदं रूप करके लोक उपासना करते हैं ॥ सो ब्रह्म नहीं है ॥ ८ ॥ इति श्रीतलवकारोपनिषद्गत प्रथमखंडः संपूर्णः ॥ १ ॥

ॐ ॥ श्रीपरमात्मनेनमः ॥ अथ तलवकारोपनिषद्गत द्वितीय खंड प्रारभ्यते ॥ इस रीतिसे त्याग और ग्रहण करने योग्य वस्तुसे विपरीत आत्मा रूप तूं ब्रह्म है ॥ ऐसे गुरूनें शिष्यकीतईं उपदेश किया यही गुरुका तात्पर्य था ॥ अब मन वाणीका विषय रूप करके ब्रह्मस्वरूप आत्माको शिरुय निश्चय न कर लेवे, इस अभिप्रायसे गुरु तिस शिष्यकी परीक्षा करते है ॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ हे शिष्य यदि तूं मानै जो ब्रह्मके स्वरूपको मै सुखेनहीं जानताहूं ॥ तब ब्रह्मके स्वरूपको अल्पही जाना है ॥ निश्चय कर यथार्थ ब्रह्मके स्वरूपको तूने नहीं जाना; यद्यपि अधिदैव उपाधि कर विशिष्टब्रह्मके स्वरूपको जाना है तथापि तूने यथार्थ ब्रह्मके स्वरूपको नहीं जाना ॥ और यदि तूने इस ब्रह्मके स्वरूपको अल्प अध्यात्म उपाधिकर विशिष्ट जाना है; यदि तू ऐसा मानताहै तौभी तूने ब्रह्मके स्वरूपको अल्पही जाना है यथार्थ नहीं जाना ॥ हे शिष्य! मै यह मानताहूं जो अबभी तुमको ब्रह्मका विचार करना उचित है ॥ काहेतें जो विचारसे विना यथार्थ ब्रह्मके स्वरूपका बोध होना अति दुर्घट है ॥ १ ॥ ९ ॥ इस प्रकार गुरूने परीक्षा लेनेके निमित्त कहा ॥ तब शिष्य एकांत देश विषे स्थित होकर, जिस ब्रह्मात्माके स्वरूपका गुरूने उपदेश कियाथा, तिस आत्माके यथार्थ स्वरूपको अपनी बुद्धिमें आरूढ करके, गुरूके समीप आकर वक्ष्यमाण वचन कहता भया ॥ **शिष्यउवाच** ॥ हे गुरो ! मैं ब्रह्मको जानता हूं ऐसा मैं मानताहूं ॥ **श्रीगुरुरुवाच** ॥ हे शिष्य ! तूं ब्रह्मके स्वरूपको कैसे जानता है ॥ **शिष्यउवाच** ॥ हे गुरो ! मैं ब्रह्मको जानताहूं ॥ ऐसे विषय रूपसे मैं ब्रह्मको नहीं मानता, और मैं ब्रह्मको जानता हूं ॥ अथ

वा नही जानता ॥ ऐसे मैं नही मानता ॥ **श्रीगुरुरुवाच** ॥ हे शिष्य ! यह तूने विरुद्ध कहा है काहेते मैं ब्रह्मको जानता भी हूं, और नहींभी जानता ॥ जब तूं मानता है ॥ जो मैं ब्रह्मको नहीं जानता ॥ तब मै ब्रह्मको जानताहूं ॥ यह कैसे कहता है ॥ और जब मैं ब्रह्मको जानता हूं ॥ तब मै ब्रह्मको नही जानता यह कैसे कहता है ? ऐसे गुरूने परीक्षाके निमित्त कहा तबभी शिष्य चलाय मान न होता भया और सिंहकी न्याईं गर्जना करता हुआ अपने यथार्थ अनुभवको प्रकट करता भया ॥ **शिष्यउवाच** ॥ हे गुरो ! जो कोई अधिकारी हमारे ब्रह्मचारियोंके मध्य उस आत्माके स्वरूपको जानता है सो मेरी कही रीतिसे ही जानता है ॥ सो मेरी रीति यह है कि "ब्रह्मात्मा ज्ञात है अथवा अज्ञात है इन दोनो व्यवहारोंसे विलक्षण है" ॥ जिस ज्ञात अज्ञातसे भिन्न स्वयंप्रकाश आत्माके स्वरूपका गुरूने शिष्यके प्रति उपदेश कियाथा ॥ उस स्वयंप्रकाश आत्माके स्वरूपको शिष्यने निश्चय करके ही ज्ञात अज्ञातसे भिन्न कहा ॥ २ ॥ १० ॥

यह गुरु शिष्यका संवाद तो पूर्ण हुआ ॥ अब आगे श्रुति भगवती गुरुशिष्यके संवाद विना आपही अधिकारी जनोंके प्रति उपदेश करती है, जो विद्वान मन वाणीके अविषय ब्रह्मके स्वरूपको जानता है; सोई विद्वान यथार्थ ब्रह्मके स्वरूपको जानता है ॥ और जो मन वाणीका विषय रूप ब्रह्मको मानता है वह ब्रह्मके स्वरूपको यथार्थ नहीं जानता॥विद्वानोंको ब्रह्म अज्ञातहै और अज्ञानियोंको ब्रह्म ज्ञात है ॥ तात्पर्य यह जो मन वाणीका अविषय यह स्वयं प्रकाश ब्रह्म है ऐसे स्वयं प्रकाश ब्रह्मको अविषय रूपसे जाननेवाला विद्वा नही यथार्थ करके जानता है ॥ और अज्ञानी पुरुषोंको तो देह इंद्रिय आदिकों विषै आत्मत्वबुद्धि होती है इससे वे ब्रह्मको विषय रूपसे जानते हुए भी सो अज्ञानी पुरुष यथार्थ रूपसे ब्रह्मके स्वरूपको नही जानते ॥ ३॥११॥ और जितनी अंतःकरणकी वृत्ति उत्पन्न होती हैं सो संपूर्ण वृत्ति आत्माके प्रकाश कर प्रकाशित होकर उत्पन्न होती हैं. आत्माके प्रकाश विना कोई वृत्ति उत्पन्न होती नहीं ॥ इस हेतुसे सर्व वृत्तियोंका विषय रूपसे प्रकाश करनेवाला आत्मा तिन वृत्तियोंसे भिन्न स्वयंप्रकाश रूप है ॥ और इस आत्माके ज्ञान करकेही पुरुष निश्चय कर अमृतभावको प्राप्त होता है ॥ अर्थ यह जो जन्म मरणादिकसे रहित तथा आनंदस्वरूप जो ब्रह्मात्मा है

तिसको प्राप्त होता है ॥ और आत्माके जाननेसे बल अर्थात् सामर्थको प्राप्त होता है ॥ जिस विद्यारूप बलसे जन्म मरणादिक को प्राप्त होता नही ॥ और धन, सहाय, मंत्र, औषध, तप और योग इन कर प्राप्त होनेवाला जो सामर्थ है उस बलसे मृत्युका तरण होता नही ॥ और ब्रह्म विद्यारूप सामर्थको तो अपने स्वरूपसेही प्राप्त होता है ॥ इस कारणसे फिर जन्म मरणको प्राप्त होता नहीं ॥ ४ ॥ १२ ॥ यह पुरुष यदि इस जन्ममेंही अपने शुद्ध स्वरूपको जान लेवे तो सत्यरूप तथा आनंदरूप जो ब्रह्म है तिसको प्राप्त होता है ॥ और जब यह पुरुष भारतखंड विषै इस अधिकारी मनुष्य शरीरको प्राप्त होकर परमेश्वरकी मायाकर मोहित हुआ तथा तुच्छ विषय सुख विषै आसक्त हुआ अपने आनंदस्वरूप आत्माको नहीं जानता तब इसकी बडी हानि होती है; जिस हानिकर यह पुरुष वारंवार जन्म मरणादिक दुखोंको प्राप्त होता है ॥ तथा काम क्रोधादिक जो चोर हैं तिनके अधीन हुआ अपने कर्म अनुसार अनेक ऊंच नीच शरीरोंके ग्रहण करनेसे मुक्त नहीं होता ॥ इसी हेतुसे सो अज्ञानी नष्ट हुए जैसा होता है ॥ याते इस अधिकारी मनुष्य शरीरमें ब्रह्मात्म स्वरूपके ज्ञानको प्राप्त होकर ब्रह्मानंद मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ और यह एकही आत्मा स्थावर जंगम भूतों विषै अनेक हुआ प्रतीत होता है ॥ जैसे वास्तवसे एक चंद्रमा जलपात्रोंके भेदकरके अनेक रूपसे प्रतीत होता है ॥ तैसे एक आत्मा उपाधिके भेद कर अनेक रूपसे प्रतीत होता है नहीं तो वास्तवसे एकही; है ऐसे सर्व भूतों विषै परमार्थसे एकही परमात्मा अनेक रूपसे स्थित है ॥ इस प्रकार जो धीर अर्थात् विवेकी पुरुष विशेष कर चिंतन करके देह इंद्रियादिकों विषै अहं ममादिक बुद्धिको त्याग करता है वह इस वर्तमान शरीरको छोड़कर अमृत भाव मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ वह फिर जन्म मरणादिक दुःखोंको प्राप्त नहीं होता ॥ ५ ॥ १३ ॥

इति श्रीतलवकारोपनिषद गत द्वितीय खंड संपूर्ण ॥ २ ॥

ॐ श्रीपरमात्मनेनमः

अथ श्रीकेनोपनिषद गत तृतीय खंड प्रारभ्यते ॥

अब ब्रह्मविद्याकी स्तुति अर्थ यक्ष भगवानकी आख्यायिका कथन करते हैं॥ अथवा सर्व संसार धर्मसे रहित रूपसे उपदेश किया जो ब्रह्म है तिस विषै शून्यकी शंका अज्ञानी पुरुषोंको होती है उस शंकाकी निवृत्ति अर्थ यक्ष भगवानकी कथा कहीहै. अथवा अति बुद्धिमान अग्नि वायु इंद्रादिक देवताभी प्रयत्नसे उमा देवीके संवाद द्वाराही जानते भये हैं ॥ इस कारणसे आज कलके बुद्धिमान अधिकारी पुरुषोंकोभी ब्रह्म विद्याकी प्राप्ति वास्ते बहुत यत्न करना उचित है ॥ इस तात्पर्यके जनाने वास्ते यक्षभगवानकी कथा कहीहै ॥ अब उस कथाको आगे निरूपण करते हैं ॥

एक काल विषै देवता, स्वर्ग लोक विषे स्थित, ब्रह्म विद्याके प्रतापसे सर्व असुरोंको जय करते भये; जैसे अग्निकी समीपतासे पतंग नाशको प्राप्त होता है; तैसे ब्रह्मवेत्ता देवताओंकी निकटतासे असुर नाशको प्राप्त होते भये ॥ जैसे अग्निके संबंधसे लोहाघास तृणादिकको दाह करने विषै समर्थ होता है ॥ लोहा अग्निके संबंध विना केवल आपही तिन तृणादिकोंके जलाने विषे समर्थ होता नहीं तैसे ब्रह्मरूप अग्नि कर प्रकाशमान अर्थात बलवान हुए देवता तिन असुरोंका नाश करते भये ॥ ब्रह्मरूप अग्निके सामर्थ विना देवता रूप लोहा तिन तृणोंकी न्याई असुरोंके नाश करने विषै समर्थ होते नहीं ॥ यांते ब्रह्म तेजसेही देवतावोंको असुरोंके नाश करनेका सामर्थ प्राप्त हुआ है ॥ **शंका** ॥ यदि ब्रह्म तेजसेही देवताओंको असुरोंके नाश करनेका सामर्थ प्राप्त हुआ है और ब्रह्मके सर्वत्र व्यापक होनेसे सर्वका आत्मा है इस निमित्तसे हममें भी ब्रह्म विद्यमान है तो हमको भी शत्रुओंके नाश करनेका सामर्थ प्राप्त हुआ चाहिये ॥ समाधान ॥ जैसे सूर्यका प्रकाश सर्वत्र व्यापक है परंतु सूर्यकांत मणिविषै स्थित हुआही वह पटादिकोंके दाह करनेमें समर्थ होता है, अन्य विषै स्थित हुआ वह दाह करता नहीं ॥ तैसे ब्रह्म तेज भी यद्यपि सर्वत्र यापक है तथापि सतोगुण प्रधान देवताओं विषै विशेष कर प्रकट होता है ॥

इस हेतुसेही देवता ब्रह्मबलसे असुरोंको जय करते भये हैं ॥ किन्तु फिर भोगों विषै आसक्त हुए ब्रह्मवेत्ता देवता भी इस बातको विस्मरण करके कि "ब्रह्म बलसे हमारी जय हुई है" यह मानते भये कि, "हमने अपने बलसेही असुरोंको जय किया है" जैसे मरणांतकालकी न्याई दुखको प्राप्त हो कर, कोई पुरुष, फिर किसी दयालु पुरुषकी कृपा कर, दुःखसे छूटकर पुनः भोग वडाई में आसक्त होकर, उसके उपकारको विस्मरण कर देवे; तैसे ब्रह्मके बलकर असुरोंको जीतकर रजोगुण प्रधान हुए भोगों विषै आसक्त होकर देवतावोंने ब्रह्मके उपकारको भुला दिया और रजोगुणयुक्त होकर ऐसे अभिमानको करते भये, कैसा अभिमान है जो अपने नाशका कारण है, सो अभिमान यह है, जो हमनेही अपने बल बुद्धिसे असुरोंको जय किया है, यह हमारीही जय है, और हमाराही यश है, हमहीं सुन्दर यौवन युक्त बलवान हैं, हमारे समान अब इस संसारमें कौन है? ॥ १ ॥ १४ ॥

इस प्रकार जब नाशका कारण अभिमान देवताओंको प्रगट हुआ तब गर्व प्रहारी पिताकी न्याई दयालु ईश्वर (ब्रह्म) तिन देवताओंके कल्याण वास्ते इस प्रकार विचार करता भया; "ये देवता मुझ परमब्रह्मके तेज बलसे जयको प्राप्त होकर भी कृतघ्न की न्याईं मेरा विस्मरण करते भये हैं और प्रच्छिन्न अभिमान में फंसकर मोहके वश अपना प्राक्रम पुरुषार्थ मानते भये हैं ॥ इस मिथ्या अभिमानसे ये देवता पराभवको प्राप्त हो जावेंगे; याते इनपर कृपा करके अबही इनका अभिमान दूर करना योग्य है ॥ इस प्रकार दयालु ईश्वर (ब्रह्म) विचार कर अपनी माया करके सगुण स्वरूप यक्षरूप होकर देवताओंकी सभा विषै तिनके देखतेही प्रकट हो जाता भया सो यक्ष अर्थात पूजने योग्य ब्रह्म किस प्रकारका स्वरूप धारण करता भया सो आगे कहते हैं ॥ सहस्रही जिसके नेत्र, चरण, हस्त, पाय, करणादिक हैं तथा अति भ्यानक रूप है जिसका ऐसे रूपसे प्रकट हुआ ॥ उसको देखकर वे सर्व देवता तिस यक्ष भगवानको न जानते भये किन्तु भययुक्त हुए परस्पर वक्ष्यमाण वचन कहते भये "यह पूजनीय यक्ष भ्यानक रूपवाला कौन है? कोई हमारा शत्रु असुर राक्षस है अथवा कोई अन्य है? ॥ २ ॥ १५ ॥

इस प्रकार परस्पर कहते हुए सब देवता मिलकर अग्नि देवताके प्रति कहने लगे ॥ **देवोवाच** ॥ हे जातवेद अग्नि देव! तुम जाकर इस यक्षकी परीक्षा करो कि, यह कौन है? कोई हमारा संमतिवाला है अथवा कोई हमारा विरोधी है ॥ जब इस प्रकार सर्व देवताओंने कहा तब अग्निदेवता तथास्तु कहता भया ॥ ३ ॥ १६ ॥

सो अग्नि देवता इस प्रकार तिन देवताओंकी आज्ञा पाकर तिस यक्षके निकट जाता भया ॥ यक्षके समक्ष जाकर सो अग्निदेवता कुछ पूछनेको समर्थ न होता भया, किन्तु जब अग्नि तिस यक्षके निकट गया तब यक्षने पूच्छा "तुम कौन हो? तुमारा नाम क्या है?" जब इस प्रकार यक्ष भगवानने पूछा तब अग्निदेवता अभिमान सहित कहता भया ॥ मैं अग्निदेवता हूं और जातवेद मेरा नाम है ॥ जातवेदका अर्थ है धनका दाता व्यापक अथवा अत्यंत बुद्धिमान ॥ ४ ॥ ॥ १७ ॥

जब इस प्रकार अभिमान पूर्वक अग्निदेवताने कहा तब गर्वप्रहारी यक्ष भगवानने पूछा कि, तुमारे विषे कितना बल है ॥ तिस अग्निदेवताने कहा इस पृथवीपर मूर्तिमान जितने पदार्थ दृष्टि आते हैं तिने सर्वको मैं एक क्षण विषे जला सकता हूं; इतना मेरे विषै प्राक्रम है ॥ ५ ॥ १८ ॥

जब इस प्रकार अग्नि देवताने अभिमानसे कहा ॥ तब गर्वप्रहारी यक्ष भगवानने उसके आगे एक शुष्क तृण रखकर कहा कि, इसको दग्ध करो ॥ तिस अग्नि देवताने उस तृणके जलाने वास्ते बहुत बल लगाया ॥ परंतु वह सूखा तृण उससे दग्ध न होता भया ॥ तब सो अग्निदेवता अपने अभिमान को छोड़कर लज्जित हुआ और वहांसे लौट कर देवताओंकी सभामें आकर कहता भया कि, वह यक्ष हमसे जाना नहीं जाता, किसी अन्यको उसके जाननेके वास्ते भेजो ॥ ६ ॥ १९ ॥

जब इस प्रकार अग्नि देवताने कहा तब संपूर्ण देवता मिलकर वायुदेवताके प्रति कहते भये ॥ **देवोवाच** ॥ हे वायु! तुम जाकर इस यक्षको जानो कि, यह यक्ष कौन है? जब इस प्रकार देवताओंने कहा तब वायु देवता तथास्तु कहकर यक्षके समीप जाता भया ॥ ७ ॥ २० ॥

जब वायु यक्षके निकट गया तब यक्षने पूछा तुम कौन हो ? वायुदेवताने कहा " मैं वायु हूँ " और मातारिश्वा मेरा नाम है ॥ अर्थात मातारिश्वा कहीये अंतरिक्ष विषे विचरनेहारा हूं ॥ ८ ॥ २१ ॥

जब वायुने ऐसे कहा तब यक्ष भगवानने पूछा तुममें कितना बल है ? वायुने कहा जो कुछ पृथवी पर प्रत्यक्ष स्थावरादिक दृश्य जगतहै तिस सर्वको मैं एकक्षण त्रिषे उड़ालैजा सकता हूं, इतना मेरे विषै बल है ॥ ९ ॥ २२ ॥

जब वायुदेवताने अभिमान पूर्वक ऐसे कह्या तब गर्बप्रहारी यक्ष रूप ब्रह्मने एक शुष्क तृण वायुके आगे धर कर कहा कि इस तृणको उड़ावो ॥ सो वायु बहुत वेगसे जाकर उसमें अधिक बल लगावता भया ॥ परंतु उससे शुष्क तृण किंचत मात्रभी न उडाया गया॥ उसकाल विषे सो वायु देवता नीचे मुख किये हुए वहांसे लौटकर देवतावोंकी सभामें आकर कहता भया कि इस यक्षके जान नेको मैं समर्थ नहीं हूं किसी अन्यको इसकी परीक्षा अर्थ भेजो॥ १० ॥ २३ ॥

जब इस प्रकार वायु देवताने कहा तब संपूर्ण देवता मिलकर इंद्रके प्रति कहते भये ॥ देवोवाच ॥ हे देवराज इंद्र ! तुम इस यक्षकी जाकर परीक्षा लो कि, यहयक्ष कौन है ? जब इस प्रकार देवताओंने कहा तब देवराज इंद्र तथास्तु कह कर यक्षकी तरफ जाता भया ॥ तब सो गर्बप्रहारी यक्ष भगवान सर्वज्ञ ब्रह्म तिस इंद्रको आता हुआ देखकर अंतर्धान होता भया ॥ ११॥२४॥

जब इस प्रकार यक्ष भगवान अंतर्धान हुआ तब उसी आकाशविषै चारों ओर देखते हुए इंद्रको उमा रूप स्त्री स्वरूप ब्रह्मविद्या नेत्रोंके सम्मुख दृष्टि आती भयी ॥ कैसी सो स्त्रीथी; अति शोभा युक्त तथा स्वर्णके भूषणोंवाली हिमाचलकी पुत्रि उमादेवी रूप प्रगट होकर दृष्टि आती भयी ॥ तब इंद्र निश्चय कर उसको जानके उससे पूछता भया ॥ इन्द्रोवाच ॥ हे माता यहां यक्ष प्रकट होकर तिरोधान होगया है वह कौन था ? ॥ ११ ॥ २५ ॥

इति श्रीकेनोपनिषद गत तृतीय खंड संपूर्ण ॥ ३ ॥

ॐ श्रीपरमात्मनेनमः ॥

अथ केनोपनिषद गत चतुर्थ खंड प्रारभ्यते ॥

जब इस प्रकार इन्द्रने उस देवीसे पूछा तब ब्रह्मविद्यारूप उमादेवी वक्ष्यमाण वचनोंको कहती भयी ॥ उमादेवीउवाच॥ हे इन्द्र! जो तुमने यक्ष देखा है सो पूर्ण ब्रह्म था उसीके प्रताप बलसे तुमारी जय तथा महिमा हुई थी ॥ परंतु तुमने अपना अभिमान कर लिया है इसालिये तुमारे गर्वको दूर करनेके वास्ते उस पूर्ण ब्रह्मने यक्षका स्वरूप धारण किया था ॥ जब इस प्रकार उमा देवी रूप ब्रह्मविद्याने कहा तब इंद्र अभिमानको परित्याग करके ब्रह्मको सर्व जयका कारण मानता भया ॥ १ ॥ २६ ॥

जिस कारणसे अग्नि वायु इंद्र ये तीन देव ब्रह्मके संवाद दर्शनादिकसे समीप जाते भयेथे याते ये तीन देवता अन्य देवताओं से शक्ति और गुण कर अधिक होते भये ॥ जिस कारणसे अग्नि, वायु और इंद्र ये तीन देवता ब्रह्मके समीप जाकर तिस ब्रह्मोक्त संवादादिक प्रकारसे स्पर्श करते भये याते वे देव प्रथम अर्थात् प्रधान हुए ॥ इन्द्र ब्रह्मको यह ब्रह्म था ऐसे जानते भये और अग्नि वायु भी इंद्रके वाक्यसे जानते भये ॥ और इंद्रने तो उमादेवीके वाक्यसेही प्रथम यह ब्रह्म था ऐसे श्रवण किया था ॥ याते वह अन्य देवनके मध्य श्रेष्ठ होता भया ॥ २ ॥ २७ ॥

और जिस कारणसे सो इंद्र इस ब्रह्मके समीप जाकर स्पर्श करता भया ॥ याते सो इंद्र प्रथम अर्थात् प्रधान हुआ ॥ और "यह ब्रह्म था" तिस ब्रह्मको ऐसे निश्चय करके जानता भया ॥ इसी कारणसे सो इंद्र सर्व देवन विषे अतिशय करके श्रेष्ठ होता भया ॥ ३ ॥ २८ ॥

अब ब्रह्मका अधिदैविक तथा आध्यात्म स्वरूप कहते हैं ॥ जिस ब्रह्मकी यह उपमाका आदेश अर्थात उपदेश है ॥ उपमा रहित ब्रह्मका जिस उपमासे उपदेश है सो यह उपमा आदेश कहिये है ॥ तिस ब्रह्मकी उपमा क्या है ? सो अब आगे कहते हैं कि इस लोकमें प्रसिद्ध विजलीसे प्रकाशको करता भया ॥ अथवा विजलीकी न्याई वह ब्रह्म तिन

देवनके तंईं एकबार अपना स्वरूप दिखाकर फिर आपको तिरोधान करता भया ॥ अब दूसरी ऊपमा कहते हैं ॥ जैसे नेत्रका खोलना मीचना है तैसे ब्रह्म तिन देवनके तंईं अपना स्वरूप प्रगट दिखाकर तिरोधान करता भया ॥ यह अधिदैवत अर्थात् देवताको विषय करनेवाला आदेश अर्थात् उपदेश है ॥ ४ ॥ २९ ॥

अब इसके पीछे अंतरात्माको विषय करनेवाला जो अध्यात्मरूप आदेश अर्थात् उपदेश है सो कहते हैं ॥ जो इस ब्रह्मके तांईं मुझ उपासकका मन गमन अर्थात् विषय करते हुए की न्याईं वर्तता है ॥ ऐसे जो चिंतन करना सो अध्यात्म उपदेश है ॥ और जैसे साधक पुरुष इस मनसे इस ब्रह्मके समीप कर स्मरण करता है और जिससे ब्रह्म मन उपाधिवाला है याते ब्रह्मको विषय करनेवाला जो फिर फिर कर मेरे मनका संकल्प है सो मनका संकल्प और स्मृति आदिक वृत्तियोंसे ब्रह्मको विषय करनेवाला होनेकी न्याईं होवेगा ॥ ऐसे साधक पुरुष चितवता है इस कारणसे यह ब्रह्मका अध्यात्म रूप कहिये है ॥ ५ ॥ ३० ॥

और सो ब्रह्म निश्चय कर तद्वन नामवाला है अर्थात् सर्व प्राणियोंके सेवने योग्य है ॥ जो पुरुष इस प्रकार तद्वन नामवाले ब्रह्मको जानकर उसकी उपासना करता है तिस पुरुषकी, सर्व लोक, वांछा अर्थात् प्रार्थना करते हैं ॥ ६ ॥ ३१ ॥

इस प्रकार अधिदैव तथा अध्यात्म रूप ब्रह्मका उपदेश कथन करके अब पूर्वोक्त अर्थ विषे प्रश्न उत्तर निरूपण करते हैं ॥ **शिष्यउवाच** ॥ हे गुरो ! उपनिषद्को अर्थात् ब्रह्म विद्याको कहो ? इस प्रकार शिष्यके प्रश्नको श्रवण करके गुरु उत्तर कहते भये ॥ **श्रीगुरुरुवाच** ॥ हे शिष्य ! ब्रह्मसंबंधी अर्थात् ब्रह्मको विषय करनेवाली उपनिषद् हमने तुमको पूर्व कथन करदी है ॥ अब उस ब्रह्मविद्याके साधन कहते हैं ॥ ७ ॥ ३२ ॥

हे शिष्य! ब्रह्मविद्याके साधन ये हैं ॥ तप करना यह भी ब्रह्मविद्याका साधन है (यहां तपका अर्थ चित्तकी एकाग्रता अंगिकार करनी) और दम अर्थात् बाह्य चक्षु आदिक इंद्रियोंको अपने वशमें करना और कर्म अर्थात् निष्काम कर्म करना अर्थात् तप, दम, और निष्कामकर्म ये तीन ब्रह्मविद्याकी प्रतिष्ठा हैं ॥

अर्थात ब्रह्मविद्याकी स्थितिके हेतु हैं ॥ तात्पर्य यह जो पादकी न्याई हैं ॥ और पूर्वोक्त तप, दम, कर्मसे भिन्न अमानत्व अदंभत्वादिक साधन भी साथही अंगिकार करना ॥ और ऋग्, यजुः साम, अथर्व ये चार वेद ब्रह्मविद्याके अन्य अंग हैं ॥ और सर्वदाकाल सत्त अर्थात् यथार्थ भाषण यह ब्रह्मविद्याका आयतन है तात्पर्य यह कि सत्यके आश्रय ब्रह्मविद्या रहतीहै ॥ सार यह कि, जिस विषै कपट, छल, मिथ्या भाषणादिक दोष नहीं है; जो निरंतर निष्कपट, सत्यवादी है वह उसीके आश्रय रहेती है ॥ ८ ॥ ३३ ॥

जो अधिकारी पुरुष इस प्रकार तिस ब्रह्मविद्याको प्राप्त होता है ॥ सो पुरुष पापोंको तथा अनर्थके कारण अज्ञानको दूर करके ब्रह्मानंद विषै स्थितिको प्राप्त होताहै ॥ सो ब्रह्मानंद कैसा है अविनाशी अर्थात नाश रहित है ॥ जिसको प्राप्त होकर यह संसारमें नहीं आता ॥ ९ ॥ ३४ ॥

इति चतुर्थ खंड संपूर्ण ॥ ४ ॥

दोहा—तलवकार उपनिषद यह, कारण मोक्ष पछान ॥
हरि प्रकाश निश दिन पढो, पाप नष्ट होए ज्ञान ॥ १ ॥

इति श्रीसामवेदीय तलवकार शाखा गत केन उपनिषत् भाषा फक्कबाबा हरिप्रकाश परमहंस कृत संपूर्ण ॥ शुभमस्तु ॥

ॐ शांतिः ! शांतिः ! ! शांतिः ! ! !

दोहा—मोह सैन जिस उर विषै, तहां न होत विवेक ॥
हरि प्रकाश तब लग दुखी, जब लग उर अविवेक ॥ १ ॥
श्रद्धा सहित विवेकको. धरो साथ वैराग ॥
हरि प्रकाश उपनिषदको, निर्खे होए बड भाग ॥ २ ॥

ॐम् शांतिः ॥ शांतिः ॥ शांतिः ॥ शुभमस्तु ॥

ॐ श्रीपरमात्मेनमः

अथ श्रीजुर्वेदीय कठशाखा गत कठोपनिषद प्रारभ्यते ॥

दोहा—यजुरवेदकी जानतूं, कठ नामक उपनिषद ॥
हरि प्रकाश जिस सुनेसे, उपजे ज्ञान आनहद ॥ १ ॥

विदित हो कि, यह यजुर्वेदकी कठनामक शाखा विषै कठोपनिषद् निरूपण करी है ॥ कठ नाम मुनीश्वरने वेदके मंत्रोंसे अपने शिष्योंको ब्रह्मविद्याका उपदेश, यमराज तथा नचिकेताके संवाद द्वारा किया है ॥ उसी कठऋषि कृत ब्रह्मविद्यारूप उपनिषद्का नाम काठोपनिषद् है ॥ उसका प्रारंभ भाषा फक्का विषे करते हैं ॥ इस कठोपनिषद्की छः वल्ली है ॥ तिनमेंसे प्रथम वल्लीका आरंभ करते हैं ॥

तहां ब्रह्मविद्याकी स्तुति अर्थ अध्यायका निरूपण करते हैं ॥ एक अरुण नामक ऋषि सो अन्नके दान करनेसे बड़ी कीर्तिवाला होता भया ॥ तिस अरुण ऋषिका पुत्र उद्दालक नाम करके प्रसिद्ध आरुणिऋषि होता भया ॥ सो निश्चयकर विश्वजित सर्वमेध अर्थात् सर्वसकी दक्षिणा जिस विषे होवे ऐसे सर्वमेध नाम यज्ञ करके यजन करता हुआ तिस यज्ञके फलकी कामनावाला होता भया अर्थात् तिस यज्ञके फलकी इच्छा करता भया ॥ और यज्ञके निमित्त अपने ग्रह विषै गौरूप धनका दान करता भया ॥ तिस उद्दालक नाम यजमानका नचिकेता नाम करके प्रसिद्ध पुत्र होता भया ॥ १ ॥ वह नचिकेता पांच वर्ष की आयुवाला बालक था ॥ पिताके कल्यांणकी कामनासे उसके मनमें आस्तिक बुद्धिरूप श्रद्धा आकर प्रवेश करती भयी ॥ किस काल विषे श्रद्धाने प्रवेश किया था ? जो जब पिता पुत्रकी प्रतिपालनार्थ सुन्दर श्रेष्ठ गौ भिन्न निकास कर, ग्रह विषे रखता भया था और यज्ञ क्रियाके करावनेवाले रित्विज ब्राह्मणों तथा अन्य ब्राह्मणोंके ताईं दक्षिणा देनेके निमित्त भिन्न निकासी हुई वृद्ध गौओंको निकट लेकर दानमें देता था॥उस

काल विषै नचिकेता बालकके मन विषै श्रद्धा प्रवेश करती भयी थी ॥इस कारणसे नचिकेता अपने मन विषे विचार करता भया ॥ २ ॥ सो विचार यह है कि, " दक्षिणाके अर्थ गौ अच्छी दान करनी योग्य है परंतु मेरा पिता ऐसी गौ दक्षिणाके निमित्त ब्राह्मणोंके तांई दान देता है जिन्होंने जलपान कर लिया है तथा घास खा ली है जिनका दुग्ध दूह लिया गया है तथा निरिंद्रिय है ॥ तात्पर्य यह है यह गौएँ जलपान तथा घास खानेकी शक्तिसे रहित हैं तथा दूध देनेकी शक्तिसे रहित हैं तथा गर्भ धारण करनेकी शक्तिसे रहित निर्बल हैं ॥ ऐसं वृद्ध गौएँ मेरा पिता दान देता है ॥ इसका फल आनंदसे रहित जो लोक है तिन लोकोंको सो दानी पुरुष प्राप्त होता है ॥ अर्थात् जो ऐसी गौएँ दान करता है वह दुःखयुक्त योनियोंको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ याते इस यज्ञमें श्रेष्ठरूप सामग्रीके अभावसे जो मेरे पिताको अनिष्ट फल होते हैं ॥ सो मुझ विद्यमान् पुत्रके अपने शरीरके दानसेही यज्ञकी सामग्रीको संपादन करके निवारण करना योग्य है "॥ ऐसे विचार करके वह नचिकेता अपने पिताको स्पष्ट कहता भया ॥ **नचिकेता उवाच** ॥ हे पिता! किस रित्विकके तंई दक्षिणाके अर्थ मुझको देवोगे ? ऐसे जब पुत्रने कहा; तब पिता उसको मूढ बालक जान कर मौन होता भया ॥ फिर नचिकेताने दूसरी बार कहा पुनः तीसरी बरा कहा ॥ तब पिता क्रोधयुक्त होकर उस बालकके इस स्वभावको अच्छा न न जानकर उस नचिकेताको वक्ष्यमाण वचन कहता भया ॥ **उद्दालकोवाच** ॥ हे पुत्र! तुझको मृत्युरूप विवस्वत नाम सूर्यके पुत्र यमराजाके तई दूँगा ॥ ४ ॥ इस प्रकार जब पिताने कहा तब वह नचिकेता अपने चित्त विषे इस प्रकार विचार करता भया कि, " ऐसा वचन मेरे पिताने अपने क्लेशका कारण किस निमित्त अपने मुखसे निकाला है ॥ काहेते कि पुत्रके वियोगका दुःख अतिशय करके भारी होताहै ॥ कुछभी हो किन्तु हमको अब पिताके वचनको सत्य करना योग्य है ॥ काहेते जो बहुत शिष्यों तथा पुत्रोंके मध्यमें वही प्रथम अर्थात प्रधान कहा जाता है ॥ जो पिता तथा गुरुके मनकी बात अर्थात इशाराकी समझ कर अंगिकार करलेवे ॥ और मध्यम पुत्र तथा शिष्य वह है जो पिता तथा गुरुके कहे पर चले ॥ और अधम पुत्र तथा

शिष्य वहहै जो पिता तथा गुरुके वचनको न माने ॥ सो मेरे पिताके शिष्य बहुत है ॥ तातेमैं उनमेंसे अधम भावको क्यों प्राप्त होऊं ? किन्तु उत्तम अथवा मध्यम होऊं ॥ मुझ पुत्रसे पिताने जो कह्या है कि, तेरेको यमके अर्थात मृत्युकेतईं देदूंगा, सो पिता अब यमके ताईं मुझको देकर क्या प्रयोजन सिद्ध करेगा ? किंतु कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं करेगा ॥ केवल क्रोध करके ही यह वचन पिताने अपने मुखसे निकाला है ॥ इसमें मेरी तो कोईभी हानि नहीं है क्योंकि, कभी न कभी तो इस शरीरकी मृत्यु होहीगी ? तब पिताके वचन और अपने पुत्रत्वमें मैं कलंक क्यों लगाऊं। ऐसे विचार करके सो नचिकेता शोकयुक्त अपने पिताके पास जाकर कहता भया ॥५॥ **नचिकेतोवाच** ॥ हे पिता! जैसे पूर्व पिता पितामह आदिक महात्मा हुए हैं तिन महात्माओंको तुम देखो कि, वे अपने वचनकी प्रतिपालना करते भये हैं, अपने बचनको मिथ्या नहीं करते भये हैं ॥ और अब वर्तमान काल विषेभी बडे धर्मात्मा अपने वचनको मिथ्या नहीं करते ॥ और यह मनुष्य खेतीकी न्याईं नाश भी होताहै तथा खेतीकी न्याईं पुनः उत्पन्न भी होता है; इस लिये आप मुझे यमराजके निकट भेजकर अपने बचन की पालना कीजिये ॥ ६ ॥ ऐसे जब नचिकेताने कहा ॥ तब पिता अपने वचनके सत्य करनेके वास्ते अपने प्रिय पुत्रको यमराजाके लोकको भेजता भया ॥ तब वह नचिकेता अपने पिछले पुण्य तथा तपके बलसे तथा पिताकी भक्तिके प्रतापसे इस शरीरसहितही यमराजकी पुरीको जाकर प्राप्त हुआ ॥ सो यमराज उस समय अपने गृहविषै नहीं था कहीं गया हुआथा ॥ याते वह नचिकेता तीन दिन पर्यंत यमराजके द्वारपर स्थित रहा; अपने पिताके बचनको सत्य करनेके वास्ते॥ जब तीन दिनके पश्चात् यमराज लौटकर अपने गृह विषै आया तब मंत्री तथा उसकी स्त्री आदिकोंने कहा कि, हे स्वामी ! एक अग्निरूप अतिथि छोटा बालक स्वरूप ब्राह्मण तुमारे ग्रहविषै तीन दिनोंसे भूखा स्थित है उसके समीप चलकर सत्कारादिक जलसे शांति करो ॥ यदि ऐ-से अतिथिकी शांति नही की जावे तब उसका फल पाप इस प्रकारका होवे है कि, ॥७॥ हे स्वामी! जिस अल्प बुद्धि गृहस्थ पुरुषके ग्रह विषे भोजन खाय विना अतिथि साधु ब्राह्मण रूप अग्नि निवास करते हैं सो अतिथि उस मूढ गृहस्थ पुरुषके बहुत पदार्थोंका नाश करते हैं अर्थात अनिश्चत प्राप्त होने

योग्य इष्ट अर्थकी प्रार्थनाका नाम आशा है तथा निश्चित प्राप्त होनेवाली वस्तुकी प्रतीक्षणका नाम प्रतीक्षा है और सतसंगसे प्राप्त होनेवाला जो फल है उसका नाम संगत है ॥ सुखको प्राप्त करनेवाली वाणीका नाम सुनृत है और अग्नि होत्रादिक तथा यज्ञादिकोंके पुण्यके फलका नाम पूर्त है ॥ सो इन सहित पुत्र पशु आदिक सर्व विषयको यह भूखे अतिथिके असम्मान रूप पाप नाश कर देते हैं ॥ तांते हे स्वामिन्! आप चलकर उस अतिथि नचिकेताकी जल भोजनादिक सत्कारसे शांति करो ॥ जब इस प्रकार मंत्री आदिकोंने कहा तब यमराज उस नचिकेताके निकट आकर नमस्कार करके वक्ष्यमाण वचन कहता भया ॥ ८ ॥

यमोवाच ॥ हे अतिथि ब्राह्मण ! तुम तीन रात्रि पर्यंत भोजन खाय विना मेरे गृह विषे निवास करते भये हो ताते मेरी तुझ अतिथि ब्राह्मणके तांई नमस्कार होवे और इस पापसे मेरा तुमारी कृपासे कल्याण होवे कोई पाप मेरेको स्पर्श न करे ॥ और तीन रात्रि पर्यंत जो तुमने भोजन खाय विना मेरे गृह विषे निवास किया है तिस भारकी निवृत्ति वास्ते तीन वर मैं तुह्मारे तांई देता हूं तुम मनवांच्छित मांगलो ॥ ९ ॥ जब इस प्रकार यमराजानें कहा, तब नचिकेता वक्ष्यमाण वर मांगता भया ॥ **नचिकेतोवाच** ॥ हे यमराज ! प्रथम वर मैं यह मांगताहूं कि, "मेरा पुत्र यमराजके पास जाकर क्या करेगा" यह संकल्प मेरे पिताका दूर हो जावे और जैसे प्रसन्न मन पाहिले मेरा पिता था उसी प्रकार होकर रहे और क्रोधसे रहित मेरे विषे होवे ॥ और तुझ कर भेजा हुआ जब मैं यहां (यमलोक) से लौटकर अपने लोकको जाऊं तब मुझपर प्रतीति उस मेरे पिताकी उसी प्रकार होवे कि, यह नचिकेता यमके पास गयाथा ॥ काहेते जो तुम (यम) को प्राप्त होकर शरीर सहित वापस कोई नहीं जाता इस कारणसे मुझपर उसकी प्रतीति होवे ॥ तीन वरोंमें प्रथम वर मुझको कृपा करके यही दो ॥ १० ॥ जब इस प्रकार नचिकेतानें वर मांगा ॥ तब यमराज इस प्रकार कहता भया ॥ **यमोवाच** ॥ हे नचिकेता अरुण ऋषिका पुत्र उद्दालक नामवाला तुम्हारा पिता जैसे प्रथम तुम्हारे विषे प्रीति सहित प्रतीति वालाथा वैसेही मुझ मृत्यु मुखसे छूटे हुए और हमारे

देशसे गये हुए तुमारे विषे वह प्रीति सहित प्रतीतिवाला होवेगा ॥ और अबभी मेरी आज्ञासे वह अपने ग्रह विषे क्रोधसे रहित सुखपूर्वक रात्रिमें शयन करता है ॥ और तुझ पुत्रको मृत्युमुखसे छूटे हुएकी नांई देख रहा है ॥ ११ ॥

अब नचिकेता दूसरा वर स्वर्गकी प्राप्तिके साधन अग्निके ज्ञानका मांगनेकी इच्छा करता हुआ प्रथम स्वर्गके गुणोंका निरूपण करता है ॥ **नचिकेतोउवाच** ॥ हे यमराज जिस स्वर्गलोकके विषे किसी रोगादिकका भय किंचित मात्र नही है और न तुझ मृत्युका भयहै तथा न जरा अवस्थाका भय प्राप्त होताहै ॥ और क्षुधा तृषा को तहां (स्वर्ग विषे) तर जाताहै ॥ अर्थात भूख प्यासादिककी बाधा तहां नहीं होतीहै और शोकको उलंघकर स्वर्गलोकविषे परमानंदको प्राप्त होकर प्रसन्न हुआ स्थित होताहै ॥ १२ ॥ हे यमराज ! ऐसे पूर्वोक्त गुणोंकर युक्त स्वर्ग संबंधी अग्निको तुम मृत्युही जानतेहो याते उस अग्निविद्याको मुझ श्रद्धावान शिष्यके ताईं कथन करो ॥ जिस स्वर्गलोकको प्राप्त होकर यह पुरुष अमरभावको प्राप्त होता है ऐसे पूर्वोक्त स्वर्गके साधन अग्निके ज्ञानको दूसरे वर करके मैं मांगताहूं ॥ १३ ॥ जब इस प्रकार स्वर्गके साधन अग्निके ज्ञानका वर नचिकेताने मांगा ॥ तब यमराज वक्ष्यमाण वचनोंकर कहता भया ॥ **यमोवाच** ॥ हे नचिकेता! तुमने जो स्वर्गकी अग्निविद्याका वर मांगाहै तिस स्वर्गके साधन रूप अग्निको मैं जानता हुआ तेरे ताईं कहताहूँ तूं एकाग्र मनसे श्रवण कर ॥ अब प्रथम अग्निकी स्तुति करतेहैं ॥ हे नचिकेता ! स्वर्गलोकरूप फलकी प्राप्तिके साधन तथा वैराटरूप से जगतके आश्रय रूप और विद्वानोंकी बुद्धिरूप गुहामें स्थित अग्निको मैं कहताहूं सो तूं जान ॥ १४ ॥ इस प्रकार कथन करके यमराज फिर उस स्वर्गलोककी प्राप्तिका साधन जो अग्नि विद्या है तिस अग्निविद्याको नचिकेताके प्रति कहताभया ॥ इस चयननामक यज्ञमें जो इष्टिका अर्थात् मृत्तिकाकी ईटी है सो इकट्ठी रखी जातीहै ॥ और जितनी होतीहै और प्रकार उनमें अग्नि रखतेहैं जिस और मंत्र क्रिया आदिक संपूर्ण प्रकार वह उसके ताईं कहता भया ॥ फिर नचिकेताभी जैसे मृत्युने कथन कियाथा ॥ उसी प्रकार करके यमके ताईं संपूर्ण अनुवाद कर श्रवण कराता भया ॥ जब इस प्रकार

यथा, पूर्वोक्त अग्निविद्याका अनुवाद नचिकेताने किया तब मृत्यु फिर प्रसन्न होकर नचिकेताके प्रति इस प्रकार वचन कहता भया ॥ १५ ॥ कैसे नचि-केताके प्रति कहता भया ? जैसेगुरु शिष्यकी योग्यताको देखकर प्रीतिको अनु-भव करके कहता है वैसेही महात्मा यमराज कहता भया ॥ **यमोवाच** ॥ हे नचिकेता तेरी प्रसन्नताके निमित्त तीन वर जो हमने प्रथम देना कहा सोभी दूंगा ॥ और उनसे भिन्न अब चतुर्थ वर तुझको देताहूं वह यहहै कि जिस वैराटरूप अग्निका तूने अनुवाद कियाहै ॥ सो यह अग्नि आज दिनसे आगे तेरे नामसे प्रसिद्ध होवेगा ॥ अर्थात नचिकेताअग्नि इस नामवाला जगत विषे विख्यात होवेगा और यह सुंदर अनेकरूपतवाली माणियोंसे जड़ित माला तुमारे ताईं मैं देताहूं ॥ इसको तू ग्रहण करके गलेविषे पहिने ले ॥ तब नचिकेताने उस मालाको लेकर अपने गले विषै डार लीनी ॥१६॥ फिर यमराज कर्मनकी स्तुति करेंहै ॥ जिस पुरुषने तीनवार नचिकेता अग्नि नामसे प्रसिद्ध अग्निकी समाप्ति किया है ॥ ऐसा जो तिसका ज्ञाता तथा तिसके अध्ययनवाला तथा तिसके अनुष्ठानवाला पुरुष है सो त्रिनाचिकेत कहियेहै ॥ सो माता पिता और आचार्यनके संबंन्धको पाकर अर्थात इनकी आज्ञाको पाकर अथवा वेद स्मृति तथा श्रेष्ठ पुरुषनके संबन्धको पाकर अथवा प्रत्यक्ष, अनुमान, तथा आगम; इन तीनप्रमाणोंके संबंधको पाकर; तिनकर सिद्धताके प्रत्यक्ष होनेसे यज्ञ, अध्ययन, दान, तीन कर्मोंका कर्ता जो पुरुष है, सो जन्ममृत्युको उलंघ जाता है किंवा यह अग्नि हिरण्यगर्भरूप ब्रह्मासे उत्पन्न हुआ है और सर्वज्ञ तथा स्मरण करनेयोग्य तथा प्रकाश करनेवाला होनेसे ज्ञानादिक गुणोंवाला देवहै ॥ जो पुरुष ऐसे वैराट रूपको शास्त्रसे जानकर तथा आत्मभावसे देखता है सो पुरुष अतिशय कर शांतिको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ अब अग्निके ज्ञानको और चयन अर्थात् यज्ञके फलको समाप्त करतेहैं ॥ सो जो पूर्वोक्त त्रिनाचिकेत पुरुष है सो इष्टिका जितनी है और जिस प्रकारसे स्थापन करिये है ॥ ऐसे पूर्वोक्त इष्टिका तथा स्वरूप तथा संख्या तथा प्रकार इन तीनोंको जानकर और ऐसे आत्मस्वरूपसे अग्निको जानता हुआ नाचिकेत अग्नियज्ञको समाप्त करता है सो पुरुष शरीर पातसे पूर्व अज्ञान राग द्वेषादिक मृत्युकी फांसियोंको दूर करके मानसी

दुखसे रहित हुआ आत्म स्वरूपकी प्राप्तिसे वैराट रूप स्वर्ग लोकमें शोक रहित सुखको पाता है ॥ १८ ॥

हे नचिकेता जो तूने अग्नि विद्यारूप दूसरा वर मांगाथा सो स्वर्गका साधन अग्निका ज्ञान हमने तेरे तांई कह दिया है ॥ और यह अग्नि तेरे नामसे अर्थात नाचिकेत नाम करके लोक कहेंगे ॥ हे नचिकेता अब तीसरा वर भी मुझसे मांग ले ॥ १९ ॥ यहाँ पर्यंत दो वरदानोंसे विधिनिषेध रूप कर्मोंका निरूपण किया अब तीसरे वरसे षट्वल्लीकी समाप्ति पर्यंत ब्रह्मात्म स्वरूपकी एकत्व ज्ञानके वास्ते आत्माके स्वभावोंका वर्णन होवेगा ॥ अब आगे नचिकेता आत्म ज्ञानके वास्ते प्रश्न करेगा ॥ और यमराज उसको बहुत लालच देकर उसकी परीक्षा करेगा ॥

नचिकेतोवाच ॥ हे मृत्यु जो इस मृतक मनुष्य विषे संशय है सो यह है ॥ कई एक बादी कहते हैं कि आत्मा है और कई एक बादी कहते हैं कि आत्मा नहीं है ॥ यांते आपके कथन कर मैं इस आत्माके ज्ञानको प्राप्त होऊं सो तीन वरोंमेंसे यही तीसरा आत्म स्वरूपका ज्ञान रूप वर मैं मांगता हूं; आप कृपा करके दीजिये ॥ २० ॥ जब इस प्रकार नचिकेताने आत्मज्ञानका प्रश्न किया तब यमराज अपने चित्तमें विचार करता भया कि, यह नचिकेता आत्म ज्ञानका अधिकारी है अथवा नहींहै ॥ इस कारणसे इस नचिकेताकी परीक्षा करनी योग्य है ॥ ऐसे विचार करके सो यमराज कहता भया ॥ **यमोवाच** ॥ हे नचिकेता आत्मा है अथवा नही है ? इसवार्ताके जानने विषै देवताओंकोभी संशय है और पूर्व प्राकृत पुरुषोंकर श्रवण किया हुआ भी यह आत्मा सम्यक जानने योग्य नहीं है यह आत्मा नामवाला धर्म अति सूक्ष्म है ॥ हे नचिकेता याते कोई अन्य वर मांग ॥ और मुझ ऋणी पर यह प्रश्न रूप भार मत डाल ॥ यह आत्मज्ञान रूप प्रश्नका वर मुझको छोड़ दे ॥ २१ ॥ ऐसे जब यमराजने कहा तब नचिकेता वक्ष्यमांण वचन कहता भया ॥ **नचिकेतोवाच** ॥ हे स्वामी मृतो ! जब इस आत्मवस्तुके जानने विषे निश्चय करके देवता भी संशययुक्त हैं ऐसे अभी आपसे मैंने श्रवण किया है और आपभी कहते हो कि, यह आत्मवस्तु सम्यक जानने योग्य नहीं है ॥ इस हेतुसे पण्डितों कर भी जाननेको अयोग्य होनेसे इस आत्म-

रूप धर्मका वक्ता आपके सदृश अन्य पंडित खोजा हुआ भी प्राप्त होने योग्य नहीं है और यह वरदान तो साक्षात मोक्षकी प्राप्तिका कारण है ॥ याते इसके सदृश अन्य वर कोई भी नहीं है ॥ काहेते कि, अन्य सर्व वस्तुओंको अनित्य फल रूपताकी योग्यता है ॥ २२ ॥

इस प्रकार नचिकेतानें यद्यपि कहाभी तथापि यमराजा फिर नचिकेताकी परीक्षा करनेके निमित्त लोभ दिखाते हुए कहता भया ॥ यमोवाच ॥ हे नचिकेता! सौ वर्षकी आयुवाले पुत्र तथा पौत्रनको मांग ॥ किंवा गौ आदिक बहुत पशुओंको मांग, हस्ती स्वर्ण अश्वादिकोंको मांग, पृथ्वीकी विस्तार युक्त मंडल अर्थात् चक्रवर्तिको मांग॥यदि तूं कहे कि मैं अल्प आयुवाला हूं॥तब इन पदार्थोंसे मुझको क्या सुख प्राप्त होगा तहां कहतेहैं॥ हे नचिकेता! तू आपभी जितने वर्ष पर्यंत जीनेकी इच्छा करे उतने वर्ष पर्यंत तूभी जीवन कर अर्थात शरीर इंद्रियके समूहको धारणकर॥ २३ ॥ और यदि पूर्वोक्त वस्तुओंके तुल्य अन्य वस्तुओंको वर रूप मानता है तब उन वस्तुओंको भी मांग ॥ किंवा ॥ स्वर्णरत्नादिक बहुत धन सहित चिरंजीवनेको मांग ॥ हे नचिकेता ! बहुत कहनेसे क्याहै ? बडी भूमि विषैतूं राजा हो ॥ किंवा देवनके तथा मनुष्यनके भोगोंके भोग योग्य मैं तुझको करूंगा॥इससे अन्य क्या है? मैं सत्यसंकल्पवाला देव हूँ ॥ २४ ॥ और जो जो विषय इस मनुष्य लोकमें इच्छा करने योग्य तथा दुर्लभहैं तिन सर्व कामनाओंको इच्छाके अनुसार तूं मांग ॥ किंवा ॥ रथ सहित, वादित्र सहित, पुरुषोंको रिझानेवाली अप्सरारूप स्त्रियोंको मांग ॥ कैसी सो मनके रिझावनेवाली रमा अर्थात् स्त्रियाँ है कि मुझ देवादिकोंकी प्रसन्नता विना मनुष्योंको प्राप्त होने योग्य नहीं हैं॥मेरी दी हुई सेवा करनेवाली इन स्त्रियोंसे अपना पाद पखालनादिक रूप सेवा करा ॥ हे नचिकेता ! काकके दंतनकी परीक्षावत मरणको प्राप्त होकर आत्मा है अथवा नहीं ? ऐसे मरण संबंधी प्रश्नको तूं पूछने योग्य नहीं है ॥ २५ ॥

इस प्रकार यमराज कर लोभको प्राप्त किया हुआभी जलसे पूर्ण बडे तालाबवत क्षोभको न पाकर नचिकेता वक्ष्यमाण वचन कहता भया ॥ नचिकेतोवाच ॥ हे अंतक अर्थात सर्वके नाश करनेवाले यमराज आपके दिये जो भोग हैं वे दूसरे दिन पर्यंत रहेंगे अथवा नहीं ?

ऐसे संशय युक्त वर्तमान-भोग्य पदार्थ हैं, किंवा यह अप्सरादिक भोग्य जो हैं सो पुरुषके संपूर्ण इंद्रियोंके तेजको नाश करनेहारे हैं ॥ इस प्रकार धर्म, बल, बुद्धि, तेज, यशादिकके नाशक होनेसे ये भोग अनर्थके अर्थही होवेंगे ॥ और आप बडी आयु जो देतेहो सो जब ब्रह्माकी आयुभी अल्प जैसे है, तब हम मनुष्योंकी आयु अल्प है, इसका क्या कहना है? हे मृत्यु! याते आपके रथादिक तथा नृत्य गीतादिक सर्व तुम्हारे ही होवें इनकी इच्छा मुझको नहीं है ॥ २६ ॥ किंवा ॥ इस लोकमें धनका लाभ किसीको भी तृप्तिका कारण नही देख पडता और जब हमको प्रसिद्ध धनकी इच्छा होवेगी तब हम इस धनको आपकी कृपासे आपही पा लेवेंगे ॥ जब आपका दर्शन हमको प्राप्त हो गया है तब धनका प्राप्त होना कुछ दुर्घट नहीं है ॥ और चिरकालकी आयुको भी प्राप्त हो जावेंगे ॥ जब लग यम पदवी विषे तुम स्वामी स्थित र होगे तब लग हम जीवेंगे । जब आप देवनकीभी आयु अल्पही है तब हम चिरजीवी कैसे होवेंगे ॥ हे स्वामी ! यांते हमको उसी आत्मस्वरूपके ज्ञानका वरदान दो हम उसीको मांगते हैं ॥ २७ ॥ जिसमें आयुकी हानिको न प्राप्त होनेवाले जो देवता हैं उनके समीप जाकर उनसे अन्य उत्कृष्ट प्रयोजन सिद्ध करने योग्य है ॥ और जाननेवाला विवेकी पुरुष आपतो जरामरणवाला है ॥ और पृथिवीरूप जो अंतरिक्षादिक लोकनकी अपेक्षाकर अधस्थल तिस विषे स्थित हुआ अविवेकियों कर इच्छा करने योग्य धन पुत्र तथा स्वर्णादिक नाशवंत पदार्थोंको कैसे मांगेगा? और शरीरके रंगकी प्रीतिसे प्रमोदके कारण अप्सरादिकोंको अनिस्थर रूपवाली होनेंसे, यथार्थ निर्णय करता हुआ कौन विवेकी पुरुष अतिशय बड़ी तूल आयुविषे रमेगा ? अर्थात कोई भी न रमेगा ॥ २८ ॥ हे मृत्यु ! जिस आत्मस्वरूपके निर्णय विषे मृत्यु हुआ आत्मा "है अथवा नही है" ऐसी बडी परलोककी गति विषे देवता और वादी निर्णयसे विना संशयको करते हैं ॥ उसी संशयका निवर्तक आत्माके निर्णयका जो ज्ञान है वह हमारे तांई कहौ ॥ और इस आत्माके निर्णयके ज्ञानरूप वरसे भिन्न अन्य अविवेकी पुरुषोंकर इच्छा करने योग्य अनित्य विषय भोगवाले वरको मैं नचिकेता मनसे तुच्छरूप मानता हूं ॥ २९ ॥

इतिश्रीकठोपनिषद् गत प्रथम अध्यायकी प्रथम वल्ली संपूर्ण ॥

॥ ओम् ॥ शांतिः शांतिः शांतिः ओं श्रीपरमात्मतेनमः ॥

ॐ श्रीपरमात्मनेनमः ॥

अथ श्रीकठोपनिषद्के प्रथम अध्याय गत द्वितीय वल्ली प्रारभ्यते ॥

इस पूर्वोक्त प्रकारसे नचिकेता नाम शिष्यकी परीक्षा करके तथा उसको आत्मविद्याके योग्य जानकर यमराज नचिकेताके प्रति वक्ष्यमाण वचन कहत भया ॥ **यमोवाच** ॥ हे नचिकेता ! इस संसार विषे दो प्रकारका फल होता है ॥ एक तौ ज्ञान द्वारा श्रेय रूप मोक्ष फह है और दूसरा काम्य कर्म करके प्राप्त होने योग्य संसारका विषयानंद रूप प्रेयं फल है ॥ ये दोनों श्रेय तथा प्रेय भिन्न प्रयोजनके होते वर्णाश्रम कर युक्त अधिकारी पुरुषको बाँधते हैं ॥ याते तिन श्रेय और प्रेयरूप विद्या तथा अविद्यामें " मुझको यह करना योग्य है " इस भावसे सर्व पुरुष जुडते हैं ॥ अर्थात श्रेय रूप मोक्ष तथा प्रेयरूप स्वर्गादिक भोगरूप संसारका अर्थी जो पुरुष हैं वे श्रेय और प्रेय विषे प्रवृत्त होते हैं ॥ याते सर्व पुरुष श्रेय और प्रेयके प्रयोजनकी कर्तव्यता कर बंधेहैं ॥ ये श्रेय और प्रेय यद्यपि यथायोग्य एक एक फलके संबंधी है तथापि विद्या अविद्या रूप होनेसे परस्पर विरुद्ध हैं ॥ यांते इन दोनोमेंसे एकको त्याग करनेसे तथा दोनो एक पुरुष कर साथही अनुष्ठान करनेको अशक्य होनेसे तिन दोनोमेंसे अविद्या कर्मरूप प्रेयको छोड़ कर केवल श्रेयको ग्रहण करनेवाले पुरुषका कल्याण होता है ॥ और पूर्वापर विचार रहित जो अदूरदर्शी मूढ पुरुष प्रियको ग्रहण करता है सो पुरुष परमार्थ रूप पुरुषार्थसे बियोगको पाता है अर्थात भ्रष्ट होता है ॥ १ ॥ ननु यद्यपि कहो कि जब श्रेय और प्रेय दोनो पुरुषके कर्तव्यके स्वाधीन हैं तब बहुत लोक प्रेयको किस प्रयोजन अर्थ ग्रहण करते हैं ? इसका उत्तर यह है कि, श्रेय और प्रेय यद्यपि कर्तव्य स्वाधीन है तथापि साधन और फलके भेद हुए भी मंद बुद्धिवाले पुरुषको दुर्विवेकसे वास्तव रुपसे भिन्न भिन्न प्रतीत नही होते ॥ याते जैसे हंस जलसे दुग्धको भिन्न करके निकासता है तैसे धीर अर्थात विवेकी पुरुष तिन श्रेय

और प्रेय दोनोका मनसें विचार कर श्रेयको प्रेयसे भिन्न करके श्रेयको ग्रहण करता ! है ॥ और अधीर मंद अविवेकी पुरुष शरीरादिकोंकी वृद्धि तथा रक्षा रूप योगक्षेमके निमित्त पशु पुत्रादिकको ग्रहण करता है ॥ २ ॥ हे नचिकेता सो तू मुझकर फिर फिर लोभको प्राप्त किया हुआ भी पुत्रादिक रूप प्रेय और अप्सरादिक प्रेयरूप भोगनको अनित्य असारादिक दोषों कर युक्त चिंतन करता हुआ त्यागता भया है और निंदित मूढ पुरुषनकी प्रवृत्ति धन कर्मकी गतिको प्राप्त नहीं भया; जिस कर्म गति विषै केवल मूढ पुरुष खेदको प्राप्त होते हैं ऐसे नहीं ! किंतु बहुत मनुष्य खेदको पाते हैं ॥ यांते तुमारी बुद्धिमानता अवधिसे रहित है ॥ ३ ॥ तिनमें श्रेयके ग्रहण करने वालेका कल्याण होवे है ॥ और जो प्रेयको ग्रहण करता है ॥ सो पुरुषार्थसे भ्रष्ट होता है ॥ ऐसे दूसरी वल्लीकी प्रथम कंडिका विषे कथन कियाथा सो किस कारणसे, सो आगे कहते हैं ॥ ये दोनों महत अंतराय वाले होनेसे तम और प्रकाशकी न्याई, परस्पर भिन्न रूप हैं, विवेक और अविवेक रूप होनेसे तथा संसार और मोक्षके हेतु होने कर नाना गति अर्थात भिन्न भिन्न फलवाले हैं ॥ ये दोनोकौन है ? तहां कहते हैं जो प्रेय अर्थात भोगको विषय करनेवाली अविद्या और मोक्षरूप श्रेयको विषय करनेवाली विद्या है ॥ ये दोनो पंडितोंने क्रमसे अज्ञात और ज्ञात रूप जाना है ॥ तिनमें से तुझ नचिकेताको मैं विद्याका अर्थी मानता हूं ॥ किस कारणसे मानते हैं ? तहां कहते हैं ॥ जिससे बुद्धिको लोभानेवाले अप्सरादिक बहुत भोग्यकी अपने भोगकी इच्छाके संपादनसे तुझको श्रेयके मार्गसे भ्रष्ट न करते भये ॥ याते मैं तुझको श्रेयका अर्थी मुमुक्षुजन मानता हूं ॥ यह अभिप्राय है ॥ ४ ॥ हे नचिकेता ! जो पुरुष संसारके सुख विषै प्रवृत्त है वह घनीभूत अंधकारकी न्याई अविद्यामे वर्तमान अर्थात पुत्र पशु आदिकों की तृष्णा रूप सैकड़ों फाँसियोंसे वेष्टित हुआ भी आप हम बुद्धिमान शास्त्र विषै कुशल बडे पंडित हैं ऐसा मानताहै ॥ वह मूढ अविवेकी पुरुष जरा मरणादिक अत्यंत कुटिल गतिको पातेहुए चारों तरफ भ्रमता है ॥ जैसे अंध पुरुषके पीछे अन्य बहुत अंध पुरुषजाते हुए विषम मार्गमें अनेक अनर्थको प्राप्त होते हैं ॥ तैसे संसारी सकाम पुरुष मूढ सकाम उपदेशकोंके कहे

पर चलतेहुए जन्म मरण संसार दुखमें भ्रमते रहतेहैं ॥ ५ ॥ परलोककी प्राप्तिरूप प्रयोजनवाला शास्त्रोक्त साधन विशेष सम्याण्य कहिएहै ॥ सो पुत्र आदिक प्रयोजन विषे आसक्त मतवाले होनेकर प्रमादको करनेवाले और धन रूप निमित्तसे उपजे हुए अविवेकसे मूढ हो रहे हैं ॥ और "स्त्रीपुत्रधनादिक सहित यह लोकही श्रेष्टहै, इससे भिन्न कोई दूसरा अदृष्ट स्वर्गादिक परलोक नहींहै" ऐसे माननेवाले मूढ बुद्धि पुरुष वारंवार मुझ मृत्युको प्राप्त होतेहैं (आज कल इस कलियुगमें ऐसे नास्तिक बहुत हैं) ॥ ६ ॥ हे नचिकेता! इस संसारमें मोक्षकी इच्छावाला जो पुरुषहै सो सहस्र मनुष्योंमें तुझ जैसा आत्मवेत्ता पुरुष कोईही एक होता है ॥ काहेते कि जिस कारणसे यह आत्मा बहुत पुरुषों कर श्रवण किया हुआभी प्राप्त होने योग्य नहींहै और बहुत पुरुष श्रवण करते हूएभी इस अविषय आत्माको जान नहीं सकते ॥ और इस अविषय आत्माका वक्ताभी आश्चर्यरूप अनेक मनुष्योंमें कोई एक होताहै और इस आत्माको प्राप्त होंनेवाला निपुण पुरुष अनेक मनुष्यों में कोई एक ही होता है ॥ और जिससे ऐसाहै ॥ याते निपुण आचार्यकी शिक्षाको प्राप्त हुआ इस आत्माका ज्ञाता भी आश्चर्यरूप अनेक मनुष्योंमें कोई एक होताहै ॥ ७ ॥ यदि तू कहे जि तुम्हारा कथन किस प्रयोजनसेहै; तहां कहते हैं, कि आत्मा है अथवा नहीं है ? ऐसे बहुत वादियोंकर चिंतन किया हुआ यह आत्मस्वरूप ब्रह्म, ज्ञानी गुरूके विना सम्यक जाना जाता नहीं ॥ याते ब्रह्मात्मस्वरूप एकत्वके ज्ञानवाले आचार्यसेही जाना जाताहै अन्यसे नहीं ॥ काहेते जो ब्रह्मात्मस्वरूप अभेद दर्शी आचार्य विषे "यह आत्मा है अथवा नहीं है" इत्यादिक विकल्पकी गतिही नहीं है और जितनी अणु परिमाणवाली वस्तुहै उनसे भी अणु अर्थात सूक्ष्म रूपहै ॥ और तर्कसे जाननेको अशक्य है; याते ब्रह्मवेत्ता आचार्यसे विना केवल तर्कसे नहीं जानाजाता ॥ ८ ॥ इसीसे अभेददर्शी आचार्य कर आत्माके कथन किएहुए उत्पन्न भआ, श्रुति प्रतिपादित आत्माविषे मति अर्थात आत्म निष्ठा केवल स्वबुद्धिकी कल्पनारूप तर्कसे प्राप्त होनेयोग्य नही है ॥ अथवा यह मति तर्कसे नाश करने योग्य नहींहै ॥ यह अर्थ है ॥ याते शास्त्रका अज्ञाता जो तर्क करनेवाला पुरुष है सो जो कुछ कहताहै सो अपनीबुद्धिसे क-

रूपितही कहताहै ॥ याते हे नचिकेता यह जो श्रुतिसे उत्पन्न होनेवाली मति है सो तर्क करनेवाले पुरुषसे अन्य, श्रुतिवेत्ता आचार्यसेही कथन करी हुई सम्यक ज्ञानके अर्थ होतीहै॥हे नचिकेता! वह मति कौनहै? जिसको मेरी कृपासे तू प्राप्त भया है यह बडा हर्ष भयाहै ॥ जो तू सत्य धृतिवाला अर्थात सत्य वस्तुके विषय करनेकी धृति वाला भयाहै ॥ (अब यमराज प्रसन्न हुआ आगे ज्ञानकी स्तुति अर्थ नचिकेताको कहताहै)

हे नचिकेता ! जैसे तू आत्माके स्वरूपका पूछनेवालाहै वैसे आत्माके स्वरूपको पूछनेवाले अन्य पुत्र अथवा शिष्य नहीं होते हैं अर्थात ऐसे अधिकारीका मिलना दुर्लभ है ॥ ९ ॥ हे नचिकेता ! कर्मका फलरूप जो निधि है यह अनित्य है ऐसे मैं जानताभयाहूं ॥ और यह अनित्य सुख रूप निधि अनित्य द्रव्यों करके प्राप्तभी होतीहै ॥ किन्तु अनित्य पदार्थों करके सो नित्य वस्तु प्राप्त होती नहीं ॥ यातै मैंने भी नाचिकेत नाम छ स्वर्ग के साधन अग्निका सेवन परिपूर्ण किया है ॥ तिससे मैं इस यमके स्थानको प्राप्त भयाहूं ॥ १० ॥ हे नचिकेता ! तूं तो विस्तीर्ण और उत्तम आत्माकी स्थितिको देखकर जिस विषेही सर्व काम समाप्त होतेहैं ॥ ऐसे काम्य अर्थात्भोग्यकी प्राप्ति रूप और सर्व रूप होनेसे आध्यात्मि आधिभौतिक आधिदैविकादिक जगतका आश्रय तथा यज्ञका फल अर्थात् हिरण्यगर्भका पद और अनंत तथा स्तुति करने योग्य और महत अर्थातनिरतिशय होनेसे अणिमादिक ऐश्वर्यसे आदि लेकर अनेक गुण सहित यह संसारके भोगका समूह हैं तिसको जिससे बुद्धिमान भया परम ब्रह्मकोही चाहता हुआ धैर्य्यसेही त्यागता भया है ॥ याते अहो! बडा हर्ष है ! जो तूं सर्वोत्तम गुणवाला है ॥ ११ ॥ जिस आत्माके जाननेकी तू इच्छा करताहै सो अति सूक्ष्म होनेसे दुख कर देखने योग्य है और गूढ तथा प्राकृतजनोंके विषयके विकार युक्त ज्ञानोंसे आवर्त बुद्धिविषे नहीं जाननेमें आता है याते बुद्धि रूप गुहा अर्थात गुफा विषेस्थित है और अनेक अनर्थरूप संकटविषे स्थित है जिससे ऐसे गूढ आवर्त और गुहा विषै स्थितहै याते संकट विषेस्थित है ॥ इसीसे दूर दृश्य अर्थात् कठिन जानने योग है ॥ ऐसे पुरातन आत्मरूप देवको आत्मा विषै चित्तकी इकाग्रता रूप जो अध्यात्म योग है तिसकी प्राप्तिसे मानके अर्थात निश्चय

करके बुद्धिमान पुरुष आत्माकी वृद्धि तथाहानीके अभावसे हर्ष शोकको त्यागता है ॥ १२ ॥ मरणधर्मवाला जो यह मनुष्य है सो इस आत्मतत्वको आचार्यसे श्रवण कर सम्यक आत्मभावसे ग्रहणकरके धर्म्मरूप और सूक्ष्म इस आत्माको उद्यम करके अर्थात शरीरादिकोंसे भिन्न करके-प्राप्त होकर सो विद्वान पुरुष हर्ष करने योग्य आत्माको पाकर आनंदको पाता है ॥ हे नचिकेता ! मैं तुझको इसप्रकार खुले द्वारवाले ब्रह्मरूप ग्रहके तांई सन्मुख हुआ मानताहूं ॥ तात्पर्य यह है जो मोक्षके योग्य तुझको मानता हूं ॥१३॥ इस प्रकार श्रवण करके नचिकेता फिर कहताभया ॥ **नचिकेतोवाच** ॥ हेभगवन! आप जब मेरे पर प्रसन्न हो तब आप मुझ योग्य शिष्यके तांई धर्मसे भिन्न तथा अधर्मसे भिन्न और इस कार्य तथा कारणसे भिन्न तथा भूत, भविष्यत, वर्तमान, तीनकालोंसे भिन्न जो वस्तु है तिसको आप जानतेहो सो मेरे तांई कथन करो ॥ १४ ॥ ऐसे नचिकेता करके पूछी हुई वस्तु अर्थात ब्रह्मके अन्य विशेषणोंके कहनेकी इच्छावाले हुए यमराज कहते भये ॥ **यमोवाच** ॥ हे नचिकेता ! जिस वस्तुको सर्व वेद अर्थात वेदके एक देशरूप उपनिषद पाद योग्य पदको प्रतिपादन करतीहै ॥ और सर्व तपोंको जिसकी प्राप्ति अर्थ कहतीहै ॥ और जिसकी इच्छा वाले हुए अर्थात जिस ब्रह्मको प्राप्ति अर्थ ब्रह्मचर्यको आचरण करते हैं और जिसके जाननेकी तूं इच्छा करताहै ॥ सो पद मैं संक्षेपसे कहताहूँ ॥ वह ओम् पदका वाच्य और ॐ शब्दरूप प्रतीकवाला है ॥ १५ ॥ याते यह अक्षर अर्थात अविनाशी रूप ब्रह्म अर्थात सगुण ब्रह्मरूप श्रेष्ठ है ॥ और यही अक्षर अर्थात अविनाशीरूप ब्रह्म परम अर्थात निर्गुण ब्रह्मरूप श्रेष्ठ है ॥ तिन दोनों का प्रतीक रूप जो यह ॐकार रूप अक्षर है इसको (अर्थात यही अक्षर अर्थात अविनाशी रूप है) ऐसे उपास्य रूप जानकर जो पुरुष परम ब्रह्मकी इच्छा करताहै सो जानने योग्य है ॥ और जो अपर ब्रह्मकी इच्छा करताहै तब सो पाने योग्य होताहै ॥१६॥ जिससे यहा ऐसा है ॥ इसीसे यह ओंकाररूप जो आलंबन अर्थात् उपासनाका आश्रय है ॥ सो ब्रह्म प्राप्तिके साधनरूप अन्य आलंबनोंके मध्य श्रेष्ठ है ॥ अर्थात अतिशय करके स्तुति करने योग्य पररूप है॥ और यही आलंबन पर अर्थात श्रेष्टसे दूसरा अश्रेष्ठ अपर रूप है ॥ काहेते जो: परब्रह्म और अपरब्रह्म दोनोंको विषय करनेवाला है ॥

याते इन आलंबनको जानकर परब्रह्म अथवा अपर ब्रह्म लोकमें महिमाको पाता है ॥ अर्थात ब्रह्मकी न्याईं उपासना करने योग्य होता है ॥ १७ ॥
धर्मसे भिन्ने है इत्यादिक इस चतुर्दशी कंडिकामें पूछे हुए सर्व उपाधिरहित आत्मा और अपर ब्रह्मका आलंबन होनेकर प्रतीक होनेकर मंद और मध्यम अधिकारियोंके तांइ ओंकार कहा ॥ अबतिस ओंकाररूप आलंबनवाले आत्माके साक्षात निर्धार करनेकी इच्छासे यह....कहते है ॥ यह आत्मा न जन्मताहै न मरता है इस प्रकार जन्ममरण दोनों विकारोंके अभावसे अन्य विकारोंका भी अभाव जानना; फिर सो आत्मा कैसा है ? सर्वज्ञ है तथा यह आत्मा किसी अन्यकारणसे उत्पन्न नहीं हुआ ॥ और इस आत्मासे कोई अन्य अनर्थरूप कार्य पदार्थ उत्पन्न नही हुआ ॥ इस निमित्तसे यह आत्मा अजन्मा है और नित्य है ॥ तथा शाश्वत है अर्थात अपक्षय अर्थात जरा रहित है ॥ इसीसे पुराण अर्थात नित्य नवीन है ॥ भाव यह वृद्धिरहित है ॥ इस प्रकार आत्मा जन्म, अस्ति, वृद्धि, अपक्षय, परिणाम, नाश, इन षट् विकारोंसे रहित है ॥ अर्थात शरीरादिकोंसे रहित है ॥ याते शरीरके नाशसे नाश नहीं होता ॥१८॥
ऐसे व्यापक अछेद्यरूप अविनाशी आत्माको शरीरादिकोंमें आत्मत्व दृष्टि करनेवाला हनन क्रियाका करता हंता पुरुष सो जब इस आत्माको मैं हनन करूं ऐसे हनन करनेको मानता अर्थात चितवताहै ॥ और हनन क्रियाका विषय जो हत पुरुष सो जब मैं हननको पाया ॥ ऐसे आत्माको हनन क्रियाका विषय हन्या अर्थात मराहूआ मानता है ॥ तब वे दोनो ही आप आत्माको नही जानते ॥ काहे ते जो यह आत्मा क्रियारहित होनेसे किसीको मारता नही और हननको पाता नही ॥ आकाशकी न्याई निराकार होनेसें क्रिया रहित होनेसे ॥ याते धर्म अधर्मादिक जो संसार है ॥ सो अनात्माके जाननेवाले अज्ञानियोंका विषय है ॥ ब्रह्मके जाननेवाले ज्ञानियोंका विषय नहीं है ॥ १९ ॥

हे नचिकेता ! प्रमाणुआदिक जो सूक्ष्म वस्तु हैं॥ तिनसे भी यह आत्मा अति सूक्ष्म है अर्थ यह जो दुर्ज्ञेय है ॥ और आकाश पर्वतादिक जो महान पदार्थ हैं ॥ उनसेभी यह आत्मा अति महान है ॥ काहेते जो जिस में यह सर्व स्थूल पदार्थ स्थित हैं ॥ और सो आत्मा इन सर्व प्राणियोंके हृदयरूप गुहा विषै स्थित हैं ॥ तिस दर्शन,श्रवण, मनन और विज्ञानरूप लिंगवाले आत्माको

निष्काम अर्थात दृष्ट अदृष्ट बाह्य विषयोंसे उपरामको प्राप्त भयी जो बुद्धि तिस बुद्धिवाला हुआ जब ऐसे देखता है ॥ तब शरीरके धारणसे प्रसन्न होताहै ॥ ऐसे धातु जो मनादिक करण हैं इन धातुके प्रसादसे तथा कर्मके निमित्तसे वृद्धि और क्षयसे रहित आत्माकी महिमाको देखताहै ॥ अर्थात यह मैं हूं ऐसे साक्षात जानताहै ॥ इसीसे शोक रहित होता है ॥ २० ॥ हे नचिकेता! यह आत्मा अचल हुआभी दूरदेश विषे गमन करताहै ॥ और शयन करता हुआभी सर्व देशमें प्राप्त होताहै ॥ और विद्या धनादिकोंके मद सहित हुआभी सर्व मदसे रहित है ॥ अर्थात उपाधिके वश्य भद्र क्रिया आदिवाला प्रतीत होताहै ॥ परंतु वास्तवसे वह आत्मा क्रिया मदादिकसे रहित निरुपाधिक है; ऐसे तिस दुर्गेय सूक्ष्म आत्माको मुझसे भिन्न कौन जाननेको समर्थ है? अर्थात सूक्ष्मदर्शी बुद्धिमान पुरुष उस आत्माके जाननेको समर्थ होवेगा॥२१॥ अब जिस आत्माके ज्ञानसे शोकका नाश होताहै सो आगे निरूपण करते हैं॥हे नचिकेता! यह आत्मा वास्तवसे आकाशवत अशरीर अर्थात शरीर रहित है॥और सर्व शरीर देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, आदिक अनस्थिर पदार्थों विषें नित्य रूप स्थित है और महान अर्थात बडा है तथा निरपेक्ष व्यापक है ॥ ऐसे नित्य महान व्यापक आत्माको मैं आत्मा हूं ऐसे धीर अर्थात विवेकी पुरुष मानकर शोकको नहीं प्राप्त होता ॥ २२ ॥ यद्यपि यह आत्मा दुखसे जानने योग्य है तथापि जिस सम्यक उपायसे जाना जाता है ॥ सोई कहते हैं कि, यह आत्मा अनेक वेदनके पठन पाठनसे प्राप्तहोने योग्य नहीं ॥ और वेदोंके अर्थके धारनकरनेकी सामर्थ्यवाली बुद्धिसे भी प्राप्त होने योग्य नहींहै ॥ और उपनिषदरूप वेदांतसे भिन्न अन्य ग्रंथोके श्रवणकरभी प्राप्त होने योग्य नहींहै ॥ अथवा ब्रह्मनिष्ठ गुरुके उपदेश विना केवल उपनिषदोंके श्रवणसेभी प्राप्तहोता नही ॥ फिर किस पुरुषार्थ कर प्राप्त होने योग्यहै ? ऐसे पूछे तो कहतेहैं कि, जिस आत्माका अभेदरूप करके जो पुरुष नित्य चिंतनरूप भजन करताहै तिसकर प्राप्त होताहै ॥ किस प्रकार प्राप्त होता सोकहतेहैं ॥ कि, अपने आत्माकोही यह साधक पुरुष चाहताहै तिसही चाहनेवाले आत्मासेही यह आप आत्माजानने योग्य है जो निष्काम है सो आत्माको चाहताहै तिस आत्मा सेही आत्मा जानिये है यह अर्थहै ॥ ताते आत्मा

कैसे जानिये है? तहां कहतेहैं तिस अपने आत्माकी कामनावाले पुरुष के ताईं आत्मा अपनी परमार्थैकत्वताको अर्थात अपने स्वभावको प्रकाशता है ॥ २३ ॥ हे नचिकेता! जो पाप कर्मसे रहित नहीं हुआ ॥ तथा बाह्य इंद्रियोंके रोकनेरूप दम तथा अंतर विषयवासनाको रोकनेरूप शम तथा सर्व चित्तवृत्तियोंके निरोध रूप समाधिसे जो रहित है ॥ और मनकी शांतिसे रहित है ॥ वह पुरुष इस आत्माको साक्षातकार नहीं कर सकता ॥ तब किस करके साक्षातकारको प्राप्त होता है? तहां कहते हैं ॥ जो पुरुष शुद्ध चित शम, दम, श्रवण, मनन, निदिध्यासन युक्त है ॥ वह पुरुष इस आत्माको "मैं ब्रह्म स्वरूप आत्मा हूं"॥ऐसे अभेद रूप प्रज्ञान करके प्राप्त होता है ॥२४॥ अब जो पुरुष पूर्वोक्त साधनोंसे रहित है ॥ सो इस आत्माको कैसे जानता है? अर्थात किसी प्रकारसे भी नहीं जानता है ॥ यह कहते हैं ॥ जिस आत्माके सर्व धर्मोंके धारण करनेवाले तथा सर्वके रक्षा करनेवाले ब्राह्मण और क्षत्रीय दोनों वर्ण भोजन रूप हैं ॥ और सर्वका नाशक मृत्यु जिसके भोजनका शाकरूप है ॥ और जिस अपनी महिमा रूपस्थान विषै विश्वके संहारका कर्ता वर्तता है ॥ इस प्रकारका होनेसे ऐसे आत्माको पूर्वोक्त साधनोंसे रहित कौ-नसा प्राकृति बुद्धिवाला पुरुष पूर्वोक्त साधनोंवाले पुरुषकी न्याईं जान सकता है? अर्थात कोईभी नहीं जान सकता ॥ २५ ॥

इति श्रीकठोपनिषद गत द्वितीयवल्ली संपूर्ण ॥ २ ॥

ॐ श्रीपरमात्मनेनमः ॥

अथ श्रीकठोपनिषद्के प्रथम अध्याय गत त्रितीय वल्ली प्रारभ्यते ॥

ऋतं पिबंतौ अर्थात ऋतके पान करनेवाले इत्यादिक तृतीय वल्लीका संबन्ध दूसरी ब्रल्लीसे यह है कि, विद्या और अविद्या यह दोनों नाना विरुद्ध फल वाली हैं ॥ परंतु यह जैसीहै तैसी निर्णय करी नहीं है ॥ याते तिन्होंके निर्णय अर्थ इस तीसरी वल्लीमें श्रुती रथके रूपालंकारकी कल्पना करेगी ॥ जिससे सुखेनही समझ विषे आजावे गी॥और प्राप्त होनेवाला तथा प्राप्त होने योग्य और गमन करनेवाला तथा गमन करने योग्य इन्होंके विवेक वास्ते रथके रूपालंकारके कथन द्वारा दोनों आत्मा अर्थात् जीव चैतन्य तथा परमात्म चैतन्यके कहनेका आरंभ करते हैं ॥

मूलमंत्र ॥ ऋतंपिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहाम्प्रविष्टौ परमेपरार्द्धे ॥
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो येच त्रिणाचिकेताः ॥

अर्थ यह है ॥ जीव और परमात्मा यह दोनो अवश्य होनहार होनेते अपने किये कर्मका फलरूप जो ऋत पान करतेहैं ॥ अर्थात सुख फल जो है तिसको भोगते हैं ॥ यद्यपि तिनमें जीव अपने कर्मके फलको भोगता है अन्य दूसरा परमात्मा नहीं भोगता ॥ तथापि बुद्धि उपाधि रूप पात्रके संबन्धसे छत्रवाले पुरुषके दृष्टांतसे दोनों पान करते हैं ॥ अर्थात जैसे दो पुरुष जाते होवें ॥ तिन दोनोंमें एक छत्री वाला होवे और दूसरा छत्री रहित होवे ॥ तो भी अन्य पुरुष देखकर यह कहते हैं॥जो छत्री वाले जाते हैं॥तैसे यद्यपि जीव स्वकर्म फल भोगता है और परमात्मा स्वकर्म फल भोगरहित है॥तथापि समान उपाधिके निमित्तसे ऋत पान करते हैं ऐसे दोनोमें उपयोग होता है ॥ इस शरीररूप लोक विषे बुद्धिरूप गुहामें प्रवेशको पाते हैं ॥ और देहके आकाशकी स्थितिकी अपेक्षसे उत्कृष्ट जो परमब्रह्मका स्थानरूप हृदयाकाश है उसमें प्रवेशको पाते हैं ॥ और यह दोनो (जीव परमात्मा) अपने अल्पज्ञता सर्वज्ञतारूप धर्मकर विलक्षण हैं ॥ यांते तिनको संसारी असंसारी भावसे ब्रह्मवेत्ता

कहते हैं ॥ केवल ब्रह्मवेत्ता नहीं कहते ॥ किंतु पांच अग्निवाले गृहस्थभी कहतेहैं ॥ और जिन्होंने तीन बार नाचकेतनामक अग्निका संपादन किया है॥ ऐसे जो त्रिणाचिकेत पुरुष हैं तेभी कहते हैं ॥ १ ॥ जिन यजन करनेवाले कर्मियोंका सेतुरूप दुखके तरने अर्थ होनेसे ऐसा जो नाचिकेत नामक अग्नि है ॥ तिसके जाननेको और संपादन करनेको हम समर्थ हैं ॥ किंवा जो भय रहित और संसारके तरनेकी इच्छावाले पुरुषोंका पार है ॥ और जो ब्रह्मवेत्तनका परम आश्रय अविनाशी आत्मा इस नामवाला ब्रह्म है ॥ तिसके जाननेको हम समर्थ हैं ॥ इसका भाव यह है ॥ जो अपरब्रह्म परमब्रह्म यह दोनो कर्मिष्ठन तथा ब्रह्मवेत्तनके क्रमसे आश्रय जानने योग्य हैं ॥ ऋतको पीते हैं इस प्रथम ऋचासे इन दोनों के कहनेका आरंभ किया है ॥ २ ॥ अब तिन दोनोंमेंसे जो उपाधिका किया संसारी जीव है ॥ सो विद्या और अविद्या अर्थात ज्ञान तथा कर्ममें अधिकारी है ॥ तिसके वास्ते मोक्ष तथा संसारके तईं गमन विषे रथकी कल्पना करते हैं ॥ हे नचिकेता ! तिन जीव और परमात्मामेंसे कर्मके फल भोक्ता संसारी आत्माको रथका स्वामी रथी जान ॥ और शरीरको रथरूप करके मान ॥ और निश्चयात्मक बुद्धिको रथका चलावनेवाला सारथी जान ॥ और संकल्प विकल्परूप वृत्तिवाले मनको अश्वोंके बांधनेकी रज्जु अर्थात लगाम करके मान ॥ ३ ॥ और श्रोत्र चक्षु आदिक इंद्रियोंको अश्वोंकी नाईं कहते हैं ॥ और शब्द, रूपादिक विषयोंको तिन इंद्रियोंके मार्ग जान ॥ और शरीर इंद्रिय मन युक्त आत्माको भोक्ता संसारी रूप विवेकी पुरुष कहते हैं ॥ तात्पर्य यह है ॥ जो आत्मा विषे भोक्तापणा बुद्धि आदिककी उपाधि करके है ॥ वास्तवसे आत्मा अभोक्ता रूप है ॥ ४ ॥ अब आगे बुद्धिरूप सारथीके अधीन संसार और मोक्षकी गतिदिखाते हैं ॥ जैसे सारथी रथके चलाने विषे गंतव्य अर्थात गमन योग्य मार्गसे अज्ञात हो ॥ और लगामको अपने अधीनमें न रख सकता हो ॥ और अश्वभी दुष्ट होवे ॥ तब उस सारथीके वशमें न होकर दुष्ट अश्व कुमार्ग विषे लेजाकर उसरथीको खेद युक्त स्थानको प्राप्त करता है ॥ तैसे जिसका बुद्धिरूप सारथी प्रवृत्ति तथा निवृत्ति विषै विवेकरहित है ॥ और एकाग्रता रहित मन रूप लगाम जिसकी है ॥ और इंद्रियरूप अश्व दुष्ट हुए उस बुद्धिरूप सारथीके वशवर्ति न होकर कुमार्गसे

दुखरूप जन्म मरणादिक संसारमें जीवात्मा रूप रथके स्वामीको लेजाकर प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥ और जो बुद्धिरूप सारथी प्रवृत्ति निवृत्तिके जाननेवाला विवेकी है ॥ और एकाग्रता युक्त मन रूप लगामवाला है ॥ उसके इंद्रियरूप अश्व श्रेष्ठ अश्वोंकीन्याईं वशवर्ति होते हैं ॥ ६ ॥ पूर्वोक्त तिन दोनोंमेंसे विवेकसे रहित बुद्धिरूप सारथीवाले को यह फल होता है ॥ जो विवेकरहित बुद्धिरूप सारथीवाला है ॥ और मनकी एकाग्रतासे रहित है याते सदाही अशुचि है ॥ ऐसे रथका स्वामी है ॥ सो तौ पूर्वोक्त जो अक्षर ब्रह्मरूप परम पद है ॥ तिसको उस सारथीसे प्राप्त नहीं होता है ॥ उलटा जन्म मरण तप संसारको पाता है ॥७॥ और दूसरा विवेकवान सारथीसे युक्त विद्वान तथा एकाग्र मनवाला ॥ और इसीसे सदा पवित्रजो रथका स्वामी होता है ॥ सो तो उस पदको प्राप्त होता है ॥ सो पद कैसा है ? जिस पदके प्राप्त भयेसे पतन हुआ फिर संसारमें जन्म नहीं पाता ॥ ८ ॥ सो पद कौन है ? तहां कहते हैं ॥ जो तिनमेंसे विवेक युक्त बुद्धिरूप सारथी वाला है ॥ और एकाग्र चित्तवाला हुवा पूर्वोक्त जो शुद्ध मनुष्य है ॥ सो संसारकी गति परमब्रह्मरूप पानेयोग्य पारको पाता है ॥ और सर्व संसारके बंधनोंसे मुक्त होता है ॥ सो व्यापक ब्रह्मरूप परमात्मा विष्णु का परम पद अर्थात उतकृष्ट स्थान रूप तत्व है ॥ तिसको वह विद्वान पाता है ॥ ९ ॥ अब प्राप्तहोनेयोग्य जो पद अर्थात स्वरूप है ॥ तिसकी इद्रिय स्थूल है ॥ यहांसे आरंभ करके सूक्ष्मताके अधिक न्यून क्रम कर प्रत्यगात्मभावसे प्राप्त होने योग्य है ॥ इस अर्थवाले इन दोनों ऋचाओंके समूहका आरंभ करते हैं ॥

प्रथम इंद्रिय स्थूल हैं तिनसे शद्बादिक विषय जो सूक्ष्मभूतरूप इंद्रियोंके कारण हैं वह सूक्ष्म हैं॥ फिर तिनों अर्थों अर्थात विषयोंसे मन सूक्ष्म है और मनसे पर अर्थात सूक्ष्म बुद्धि है; फिर तिस व्यष्टि बुद्धिसे पर अर्थात सूक्ष्म समष्टि बुद्धिरूप हिरण्यगर्भ अर्थात महत्तत्त्व है ॥ १० ॥ फिर महतत्त्वसे अतिशयकरके सूक्ष्म तथा महतत्त्व रूप हिरण्यगर्भादिक सर्व जगतका कारणरूप चैतन्यात्माके आश्रित अव्याकृतादिक नामवाली अव्यक्त है ॥ तिस अव्यक्तरूप मायासेपरे अतिशयकर सूक्ष्म परमार्थसे सर्वके अंतरात्मारूप पुरुष है ॥ तिस पुरुषरूप परमात्मा सर्वके अंतरआत्मासे परे सूक्ष्म वा अन्य कोई नहीं है; सोइ सर्व सूक्ष्म पदार्थोंका अवधिरूप है; सोई सर्वके अंतरात्मा चैतन्य सत्य आनंदस्वरूप पर-

मात्मा है इसीसे गमन करणेहारे सर्व संसारी जीवोंका सो पुरुष परमात्माही श्रेष्ठ परमगति रूप है जिसको प्राप्त होकर ज्ञानवान फिर जन्म मरणरूप संसारमें लौटकर आवता नहीं है ॥ ११ ॥ और यह आत्मा सर्वभूतोंमें स्थित हुआभी अज्ञानकर आछादितहुआ अज्ञानी पुरुषोंको सर्वत्र प्रतीत होवै नहीं है ॥ और विवेकी सूक्ष्म बुद्धिरूप नेत्रवाला उस ब्रह्म विषयिणी शुक्ष्म बुद्धिकरके देख सकता है ॥ १२ ॥

अब इस आत्माकी प्राप्तिवास्ते योग रूप उपायको निरूपण करते हैं ॥ बुद्धिमान विवेकी पुरुष इस वाणीसे ग्रहण कर सर्व इंद्रियोंको मनमें लयकरे फिर तिस मनको प्रकाश रूप आत्मा अर्थात बुद्धिविषे लयकरे ॥ फिर ज्ञान स्वरूप बुद्धिकोप्रथम उत्पन्न भये हिरण्यगर्भ रूप महत्तत्त्वमें लय करे ॥ फिर उस महतत्वको शांतरूप सर्व विशेषण शून्य क्रियारहित मुख्यसाक्षी चैतन्यरूप आत्माविषे लयकरे ॥ १३ ॥

अब श्रुति भगवती अपने प्रिय मुमुक्षुजनोंको स्वतंत्र उपदेश करे है ॥ हे मुमुक्षुजनो तुम उठो अर्थात आत्मज्ञानके सन्मुख होवो ॥ और अज्ञान निद्राको ब्रह्मज्ञानरूप जाग्रतसे निवृत करो ॥ जब प्रयंत तुम अज्ञानरूप निद्राविषे शयन करतेहो अर्थात आत्माके यथार्थ स्वरूपको नही जानते॥ तब प्रयंत जन्म मरण रूप संसार स्वप्न महाभयानक निवृत नहीं होवेगा ॥ याते ब्रह्म ज्ञानरूप जाग्रतसे अज्ञानरूप निद्राकी निवृत्ति करो ॥ कैसे निवृतिकरिये?॥ ऐसे पूछें तहां कहते हैं ॥ जिसस्वरूपके जाणनेवाले श्रेष्ठआचार्योंके तांई समीप जायकर तिनोंने उपदेश किये सर्वांतरवार्ति आत्माको मै हूं ऐसे जानकर तिसअज्ञानरूप निद्राको दूर करो॥अब ज्ञानने योग्य स्वरूपका सूक्ष्मबुद्धिका विषय होनेसे तिस ज्ञानरूप सूक्ष्मबुद्धिको यह सुलभ है॥याते विशेष यत्न क्या करना है?॥ ऐसे विस्मरण करने योग्य नहीं है॥किंतु दुर्लभ जानकर इसमें यत्न किया चाहीये॥ ऐसे श्रुति माताकी न्याईंकृपा दृष्टिसे कहे है ॥ और यह सूक्षमबुद्धिरूप ज्ञानमार्ग कैसा है ? जैसे केशोंकीछेदक क्षुराके अग्र भागकी धारा पाषाणपर तीक्षण करीहोई उसके ऊपर गमन किया जावेनही ॥ तैसे कठिन सिद्ध करणेयोग्य जो यह ज्ञानमार्ग महात्मा पुरुष कथन करे है ॥ उसकी प्राप्तिवास्ते यत्नअवश्यकरना ॥ १४ ॥

जानने योग्य वस्तुको अतिसूक्ष्म होणेसे उसको विषयकरणेवालेज्ञानमा-र्गकी दुखसे संपादन करणेकी योग्यता कविजनकहते हैं ॥ यहपूर्वोक्त चतुर्दशी ऋचःका अभिप्राय है ॥ इसविषे यह शंकाहोवेहै ॥ जोतिसजाणनेयोग्यवस्तुका सूक्ष्मपणाकैसेहै? तहांकहे है॥जो निर्गुण परमात्मा शद स्पर्श रूप गुणसे रहित है ॥ तथा अवयव है और रस गुणसे रहित है ॥ तथा गंधगुणसे रीहत है ॥ और उत्पाति रहित होनेसे कारणसे रहित है ॥ काहेते जो उत्पतिवाली वस्तुनाशहोवे है ॥ याते वह आत्मस्वरूप ब्रह्मअनंत है ॥ अर्थात देशकाल वस्तुके प्रच्छेदअंतसे रहित है ॥ और हिरण्यगर्भकी बुद्धिरूपमहतत्त्वसे रहित है ॥ तथा निर्विकार है ॥ तिस इसप्रकारके आत्माको जानकर यह पुरुष अविद्या काम कर्म रूप मृत्युसे छूटजाता है ॥ १५ ॥

अब प्रसंग विषे प्राप्त भये ज्ञानकी स्तुतिअर्थ श्रुतिभगवती कहे है॥ यहजो यमराजने नचकेताके तांई ग्रंथउपदेशकऱ्या है ॥ सो सनातन है अर्थात वैदिक-होनेसे चिरकालका है ॥ तिस उपाख्यानग्रंथको कथनकरनेवाला तथाश्रवणक-रणेवाला दोनो ब्रह्मलोकके तांई प्राप्तहोते हैं ॥ तात्पर्ययह है ॥ जोजिसको ज्ञान नहीहुआ उसकोतौ कथनकरने तथा श्रवणकरणेसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति द्वारा मोक्षहोवे है ॥ और जो प्रतिबंधसे रहित है ॥ उसको इसलोकमेंही ज्ञान द्वारामोक्षकी प्राप्तिहोवे है ॥ १६ ॥ और जो पुरुषइसपरमगोप्यग्रंथको ब्राह्मणोंकी सभामें श्रवणकरावे है ॥ सो पुरुष महत फलको प्राप्त होवे है ॥ तथा जोपुरुष पवित्रहोकर श्राद्धकालमें यजनकरणेवालेब्राह्मणोंके तांई श्रवण करावे है ॥ तिसका श्राद्धअनंतफलके अर्थ समर्थहोवै है ॥ अनंतफलके अर्थसमर्थ होवे है ॥ यहांदोवार कथन अध्यायकी समाप्तिअर्थ है ॥ १७ ॥

॥ इतिश्रीकाठकोउपनिषदकेप्रथमअध्यायगततृतीयवल्लीसंपूर्ण ॥

प्रथमअध्यायसंपूर्ण ॥

ॐ

श्रीपरमात्मनेनमः ॥

अथश्रीकठवल्लोपनिषदकेद्वितीय अध्याय गतप्रथमवल्लीअर्थातकाठकोपनिषदकी चतुर्थवल्लीप्रारभ्यते ॥

इससे प्रथम तृतीयवल्ली में यह कह्याथा ॥ जो यहआत्मा सर्वभूतोंविषे व्यापक गूढ हुआ प्रतीत होवे नहीं ॥ केवल सूक्ष्म बुद्धि करके प्रतीतहोवे है ॥ अन्य श्रोत्रादिकइंद्रियोंकरके प्रतीतहोवेनही ॥ इसमें हेतु यह है ॥ हे नचकेता ! स्वयम्भू अर्थात स्वतःसिद्ध स्वतंत्र परमात्मा शब्दादिक विषयोंके प्रकाशवास्ते श्रोत्रादिक इंद्रियोंको हननकरताभया ॥ अर्थात बाह्यप्रवृत्ति निमित्तरचताभया ॥ याते श्रोत्रादिकइंद्रिय बाह्यकी वस्तुके जाणनेविषे समर्थहोवे है ॥ अंतर जो साक्षीप्रत्यगात्मा है ॥ तिसके जणानेमें समर्थ नही होवे है ॥ ऐसे लोकके स्वभावहोतेभी कोई एकविवेकीपुरुषआपणे प्रत्यकात्माको देखता है; कैसे देखता हैं तहांकहे हैं ॥ जोसर्वविषयोंसे रोक्या है चक्ष्युश्रोत्रादिकइंद्रियोंकासमूहजिसने ऐसाइंद्रियोंके निरोधवाला संस्कारी उत्कटमोक्षकीइच्छाकरता हुआइसप्रत्यकात्माकोप्रत्यक्ष साक्षातकरता है ॥१॥ हेनचकेता ! इसलोक तथा परलोकके जोविषय हैं ॥ तिन बाह्यविषयोंको अतियत्नकर आत्मविचारसे रहित अज्ञान बालकग्रहणकरे है ॥ ऐसे अविवेकी आत्मविचाररहित पुरुष सर्व तर्फसे विस्तृत अविद्याकाम और कर्मका समुदाय रूपजो मृत्यु है ॥ तिसको और देह तथाइंद्रियादिकके संयोगऔर वियोग स्वरूप और निरंतरवर्तमान जन्ममरण जरा तथारोगादिक अनेक अनर्थोंके समूहरूपपाश अर्थातफासियोंकोपावते हैं ॥ औरजो विवेकी पुरुष है ॥ सोतो ब्रह्मासे आदिलेकरकीटप्रयंत स्थावरजंगमसर्वप्राणियोंको मृत्युग्रस्तजाणकर तथाकर्मउपासनाकेफलको अनित्यजाणे है ॥ औरआत्मज्ञानकेफलअमृतरूपमोक्षको नित्यजाणे है ॥ इसप्रकारकर्मफलकोअनित्य जाणकरतुमारी न्याई बहुत पुरुष अनित्य स्वर्गादिककी इछा नहींकरे है ॥ २ ॥

हे नचकेता ! जिस आत्माके ज्ञानकर तिसही आत्माको प्राप्तहोवे है ॥ उस-आत्माकेस्वरूपको श्रवणकर ॥

जिस आत्माकर यह पुरुष नेत्रइंद्रिय जन्य अंतःकरणकीवृत्तिद्वारा नीलादि-करूपकोजाणे है॥तथा रसनाइंद्रियद्वारारसको तथा गंधतथा शब्दस्पर्शविषयोंको जाणे है ॥ तथाजिसआत्माकर मैथुननिमितसे उत्पन्नहुएसुखकोजाणे है ॥ हे नचकेता ! जो आत्मातुमनेपूछाथा॥तिसआत्माकरही सर्वसंघातकी चेष्टा सिद्धहोवे है॥ औरतुमने जोपूर्व आत्मापूछाथा॥सो यही है इससे भिन्न अन्य आत्माको-ई नही है ॥ और इसीआत्माके ज्ञानकर विवेकीपुरुष कृत्यकृत्यभावको प्राप्तहोवे है॥उसको फिर अन्य कुछजाणनेयोग्य शेषनहींरहता ॥ इस आत्माका ज्ञानही सर्वज्ञानोंकीअवधिरूप है ॥ ३ ॥

हे नचकेता ! जिसआत्माकर यहपुरुषस्वप्नअवस्थाके मध्यवर्तिपदार्थोंको तथा-जाग्रतअवस्थाकेपदार्थोंको इनदोनोअवस्थाओंको देखेअर्थातजाणे है ॥ ऐसे महा-आकाशादिकोंसेभी निर्पेक्ष्यव्यापकआत्माको मैं व्यापकआत्माहूं ॥ ऐसे जाणता है ॥ तिस जाणनेवाले विवेकी पुरुषको शोककी प्राप्तिहोवे नही॥ अर्थात ऐसा जा-णनेवाला विवेकी पुरुष फिर शोकको नही प्राप्तहोता ॥ काहेते जो प्रच्छिन्नपदा र्थोंको कल्पितअविद्याकारूपजाणता है ॥ ४ ॥

फिर यमराजकहे है ॥ हे नचकेता ! जोकोई पुरुषकर्मफलकेभोक्ता और समीपवर्ति तीनकालके नियामक ईश्वर प्राणादिक समूहके धारणेवालेजीवरूपआ-त्माको जाणता है ॥ तिसज्ञानभयेपीछे आपणीरक्षाकीइच्छानहीकरे है ॥ काहेते जो निर्भयताकेप्राप्तहोणेसे॥जब प्रयंतभयके मध्य स्थित हुआ आपको अनित्य-मानता है ॥ तबप्रयंतआपणी रक्षाकेनिमित्तइच्छाकरता है॥जब आपको नित्यअ-द्वैतरूप जाणता है ॥ तबकिसकी कबकिससे रक्षाकरणेकी इच्छाकरे ॥ अर्थात किसीकी नही यहहीसोब्रह्म है ॥ ५ ॥

जोपरमात्माही ईश्वरभावसे कह्यासो सर्वकाआत्मा है॥ऐसेदिखावे है॥हे नच-केता कोई मुमुक्षुजन जलसहितपांचभूतोंसे पूर्वमायाजो हिरण्यगर्भज्ञानादिलक्षण-वालेतपरूपब्रह्मसे उत्पन्नभया है ॥ उसप्रथमउत्पन्नभयेहिरणगर्भको देखता है॥ कैसासोहिरण्यर्भ है ? जोदेवताआदिकशरीरोंको उपजायकर सर्वप्राणियोंके हृद-य प्रकाशरूप ग्रहाविषे प्रवेशकरके शब्दादिकविषयोंको अनुभवकरताहुआ

कार्यकारणरूप भूतनके सहित स्थित भया है तिसको ऐसे देखता है सो पूर्वोक्त ब्रह्मको देखता है ॥ ६ ॥

अब हिरण्यगर्भके अन्य विशेषण कथन किये हैं ॥ **मूलमंत्र ॥ या प्राणेन सम्भवत्यदितिर्देवतामयी ॥ गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीं या भूते भीर्व्यजायत एतद्वैतत ॥**

अर्थ—जो सर्वदेवतामयी है और प्राण स्वरूपकर परमब्रह्मसे उपजती है और शब्दादिकोंके अदन अर्थात् भोगनेसे अदिति कहीए है ऐसी सर्व प्राणियोंके हृदय आकाशरूप गुहाविषे प्रवेशकर स्थित भयी जो अदिति है तिसको देखता है सो इसपूर्वोक्त इस ही ब्रह्मको देखता है ॥ ७ ॥ किंचः ॥ दिन दिन विषे घृतादिक होमद्रव्यवाले कर्मिष्ठमनुष्योंसे और जाग्रणके स्वभाववाले प्रमादरहित ऐसे ध्यानके स्वभाववाले योगी मनुष्यनसे यज्ञविषे तथा हृदय विषे क्रमकर स्तुति करनेयोग्य तथा वंदना करने योग्य ऐसा जो जातवेदनामवाला अग्निदेव है सोइ यह पूर्वोक्तप्रसंगविषे ब्रह्म है ॥ ८ ॥ किंचः जिस प्राणसे सूर्य उदय होवे हैं तथा अस्तको पावेहै और दिन दिन विषे चलताहै और स्थिति कालविषे अधिदैवतरूप तथा अध्यात्मरूप तिसप्राणरूप आत्माकेतांइ अग्निआदिकरूप तथा वाक्यादिक इंद्रियरूप सर्व देव प्रवेशको पावते है ॥ सो प्राणभी ब्रह्महीहै ॥ तिस प्राणरूप ब्रह्मको कोइ उल्लंघन नहीकरे है अर्थात तिस ब्रह्मभावको छोडकर अन्यभावकेतांइ जाता नही ॥ यहही सो ब्रह्म है ॥ ९ ॥ जो परमब्रह्म परमात्मा तुमारे शरीरवीषे तथा हमारे शरीरवीषे तथा अन्य सर्वजीवोंके शरीरविषे साक्षीरूप स्थित है सोइ परमात्मा परोक्ष ईश्वरशरीरविषे तथा हिरण्यगर्भशरीरविषे स्थित है ॥ और जो चैतन्य परमात्मा ईश्वरहिरण्यगर्भादिकशरीरोंविषे स्थित है सोइ परमात्मा साक्षीरूपसे अस्मदादिकशरीरोंविषे स्थित है ॥ और जो पुरुष इस परमात्माविषे नानात्वकीन्याइ भेदयुक्त देखता है सो पुरुष मृत्युसे मृत्यु अर्थात वारंवार जन्ममरणको प्राप्त होवे है॥१०॥

हे नचकेता! यह आत्मा शुद्ध मनकर प्राप्त होनेयोग्य है और इसब्रह्मरूप आत्माविषे नानात्वभेद किंचितमात्रभी नहीं है ॥ जो आत्माविषे नानात्वकी

न्याई देखता है अर्थात् मैं भिन्न हूं तथा ब्रह्म भिन्न है और यह भिन्न है ऐसे जो भेदभाव नानात्त्व देखता है सो पुरुष मृत्युसे मृत्युको प्राप्त होता है॥११॥

हेनचकेता! हृदयकमल जो है सो जिससे अंगुष्ठ परिमाणवाला है यांतें तिसके छिद्रविषे वर्तमान जो अंतःकरण सो भी अंगुष्ठपरिमाण होवे है ॥ जिस कर सर्व जगत् पूर्ण है ऐसा जो पुरुष है सो भी तिस अंतःकरणरूप उपाधिवाला हुआ अंगुष्ठपरिमाणवाले मासके नलिकाके मध्यवर्ति आकाशकी न्याई अंगुष्ठ मात्र कहीए है ॥ ऐसा जो अंगुष्ठमात्र पुरुष शरीरके मध्य स्थित है और तीन कालका नियामकरूप ईश्वर है तिस तीन कालके नियामक ईश्वररूप आत्माको जानकर तिस ज्ञानसे पीछे आत्माके रक्षा करनेको नहीं चाहता ॥ यहही सो ब्रह्म है ॥ १२ ॥

हे नचकेता ! यह अंगुष्ठमात्र आत्माही धूमरहित प्रकाशरूप अग्निवत् स्वयंज्योतिरूप है ऐसे योगीजनोंने लक्षणासे हृदयमें जाण्यो है ॥ और जो तीन कालोंका नियामक ईश्वर है सोइ नित्य कूटस्थ पुरुष अबभी प्राणियोंके हृदयमें वर्तमान है और सोइ कलभी वर्तेगा अन्य नही ॥ अर्थ यह जो तिसके समान अन्य पुरुष उत्पन्न होवे नही ॥ यहही सो ब्रह्म है ॥ १३ ॥

हेनचकेता ! जैसे ऊंचे पर्वतोंवत् मेघोंसे पतन भया जो जल है सो नीचे देशमें विस्तारको प्राप्त होकर नाश होवे है ऐसेही आत्माके धर्मोंको शरीर शरीर प्रति भिन्नभिन्न देखता हुआ तिन पीछे पीछे वर्तमान शरीरके भेदको फेरफेर पावता है ॥ तात्पर्य यह है ॥ जैसे जल नीचे पतन हुआ नाशको पावे है तैसे आत्माका भेद देखनेवाला पुरुष अनेक प्रकारके नीचऊंचशरीरोंको प्राप्त होवे है ॥ १४ ॥

हे गौतम नचकेता ! जैसे स्वभावसे शुद्ध जो जल है सो जब किसी शुद्ध देशमें मेघोंसे पतन हुआ शुद्ध एकरस जैसेका तैसा होवे है विपरीत भावको नही प्राप्त होता ॥ ऐसेही एकताको जाननेहारे मननस्वभाववाले मुनिका आत्मा जैसेका तैसा होवे है ॥ विपरीतभावको प्राप्त होवे नहीं ॥ १५ ॥

इतिश्रीकाठकोपनिषद्गतचतुर्थवल्लीसंपूर्णा ॥ ४ ॥ शुभमस्तु ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मनेनमः ॥

अथ श्रीकठोपनिषद्द्वितीयाध्याय गतां पंचमवल्ली प्रारभ्यते ॥

अब ब्रह्मके स्वरूपको दुखसे जानने योग्य होनेकर प्रकारांतरसे ब्रह्मके स्वरूपका श्रुतिमाता उपदेश करे है ॥ हेनचकेता ! इस आत्मारूप राजाका शरीररूप पुर है ॥ तिसशरीररूपपुरके एकादश द्वार हैं ॥ देनेत्र दोकर्णके छिद्र दो नासिकाके छिद्र एकमुख यह सप्त ऊपरके और एक नाभी छिद्र तथा एकलिंग एक गुदा यह नीचेके और शिरके मध्यमें एक, ऐसे शरीररूपपुरके एकादशद्वार हैं॥ और पुरका स्वामी जो आत्मारूप राजा है सो जन्ममरणादिक विकारोंसे रहित है और स्वयंज्योतिरूप है तथा मनसे और वागादिक इंद्रियोंसे रहित है ॥ ऐसे ब्रह्मसे अभिन्न आत्माका ध्यान करता हुआ विवेकी पुरुष ज्ञानकी प्राप्तिद्वारा सर्वबन्धनरूप जो शोक है उसको निवृत्त करे है और मुक्तहुआ भी मुक्त होवै है ॥ तात्पर्य यह है—जो आत्मा है सो नित्यमुक्त है ॥ वास्तवसे आत्माविषे कदाचितभी बंधन हुआ नही, परंतु अज्ञानकरके आपने कर्तृत्वभोक्तृत्वादिकरूप बंधन प्रथम मानताभया ॥ ज्ञानकी प्राप्तिसे अज्ञानके निवृत्तहुए सर्व कल्पितरूप बंधनसे मुक्त होवे है ॥ यहही निश्चयकरके ब्रह्म है ॥ १ ॥

हेनचकेता ! सो आत्मा एकशरीररूप पुरवर्ति नहीं है किंतु सर्व शरीररूप पुरवर्ती है ॥ वह आत्मा कैसा है ? ऐसा पूछे तो कहे है ॥ सो आत्मा हंसरूप है अर्थ—यह गमन करे है ॥ अथवा आत्माकार अंतःकरणकी वृत्तिमें स्थित होकर अविद्या तत्कार्यका नाश करे है यातें आत्माको हंस कहे है ॥ और पवित्र आकाशरूप देशविषे सूर्यरूपसे गति करे है यातें आत्माको शुचिषत् कहै है और सर्वको निवास करावता है यातें आत्माको वसुकहे है ॥ और वायुरूपसे आकाशमें गमन करे है याते आत्माको अन्तरिक्षसत् कहे है ॥ और अग्निरूप है यातें आत्माको होता कहे है ॥ और पृथिवीमें अग्निरूपसे स्थिति करे है यातें आत्माको वेदिषत् कहे है ॥ अतिथि जो जल तिसरूप हुआ कलशमें स्थित होवे है यातें आत्माको अतिथिर्दुरोणसत् कहे है

अथवा ब्रह्मके अतिथिरूपसे ग्रहोंविषे गमनकरे है यातें आत्माको अतिथि दुरोणसत् कहेहै ॥ और मनुष्योंविषे स्थित होवे है यातें आत्माको नृषत् कहे है ॥ और श्रेष्ठ जो देवते तिनोंविषे स्थित होवे है यातें आत्माको वरसत् कहे है ॥ और ऋत जो सत् अथवा यज्ञोंविषे स्थित होवे है यातें आत्माको ऋतसत् कहे है ॥ और आकाशविषे स्थित है यातें आत्माको व्योमसत् कहे है ॥ और जलविषे शंखशुक्तिमकरादिक रूपसे उपजे है यातें आत्माको अब्जा कहे है ॥ और गो जो पृथिवी तिसमें शाकतंदुलयवादिकरूपसे उपजे है यातें आत्माको गोजा कहे है ॥ और यज्ञके साधनरूपसे उपजे है यातें आत्माको ऋतजा कहे है ॥ और पर्वतोंसे नदी आदिक रूप करके उपजे है यातें आत्माको अद्रिजा कहे है ॥ और सर्वका आत्मा हुआभी सत्य स्वभाववाला है यातें आत्माको ऋतं कहे है ॥ और सर्वका कारण होनेसे आत्माको बृहत् कहे हैं ॥ सर्व प्रकारसे भी जगतका आत्मा एकही है आत्माका भेद नही है ॥ यह इस मंत्रका तात्पर्य है ॥ २ ॥

अब देहसे भिन्न आत्माके स्वरूप जाननेविषे लिंग अर्थात् चिन्ह कहे है ॥ जो प्राणवृत्ति वायुको हृदयदेशसे ऊपर चलावता है और अपान वायुको नीचे चलावता है तिस हृदयकमलके आकाशरूप मध्यविषे स्थित और बुद्धिविषे प्रगट ज्ञानरूप प्रकाशवाले सम्यक् भजने योग्य वामनजीको सर्वचक्षुआदिक इंद्रियरूपदेव राजाको वैश्योंकी न्याई रूपादिकके ज्ञानरूप बलिदानको देते हुए उपासते है ॥ जिसके वास्ते और जिसकी प्रेरणासे सर्व वायु तथा इंद्रियोंके व्यापार है सो आत्मा देहसे भिन्न सिद्ध भया ॥ यह वाक्यका तात्पर्य है ॥ ३ ॥

किंवः ॥ इस शरीरविषे स्थित देहवाले आत्माको देहसे मुक्त हुए पीछे भ्रष्ट हुए इस देहके बीच प्राणादिकका समूह क्या शेष रहता है कोईभी शेष नही रहता ॥ यहही सो ब्रह्म है ॥ सो आत्मा देहसे भिन्न है ॥ ४ ॥

अब प्राणादिकके निकस जानेसे इंद्रियादिकोंका समूह नाशको पावे है ॥ आत्माके निकस जानेसे नही याते प्राणादिकसेही मनुष्य जीवते हैं यह कईएक वादियोंका मत है सो असंभव है ऐसे कहे हैं ॥ जो कोईभी देहवाला मनुष्य प्राणकर तथा अपान कर जीवता नही ॥ तथा चक्षुआदिक इंद्रि-

योंसे कोई जीवता नही किंतु मिले हुए प्राणादिकसे विलक्षण अन्य चैतन्यात्मासेही सर्व संघातरूप हुए मनुष्य जीवते हैं अर्थात् प्राणनको धारते है और जिस संघातसे विलक्षण परम ब्रह्मरूप आत्माके होते चक्षुआदिकसे मिले हुए प्राण अपान स्थितिको पावते हैं ॥ ५ ॥

हे गौतम नचकेता! तुमको ब्रह्मविद्याका पात्र देखकर मुझको बडा हर्ष हुआ है यातें अब फेरभी तेरे तांई पुरातन गोप्यब्रह्मका स्वरूप कहताहूं ॥ जिसके ज्ञानसे सर्व संसारकी निवृत्ति होवे है ॥ और जिसके अज्ञानसे मरणको पायकर आत्मा जैसे होवे है और जैसे संसारको पावता है तैसे कहताहूं सो तूं श्रवण कर ॥ ६ ॥

हे नचकेता! अन्य कईएक अज्ञानी देहाभिमानी जो मूढ पुरुष हैं वह जंगम शरीरके ग्रहणवास्ते रजवीर्यकर मिश्रित हुए माताकी योनिके द्वारके तांई प्रवेशको पावते हैं और अन्य जो अधम पुरुष हैं वह मरणको पायकर वृक्षादिक स्थावर भावको पावते हैं ॥ जिनोंने इस जन्मविषे जैसा कर्म कीया है वह तिस कर्मके वश्यते उसी कर्मके अनुसार शरीरको पावे हैं ॥ और तैसेही जिनोंने शास्त्रसे जैसी ज्ञान अर्थात् उपासना संपादन करी है वह उस ज्ञान अर्थात् उपासनाके अनुसारही शरीरको धारण करे हैं ॥ ७ ॥

अब पूर्व प्रतिज्ञा जो गोप्य ब्रह्मके कहनेकी करीथी सोई आगे कहे हैं ॥ हे नचकेता! स्वप्नमें देहइंद्रियादिक शयनको प्राप्त होवे हैं परंतु यह स्वयंज्योति आत्मा शयनको प्राप्त होवे नही किंतु सर्वको प्रकाश करे है ॥ और स्वप्नअवस्थामें अनेक पदार्थोंको यह आत्मा अविद्याकेसाथ मिलकर उत्पन्न करे है वास्तवसे यह आत्मा शुद्ध साक्षीरूप है ॥ स्वप्नमें जो अनेक पदार्थ स्त्रीपुत्र क्षेत्रादिक उत्पन्न होवे हैं तिनोंका आत्मामें किंचित मात्रभी संबंध नही है ॥ सर्वदा सो आत्मा शुद्धरूप है और सोही आत्मा ब्रह्मरूप है तथा अमृतरूप अर्थात् अविनाशीरूप है सो आत्मा शास्त्रमें कह्या है और पृथिवी आदिक सर्व लोक तिसही ब्रह्मविषे आश्रयको प्राप्त भये है ॥ काहेतें जो तिसको सर्व लोकनका कारण होनेसे ॥ तिस ब्रह्मको कोईभी पुरुष उल्लंघन नही करता अर्थात् ब्रह्मभावको छोड़ कर तिससे अन्य भावको पावता नही यहही सो ब्रह्म है ॥ ८ ॥

अब दृष्टांत सहित तिस दुर्ज्ञेय आत्माका श्रुतिमाता फिर उपदेश करे है ॥ हे नचकेता! जैसे अग्नि वास्तवसे एक हुआ भवन अर्थात् लोकके तांई प्रवेश करके जलाने योग्य काष्ठादिक वस्तुओंके रूपरूपके प्रतिरूप होवे है अर्थात् बहुत प्रकारका वह अग्नि होवे है ॥ तैसे एकही आत्मा सर्व भूतोंके अंतर प्रवेश पायकर शरीरशरीर उपाधिके प्रतिरूप हुआ बहुत प्रकारका प्रतीत होवे है और आकाशकी न्याई बाहिरभी व्यापक हैं ॥ ९ ॥

अन्य दृष्टांत कहे है ॥ हे नचकेता! जैसे एकही वायुलोकके तांई प्राणरूपसे शरीरोंमें प्रवेश पायकर शरीरशरीरके प्रतिरूप हुआ प्रतीत होवे है तैसे एक ही सर्व भूतनका अंतरात्मा शरीरशरीरके प्रतिरूप हुआ है और बाहिरभी व्यापक है ॥ १० ॥

यदि कोई शंका करे ॥ जो सर्वांतर आत्मा होवे तो सो सर्व दुःखोंसे लिप्त होवेगा ॥ इस शंकाकी निवृत्तिवास्ते श्रुती भगवती आत्माकी अलेपताको प्रतिपादन करे है ॥ हे नचकेता! जैसे सूर्य बाहिर मलमूत्रादिक सर्व पदार्थोंके देखनेवाले चक्षुपर उपकार करता हुआ सर्वलोकका चक्षु हुआ तिस चक्षुके दोषोंसे तथा तिन बाहिरके मलमूत्रादिक दोषोंसे वह सूर्य लिपायमान नही होवे है तैसे एकही सर्व भूतनका अंतर आत्मा लोकोंके दुखोंकर लेपको नही प्राप्त होता ॥ ११ ॥ किंवः ॥ सोई सर्वगत स्वतंत्र जो एक परमेश्वर है तिसके समान अथवा अधिक अन्य नही है ॥ और सर्व जगत् इसके वश्य वर्तता है यातें वशी है ॥ काहेतें जो जिससे सर्व भूतनका अंतरात्मा है ॥ ऐसाभी किस हेतुसे है ॥ जो जिससे परमात्मा अपनी सत्तासे अचिंत शक्तिवाला होनेसे एक रस हुआ शुद्ध ज्ञानरूप आपणे आपको नामरूपादिक अशुद्ध उपाधिके भेदके वश्यते बहुत प्रकारसे करता है ॥ तिस आपणे शरीरके हि दयाकाशगत बुद्धिविषे चैतन्याकारसे प्रगट इस ईश्वररूप आत्माको जो बाह्य वृत्तिसे रहित विवेकी पुरुष आचार्य और शास्त्रके उपदेशको पायकर साक्षात् अनुभव करे हैं ॥ तिन परमेश्वररूप हुए पुरुषनको आत्मानंदरूप नित्य सुख होवे है ॥ अन्य जो बाह्य विषयोंमें आसक्त बुद्धिवाले अविवेकी पुरुष हैं तिनोंको स्वस्वरूप हुआभी यह सुख अविद्याके आवरणसे प्रतीत होवे नहीं ॥ १२ ॥

अब फेर कहे हैं ॥ हे नचकेता! जो परमात्मा अनित्य वस्तुवोंका नित्यरूप अर्थात् अधिष्ठानरूप है और चैतन्यरूप जो ब्रह्मादिक जंगम प्राणी है तिनो चैतन्योंका चैतन्यरूप है अर्थात् सत्तास्फूर्ति देनेवाला है ॥ जैसे अग्नि के संबंधसे लोहा तृणादिकका दाह करे है सो दाहधर्म तिस अग्निका है ॥ तैसे चैतन्य प्राणियोंमें जो वस्तुके जाननेकी शक्ति है वह ज्ञानशक्ति आत्माकी है ॥ काहेतें जो आत्माके संबंधसे उनोंमें प्राप्त है ॥ और सोई एक सर्वज्ञ परमेश्वर प्राणियोंके कर्मानुसार बहुत प्रकार करके कर्मोंके फल भोगोंको देवे है तिस आत्माको जो धीर अर्थात् विवेकी पुरुष अपने अंतःकरणविषे नित्य साक्षीरूप करके जानता है तिनों विवेकी पुरषोंको निरंतर शांति प्राप्त होवे है॥ इतर बाह्य मुख्य पुरुषोंको निरंतर शांति प्राप्त होवे नही ॥ १३ ॥

अब इस मंत्रमें जो प्रश्न है वह यह है ॥ वाणिका अविषय परम सुखरूप जो ब्रह्म है तिसको संन्यासी तीन ईषणासे रहित होकर अपरोक्षरूपसे जानता है ऐसे सुखको मैं अधिकारी कैसे निश्चय करों? वह सुखरूप परब्रह्म भासता है अथवा नही! ऐसे प्रश्नका अगले मंत्रमें उत्तर है ॥ १४ ॥

हे नचकेता! यह ब्रह्मात्मा प्रकाशमान है और स्वयंज्जोतिरूप है ॥ तिस ब्रह्मस्वरूप आत्माके प्रकाश करनेविषे सूर्य चंद्रमा तारे तथा बिजली यह सर्व समर्थ नही है और जब सूर्यादिक इस आत्माके प्रकाश करनेमें समर्थ नही है, तब यह अग्नि प्रकाश करेगा इसमें क्या कहना है ॥ यातें आत्माके प्रकाशके पश्चातही वह सूर्य चंद्रादिक प्रकाश करे हैं, स्वतंत्र प्रकाश सूर्यादिकोंका नही है; किंतु आत्माके प्रकाश करकेही यह सूर्यादिक सर्व जगत् प्रतीत होवे है ॥ १५ ॥

॥ इतिश्रीकाठकोपनिषद्द्वितीयाध्यायगतंपचमवल्लीसमाप्ता ॥ ५ ॥

ॐ श्रीपरमात्मनेनमः ॥

अथ श्रीकठोपनिषद्द्वितीयाध्यायगता षष्ठवल्ली प्रारभ्यते ॥

अब कारणब्रह्मका निरूपण करते हैं ॥ जैसे लोकविषे कार्यरूप वृक्षके निश्चयसे मूलका निश्चय होवे है तैसे संसारवृक्षरूप कार्यके निश्चयसे तिसके मूलरूप ब्रह्मके निश्चय करनेवास्ते इस षष्ठवल्लीका आरंभ करते हैं ॥ हे नचकेता ! यह संसाररूप अश्वत्थका वृक्ष है- जो वस्तु दूसरे दिन न रहे उसको अश्वत्थ कहे हैं ॥ यांते इस संसारको अश्वत्थरूपसे श्रुति भगवतीने प्रतिपादन किया हैं ॥ हे नचकेता ! इस संसाररूप वृक्षका मूल कारण सर्वसे उर्ध्वरूप ब्रह्म है और चतुर्दश भवनोंमें होनेवाले अंडजादिक चतुर्विध खानि जीव जात जो है वह सर्व ब्रह्मरूप मूलकी अपेक्षासे नीचेकी शाखा है ॥ और प्रवाहरूपसे अनादिकालका होनेकरके सनातन कहिये है ॥ और इस संसाररूप पीपलवृक्षका मूल कारणरूप जो है सो शुद्धरूप है तथा सर्वसे बडा होनेसे ब्रह्मरूप है ॥ और सोई सत्यरूप होनेसे अविनाशीरूप अमृत शास्त्रमें कह्या है, तिस परमार्थसे सत्य ब्रह्मविषे मिथ्यारूप भास्यमान सर्व लोक उत्पत्ति स्थिति और प्रलयविषे आश्रयको पावते हैं ॥ और जैसे घटादिक कार्य अपने कारण मृत्तिका आदिकके स्वरूपको छोडकर नही वर्तते तैसे कोईभी कार्य तिस ब्रह्मको उल्लंघ कर वर्तता नही ॥ यहही सो ब्रह्म है ॥१॥

शंकाः ॥ इस जगतका मूल कारण पूर्वोक्त ब्रह्म नही है ॥ किंतु असत् हुआही यह जगत् निकस्या है ॥ सो यह शंका बने नही ॥ काहेतें जो इसका उत्तर श्रुति माता आपही देवे है ॥ हे नचकेता ! जो कुछ यह सर्व जगत है सो प्राणरूप परमब्रह्मके होते चलता है और तिसहीसे निकस्या हुआ नियमसे चेष्टा करे है ॥ ऐसा जो जगतकी उत्पत्ति आदिकका कारण ब्रह्म है सो बडा है तथा जिसके भयसे सर्व जगत् भयको पावता है ऐसा भयरूप है और वज्रके उद्यम करनेवालेकी न्याईं है अर्थात

जैसे वज्रके उद्यम करनेवाले स्वामीके भयसे भृत्यादिक सर्व अपनेअपने व्यापारमें नियमसे प्रवृत्त होवे है तैसे सूर्य चंद्र अग्नि आदिक सर्व जगत् तिस ब्रह्मके भयसे अपनेआपने व्यापारमें नियमसे प्रवृत्त हुए रहते हैं ॥ जो पुरुष इस शरीरादिकके साक्षी आत्मासे अभिन्न एक ब्रह्मको जानते हैं वह मृत्युधर्मसे रहित होते हैं ॥ २ ॥ कैसे तिसके भयसे जगत् वर्तता है सो कहे है ॥ इस परमेश्वरके भयसे अग्नि तपता है तथा तिसीके भयसे सूर्य तपता है, और इसीके भयसे वायु चलता है, तथा इसीके भयसे इंद्र वर्षा करता है, और इसीके भयसे पंचम मृत्यु प्राणियोंके नाश करने वास्ते दोडता है ॥ इस प्रकार सर्व लोक तथा लोकपालोंसहित उस परमात्माके भयसे अपने अपने व्यापारविषे प्रवृत्त हुए रहते हैं ॥३॥ जब इस भयके कारण ब्रह्मको इहां जीवते हुएभी शरीरके पतनसे पूर्व जाननेको समर्थ हुआ जानता है तब संसारके बंधनसे छूटता है ॥ और जब जाननेको असमर्थ होवे है तब तिस न जाननेसे प्राणियोंकी उत्पत्तिके आश्रय पृथिवी आदिक लोकन विषे शरीर भावके अर्थ समर्थ होवे है अर्थात् शरीरको धारण करता है ॥ यातें शरीरके पतनसे प्रथम जीवित अवस्था विषे ब्रह्मज्ञानके वास्ते यत्न करना उचित है ॥ ४ ॥

हे नचकेता! जैसे शुद्ध दर्पणविषे मुख स्पष्ट प्रतीत होवे है तैसे इस अधिकारीशरीरमें जो शुद्धबुद्धि है तिसमें यह आत्मा स्पष्ट प्रतीत होवे है ॥ और जैसे स्वप्नअवस्थामें जीवोंका अपना स्वरूप स्पष्ट प्रतीत होवे नही तैसे पितृस्वर्गलोकों विषे भोगोंकी अधिकतासे यह आत्मा स्पष्ट प्रतीत होवे नही ॥ और जैसे सकंप जलमें अपना रूप स्पष्ट प्रतीत होवे नही तैसे गंधर्वलोक विषेभी आत्माका दर्शन अस्पष्ट है और अन्य लोगोंविषेभी आत्माका दर्शन अस्पष्टही है; परंतु एक ब्रह्मलोकविषेही छाया और धूपकी न्याई अत्यंत स्पष्ट आत्माका दर्शन होवे है ॥ सो ब्रह्मलोक अत्यंत श्रेष्ठकर्म उपासनाका फल होनेसे दुर्लभ है ॥ यातें आत्माके दर्शन अर्थ इहांही यत्न करना योग्य है यह अभिप्राय है ॥ ५ ॥

यह आत्मा कैसे जाननेमें आवे है और जाननेसे क्या फल प्राप्त होवे है सो कहे है ॥ हे नचकेता! आकाशादिक पंचभूतोंसे भिन्न भिन्न उत्पन्न भये जो इंद्रिय

है तिन सर्व इंद्रियोंसे आत्मा भिन्न है ॥ काहेतें जो यह इंद्रियादिक सुषुप्ति अवस्थामें लय होवे है और जाग्रतअवस्थामें प्रगट होवे है परंतु यह आत्मा कदाचित उदय अस्तको प्राप्त होवे नहीं ऐसे विवेकी पुरुष जानता हुआ शोकको प्राप्त होवे नहीं ॥ ६ ॥ हे नचकेता ! इंद्रियोंसे परे मन है और मनसे परे उत्तम निश्चयरूप बुद्धि है ॥ फिर तिस व्याष्टि बुद्धिसे परे समष्टि बुद्धिरूप महत्तत्त्व है ॥ फिर तिस महतत्त्वसे परे अव्यक्तरूप माया है ॥ ७ ॥ फिर तिस अव्यक्तरूप मायासे परे व्यापक अलिंगरूप पुरुष परमात्मा है ॥ जिसको जानकर यह अधिकारी पुरुष जन्ममरणरूप संसारसे मुक्त होकर अमृतरूप मोक्षको प्राप्त होवे है ॥ ८ ॥

प्रश्न ॥ तिस अलिंग पुरुषका दर्शन कैसे संभवे है ? तहां कहे है ॥ इस प्रत्यगात्माका रूप दर्शनके विषयमें स्थित नहीं है ॥ यामें कोईभी पुरुष इस आत्माको चक्षु इंद्रियसे अथवा सर्व इंद्रियोंसे देख सकता नहीं है तब कैसे देखीए हैं ? ऐसे पूछे तहां कहे हैं ॥ हृदयमें स्थित जो मनको संकल्पादिकसे रहित करनेवाली नियामक बुद्धि है तिस सम्यक् दर्शनस्वरूप मनन अर्थात् विचाररूप मनकर प्रकाशित हुआ आत्मा जाननेको शक्य है ॥ तिस आत्माको यह ब्रह्मस्वरूप है ऐसे जो जाने है वह मरणधर्मसे रहित अमृतरूप होवे हैं ॥ ९ ॥

प्रश्न ॥ यह मनकी नियामक बुद्धि कैसे प्राप्त होवे है ? अब तिसकी प्राप्तिअर्थ योग कहे है ॥ हे नचकेता ! जिस कालमें श्रोत्रादिक पंच ज्ञान इंद्रिय जो हैं वह जिसके पीछे आप चलते है ऐसे संकल्पात्मक मनसहित अपने व्यापारोंसे निवृत्त हुए आत्माविषे स्थित होवे है ॥ निश्चयरूप जो बुद्धि है वह अपने आचरण विषे चेष्टा करे नहीं ॥ तिस अवस्थाको योगी जन परमगति कहे हैं ॥ १० ॥ ऐसे इंद्रियादिककी अवस्थाके वियोगको योग ऐसे मानते हैं. यह इंद्रियोंकी निश्चल धारणाही परम योग है ॥ यह इंद्रियोंकी धारणारूप योगही ब्रह्मप्राप्तिद्वारा इस जगतकी उत्पत्ति तथा संहारकी सामर्थ्यरूप ईश्वरकी प्राप्तिका कारण हैं ॥ यातें तिस योगकी प्राप्तिवास्ते प्रमादको त्याग करे ॥ ११ ॥

शंका ॥ जो इंद्रियमनबुद्धिआधिकका विषय होवे है सो वस्तु सत्य होवे है और जो इंद्रियादिकका विषय न होवे सो असत्य होवे है ॥ काहेतें जो प्रतीत न होनेसे अथवा योगकालमें अप्रतीतमान होनेसे ब्रह्म नही है ऐसे जाननेको शक्य होवे है ॥

उत्तर ॥ हे नचकेता ! यह आत्मा न वाणीसे न मनसे न चक्षुकरके जाननेको शक्य है यह तेरा कहना सत्य है तथापि अस्ति ऐसे कहानेवाले जो आस्तिक लोक योगी है तिनोंके वचनोंसे विना अन्य बाह्यमुख जो नास्तिक हैं उन्होंके बचनोंकर कदाचित आत्माका बोध होवे नही ॥ १२ ॥

हे नचकेता ! यह अधिकारी पुरुष प्रथम इस आत्माको बुद्धिआदिक उपाधिवाला निश्चय करे, तथा जगतका कारण अस्तिरूपसे निश्चय करे, तिसके पश्चात् वास्तवसे अविक्रिय शुद्ध रूपसे निश्चय करे, ऐसे जिस अधिकारीने प्रथम अस्तिरूपसे आत्माको निश्चय कऱ्या है तिस अधिकारीको ही आत्मा प्रसन्न होकर अपने यथार्थरूपको दिखावे है ॥ १३ ॥

हे नचकेता ! इस पुरुषकी बुद्धिमें स्थित जो कामना है वह सर्व जिस कालविषे निवृत्त, इस विद्वानकी, होवे है तिसकालमें यह पुरुष अमृतभावको प्राप्त होवे है ॥ प्रथम अज्ञान कालमें मृतनाम मरणधर्मवाला आपको मानता था पश्चात् ब्रह्मबोधके प्रतापसे मरणादिकोंका त्याग करे है और इसी शरीर में ही ब्रह्मभावको प्राप्त होवे है ॥ १४ ॥

शंका ॥ कामनाके मूलका नाश कब होवे है ?

तहां कहे हैं ॥ हे नचकेता ! जिस कालविषे इस पुरुषके हृदयमें ग्रंथिकीन्याई स्थित बंधनरूप शरीरारादिकमें अहंभाव तथा पुत्रादिकमें ममताभाव निवृत्त होवे है तिसकालमेंही पुरुष अमृतभावको प्राप्त होवे है और जन्ममरणादिकको त्यागकर यहांही ब्रह्मभावको प्राप्त होवे है ॥ इतनाही वेदांतनका उपदेश है ॥ और जिनकी अविद्याआदिकग्रंथि निवृत्तिको प्राप्त होवे है उनको तो इसी शरीरमेंही मुक्ति प्राप्त होवेहै ॥ तिनका स्वर्गनरकादिकमें गमन होवे नही और जो उपासकहैं तथा अन्य जो शुभअशुभ कर्म करनेहारे है तिनोंकी प्राप्तिका प्रकार आगे कथन करे है ॥ १५ ॥

हे नचकेता ! हृदयरूप मूलसे प्रधान प्रधान नाडी एकसौ एक (१०१) निकसे हैं तिन सर्वनाडियोंसे विलक्षण जिसको सुषुमना कहे हैं सो सुषुमना नाडी ब्रह्मलोककी प्राप्तिका द्वार है और सूर्यमंडल पर्यंत प्राप्त भयी है तिस सुषुमना नाडीकरके यह जीव ब्रह्मलोकको प्राप्त होवे है और अन्य नाडियोंकरके यह जीव उच्चनीचशरीरोंको प्राप्त होवे है ॥ १६ ॥

अब सर्व कठउपनिषद्के अर्थको संक्षेपसे प्रतिपादन करे है ॥ हे नचकेता! यह सर्वके अंतर आत्मा अंतःकारणके अंगुष्ठपरिमाणवाला है इसको यातें अंगुष्ठपरिमाण कहिये है ॥ और सर्वके हृदयदेशमें सर्वकाल स्थित है तिस आत्माको तीन शरीरोंसे भिन्न जाणे ॥ जैसे मुञ्जसे तीली भिन्न करती है तैसे अन्वयव्यतिरेककर स्थूल सूक्ष्म कारण इन तीनों शरीरोंसे विवेकवाली बुद्धि भिन्न करे ॥ फिर तिन शरीरोंसें निकसे हुए चैतन्यमात्र अर्थात् भिन्न निश्चय कियेहुए चैतन्यमात्र वस्तुको शुद्ध और अमृतरूपपूर्वक कथन किया ब्रह्मजाणे अर्थात् तिसको शुद्ध अमृतरूप ब्रह्म जाणे ॥ १७ ॥

अब विद्याकी स्तुतिअर्थ इस यम और नचकेताकी आख्यायिकाके अर्थकी समाप्ति करे है ॥ पूर्व यमराजने कथन करी इस ब्रह्मविद्याको समष्टि और फलसहित संपूर्ण योगकी विधिको नचकेता यमराजके वरदानसे पाकर विद्याकी प्राप्तिसे धर्मअधर्मरहित तथा मृत्युसे रहित तथा कामना और अविद्यासे रहित हुआ पूर्वोक्त ब्रह्मको प्राप्त होकर मुक्त होताभया ॥ केवल नचकेताही मुक्त नही भया किंतु अन्यभी जो पुरुष ऐसे नचकेताकी न्याई निरामय तिसही अध्यात्म अर्थात् प्रत्यक्स्वरूप आत्माको उक्तप्रकारसे जानता है सो ऐसे जाननेवालाभी पुण्यपापसे रहित हुआ ब्रह्मकी प्राप्तिसे मृत्युरहित होवे है ॥ १८ ॥

अब शांतिमंत्रके अर्थको कहे है ॥ सो परमात्मा हम गुरुशिष्य दोनोंको ज्ञानप्रकाश करनेसे रक्षा करे ॥ तथा ज्ञानके फल प्रगट करके हमारा पालन करे ॥ और हम गुरुशिष्यका अध्ययन बलवाला होवे ॥ तथा विघ्नोंका नाश करनेवाला होवे ॥ और हमारे पठनपाठनसे प्रमादकरके भया जो दोष तिस दोषसे उत्पन्न भया जो हम गुरुशिष्यमें द्वेष सो द्वेष हमको मत प्राप्त होवे ॥ १९ ॥ और अध्यात्म अधिदैव अधिभूत इन तीन प्रकारके विघ्नोंकी निवृत्तिवास्ते अंतमें शांतिपाठ है ॥ सो यह है ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

दोहा ॥ कठउपनिषद्भाषा यह, यजुरवेदका सार ॥
हरिप्रकाशपटवलि प्रगट, इतिश्रीकऱ्योविचार ॥ १ ॥

यमउपदेश कऱ्यो सकल, नचिकेताप्रतिभीत ॥
नचिकेता पिख ब्रह्मको, कऱ्योशांति निजप्रीत ॥ २ ॥

जो जन पठे इकमनसे, इसका करे विचार ॥
पावे स्वब्रह्मस्वरूपको, छूटे भ्रम संसार ॥ ३ ॥

पाठ करे इसग्रंथका, अथवा सुने सप्रेम ॥
क्रोधादिक सर्व पापहत, होय योगयुत क्षेम ॥ ४ ॥

कठकठिनउपनिषद्पिखो, शंकरभाष्य स्वकीन ॥
मंत्रसंक्षेप वहुतमें, भाषा कीनो पीन ॥ ५ ॥

भूलचूक कुछ देखिके, क्षमहु संतप्रधान ॥
भ्रमरगंधवत सार गहो, हरिप्रकाश उर मान ॥ ६ ॥

इतिश्रीकाठकोपनिषद्भाषाफका बाबाहरिप्रकाशपरमहं-
सकृताद्वितीयाध्यायगततृतीयवल्ली अर्थात्कठउप-
निषद्की षष्ठवल्लि संपूर्ण ॥ ६ ॥

शुभमस्तु ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मनेनमः ॥

अथ श्रीअथर्व्ववेदीयशौनकीयशाखाग तप्रश्नोपनिषतभाषाफक्काबाबाहरिप्रका शपरमहंसकृताप्रारभ्यते.

दोहा ॥ अथर्व्व वेदमें सुनो तुम, शौनकशाखामांहि ॥
प्रश्नउपनिषतभाषा यह, षट् प्रश्न जानो तांहि ॥ १ ॥

अथर्व्व वेदकी शौनकीय शाखामें प्रश्न उपनिषद् कहीहै ॥ सो अथर्व्ववेदके मंत्रोंसे उक्त जो अर्थ है तिसका विस्तारकर अनुवादसे यह प्रश्न उपनिषदूरूप ब्राह्मणका आरंभ करतेहै ॥ इसविषे ऋषियोंके प्रश्न और उत्तररूपसे अध्याय कहाहै ॥ सो विद्याकी स्तुति अर्थ है ॥ सो यह ब्रह्मविद्या ब्रह्मचर्यादिक साधनयुक्त अधिकारियोंकर ग्रहण करणे योग्य है ॥ और पिप्पलाद मुनिकी न्याई सर्वज्ञके तुल्य आचार्योंकर कहने योग्य है ॥ जैसे कैसे पुरुषकर कहने योग्य नहीं है ॥

॥ अथ प्रथमः प्रश्नः प्रारभ्यते ॥

किसी देशमें षट् ऋषि परस्पर स्नेहवाले हुए इकट्ठे होते भये ॥ अब उनके नाम निरूपण करे है ॥ भरद्वाजका पुत्र होनेसे भारद्वाज नामको प्राप्त भया सुकेशानामवाला एक ऋषि होता भया ॥ १ ॥ और दूसरा शिबी ऋषिका पुत्र होनेसे शैब्य नामको प्राप्त हुआ सत्यकाम नामवाला ऋषि होता भया ॥ २ ॥ और तीसरा गर्गगोत्रकर गार्ग्य संज्ञाको प्राप्त हुआ शौर्य्यायणी नामवाला ऋषि होता भया ॥ ३ ॥ और चतुर्थ अश्वलऋषिका पुत्र आश्वलायन नामको प्राप्त हुआ कौशलनामवाला ऋषि होता भया ॥ ४ ॥ और पंचम विदर्भऋषिके कुलविषे उत्पन्न होनेसे वैदर्भि नामको प्राप्त हुआ भार्गवनामवाला ऋषि होता भया ॥ ५ ॥ और षष्ठ कत ऋषिके कुलविषे उत्पन्न होनेसे कात्यायन नामको प्राप्त हुआ कबन्धिनामवाला ऋषि

होता भया ॥ ६ ॥ यह षट्ऋषि चार वेदोंको पाठकर वेदोक्त कर्म उपासनाको करते भये ॥ उन कर्म उपासनाके करनेसे शुद्ध अंतःकरणवाले हुए निर्गुण ब्रह्मके जाननेकी इच्छाको करते भये और परस्पर मिलकर यह विचार करते भये ॥ जो ऐसा कोई गुरु ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय होवे तो हमको तिस निर्गुण ब्रह्मका उपदेश करे ॥ ऐसे विचार करते हुए वे ऋषि ब्रह्मप्रायण ब्रह्मनिष्ठ दातून हाथमें लेकर श्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ भगवान् पिप्पलाद ऋषिगुरुकी शरणको प्राप्त होते भये ॥ १ ॥ और कहते भये हे भगवन् ! हमको निर्गुणरूप परम ब्रह्मका उपदेश करो ॥ दातून काष्ठरूप भेटोंको हस्तमें लेकर शरणको प्राप्त भये जो षट्ऋषि हैं तिनोंके प्रति पिप्पलादऋषि स्पष्ट कहता भया ॥

पिप्पलादोवाच॥ हे ऋषियो ! यद्यपि तुम तपस्वी ही हो तथापि यहां फिरभी विशेष कर इंद्रियके संयमरूप तपसे और ब्रह्मचर्यसे तथा आस्तिक भावकी बुद्धिरूप श्रद्धासे आदरवान हुए, एक वर्षपर्यंत मेरेपास सेवा करनेके निमित्त निवास करो ॥ पश्चात् जैसी जिसको इच्छा हो तिसके अनुसार जिसकी जिस विषयके पूछनेकी जिज्ञासा हो तिस विषय संबंधी प्रश्नको जब पूछोगे तब यदि हम तुमारे पूछे हुए वस्तुको जानते होवेंगे तो हम तुमारे पूछे हुए वस्तुको स्पष्ट करके कह देवेंगे ॥ २ ॥

इस प्रकार जब पिप्पलाद मुनिने कहा तब एक वर्षके पीछे कत्यऋषिका परपोता कबंधिनामवाला ऋषि पिप्पलाद मुनिके समीप जायकर पूछता भया ॥

कबंधिरुवाच ॥ हे भगवन् ! यह प्रसिद्ध संपूर्ण प्रजा किस कारण कर उपजी है ? इस हमारे प्रश्नका कृपा करके उत्तर देवो ॥ ३ ॥ ऐसे कबंधके प्रश्नको श्रवण करके पिपलाद ऋषि तिसका उत्तर कहते भये ॥

पिप्पलादोवाच ॥ हे कबंधि ! प्रजाकी कामनावाला हुआ प्रजापतिरूप विराट् सो ज्ञानरूप तपको तपता भया अर्थात् विचार करता भया ॥ विचार करके सो प्रजापति सृष्टिके साधनरूप रयि अर्थात् अन्नरूप चंद्रमा तथा अन्नके भोक्ता प्राणरूप अग्नि अर्थात् सूर्य दोनोंको उत्पन्न करता भया ॥ यह विचारता भया जो यह दोनो अन्न और भोक्तारूप चंद्रमा तथा अग्निरूप सूर्य मेरी अनेक प्रकारकी प्रजाको करेंगे ॥ ऐसे चिंतन करके ब्रह्मांडकी उत्पत्तिके क्रमसे चंद्र और सूर्यको कल्पता भया ॥ ४ ॥

सो भोक्तारूप अग्नि दो प्रकारका है ॥ एक अध्यात्म प्राण है सो भोक्तारूप है और दूसरा अधिदैव अग्नि है सो सूर्यरूप है और चंद्रमा अन्नरूप है॥ अर्थ यह है जो मूर्तरूप स्थूल है वह भोग्यरूप है ॥ तथा अमूर्तरूप सूक्ष्म है सो सर्व अन्नरूप है ॥ और वास्तवसे तो अमूर्त प्राण भोक्ता है ॥ गौणतासे अमूर्तकोभी श्रुतिने पूर्व अन्नरूपकर कह्या है ॥ अन्न तो केवल मूर्त जो स्थूलरूप है सोई भोग्य है ॥ ५ ॥

इस प्रकार प्राणरूप भोक्ता अध्यात्म अग्निका निरूपण कीया ॥ अब अधिदैवत सूर्यरूप भोक्ता अग्निका निर्णय करते है ॥ हे कबंधि ! सूर्य भगवान् पूर्व दिशासे उदय हुआ पूर्वमें जो प्राण है तिनको अपनी किरणोंमें धारण करे है अर्थात् अपने प्रकाशसे पूर्व दिशाके नेत्ररूप प्राणोंको प्रकाश करे है ॥ तैसे दक्षिणदिशामें स्थित प्राणोंको तथा उस दिशाको प्रकाश करे है, तथा पश्चिमउत्तरदिशाको प्रकाश करे है, तथा तिन दिशामें स्थित नेत्ररूप गौण प्राणोंको प्रकाश करे हैं, तथा चार कोणको तथा नीचे ऊपरकी दिशाको प्रकाश करे हैं, तथा तिनमें स्थित नेत्ररूप प्राणोंको प्रकाश करे है ॥ हे कात्यायनरूप कबंधि ! यह सूर्य भगवान् सर्व दिशाको प्रकाश करता हुआ सर्व नेत्ररूप प्राणोंको प्रकाश करे है ॥ ६ ॥ हे कबंधि ! यह भोक्ता प्राण वैश्वानर सर्वात्मा विश्वरूप है और विश्वका आत्मा होनेसे प्राण और अग्निरूप है सोई भोक्ता दिनदिनविषे सर्व दिशाको अपनारूप करता हुआ उदय होवे है ॥ सो यह कथन किया वस्तु अगिले अष्टम वाक्यमय वेदके मंत्ररूप ऋचामेंभी कह्या है ॥ ७ ॥

हे कात्यायनरूप कबंधि ! यह यह सर्वरूप तथा किरणोंवाला तथा ज्ञानरूप सर्व प्राणोंका आश्रय सूर्य है ॥ और सर्वप्राणियोंका नेत्ररूप और अद्वितीय तथा तपावणेवाला तथा प्राणियोंके प्राणोंकर सहस्ररूपोंसे वर्तमान जो सूर्य. उदय होता है तिसको पंडित पुरुष जानते हैं ॥ ८ ॥ हे कबंधि ! यह जो मूर्तिमय अन्नरूप चंद्रमा है और अमूर्तिमय अन्नका भोक्ता प्राणरूप सूर्य है सो यह एक युगल सर्वरूप है ॥ यह दोनो मेरी बहुत प्रकारकी प्रजाको करेंगे ॥ कैसे करेंगे तहां कहेहैं ॥ संवत्सर रूप जो काल है सोई प्रजापति है अर्थात् संवत्सरको तिस प्रजापतिकर निर्वाह किया होनेसे ॥ जिससे चंद्र और सूर्य इन

दोनो प्रजापतियोंकर निर्वाह करने योग्य तिथि दिवस और रात्रियोंका समुदाय रूप जो संवत्सर है सो तिनो चंद्र और सूर्यसे अभिन्न होनेसे चंद्र और सूर्यरूप है ॥ यातें सो संवत्सर तिस युगलरूपही है ऐसे कहीएहैं ॥ सो कैंसे है तहां कहे है ॥ तिस संवत्सररूप प्रजापतिके दक्षिण और उत्तररूप प्रसिद्ध षष्ठमासस्वरूप दोनो अयन अर्थात् मार्ग हैं ॥ जो पुरुष अग्निहोत्रादिक इष्ट कर्मोंको करता है तथा बावली कूपादिक पूर्त कर्मको करता है सो पुरुष तिन कर्मोंको करनेवाले चंद्रलोकको प्राप्त होवे है ॥ तिस चंद्र लोकसे फिर इस लोकको प्राप्त होवे है ॥ कर्मफलको भोग कर फिर चंद्रलोकमें तिनका रहना होवे नही जिसते यह स्वर्गके द्रष्टा ऋषि और प्रजाकी कामनावाले गृहस्थ ऐसे अन्नमय प्रजापतिरूप चंद्रको फलरूप होणेकर इष्ट और पूर्तरूप कर्मसे निर्वाह करे है यातें अपने पुण्यकर्मरूप दक्षिणायनसे लक्षणाकर जाणे हुए चंद्रको पावते हैं ॥ यह जो पितृयान मार्ग कर लक्षणासे जाण्या हुआ चंद्रमा है सो निश्चय कर प्रसिद्ध अन्न है ॥ ९ ॥

हे कंबधि ! उत्तरायण मार्गकर भोक्ता रूप सूर्यको प्राप्त होवे है ॥ अब उत्तरायण मार्गकी प्राप्ति विषे साधनोंको श्रवण कर ॥ तप जो इंद्रियोंका जय है तथा ब्रह्मचर्य और आस्तिक भावना रूप श्रद्धा तथा सगुण उपासना इत्यादिक जिस उत्तरायण मार्गकी प्राप्तिमें साधन है तिनों साधनों कर युक्त हुए जो पुरुष इस प्रकार मानते है. ॥ " स्थावर जंगम रूप जगतका पालक जो आदित्य है सो मैं हूं " ऐसे माननेवाले पुरुष उत्तरायण मार्गद्वारा आदित्यको प्राप्त होवे है ॥ यह आदित्यही सर्व प्राणोंका आश्रय है तथा अमृत है और अभय है तथा उपासक पुरुषोंकी परम गतिरूप है ॥ इस सूर्यमंडलद्वारा ब्रह्मलोकको प्राप्त भया जो उपासक है सो फिर इस संसारको प्राप्त होवे नही ॥ और जो उपासनासे विना केवल कर्मी पुरुष है सो इस आदित्य मंडलको प्राप्त होवे नहीं, जिससे सूर्य कर निरुद्ध हुए यह अविद्वान् पुरुष आत्मा और प्राणमय संवत्सर रूप सूर्यको पावते नहीं, यातें ऐसे सोई यह कालरूप संवत्सर अविद्वानोंका निरोध है तिसही इस अर्थ विषे आगेका एकादशवा श्लोकरूप वेदका मंत्र प्रमाण है ॥ १० ॥

हे कबंधि ! इस सूर्य भगवानका षट् ऋतुरूप पाद है ॥ मूल श्रुतिमें हेमंत शिशिर ऋतुकी एकताके अभिप्रायसे पंचपाद रूप करके कह्या है और सो सूर्य सर्वका पिता है तथा द्वादश मासरूप अवयववाला है और आकाशरूप अंतरिक्ष लोकसे परे ऊंचे स्थानपर तीसरे स्वर्गमें स्थित है तथा जलवाला है॥ काहेतें जो सूर्यसे वर्षा होवेहै ऐसे तिसको एक कालके जाननेवाले कहते हैं तिसके अनंतर अन्य दूसरे तो सप्त अश्वरूप और षट्ऋतुवाले निरंतर गतिवाले कालरूप चक्रविषे रथकी नाभिमें अराकी न्याई यह सर्व जगत् स्थित है सर्व प्रकार करके संवत्सर कालरूप तथा चंद्र सूर्यरूप प्रजापति जगतका कारण है ॥११॥

और मास रूप प्रजापति है तिस मासरूप प्रजापतिका कृष्णपक्ष अन्नरूप है और शुक्लपक्ष भोक्ता प्राण है ॥ ऐसे प्राणरूप भोक्ता अग्निको जो जानते हैं सो पुरुष कृष्णपक्ष विषेभी यज्ञ करते हुए शुक्लमें ही करते हैं॥ और ऐसे पूर्वोक्त न जाननेवाले पुरुष शुक्लपक्षमेंभी यज्ञ करते हुए कृष्ण पक्षमेंही करते है ऐसे जानना ॥ १२ ॥

हे कबंधि ! दिनरात्रिरूप प्रजापति है. तिस प्रजापतिका दिन प्राण है और रात्रि अन्न है ॥ जो पुरुष दिन विषे स्त्रीके साथ मैथुन करते हैं वह पुरुष अपने प्राणोंका नाश करते हैं और जो गृहस्थ विधिपूर्वक रात्रिमें अपनी स्त्रीके साथ मैथुन करते हैं वह ब्रह्मचारी ही है ॥ १३ ॥

हे कात्यायनरूप कबंधि ! यह अन्नरूपही प्रजापति है ॥ मातापिताने भक्षण किया जो जो अन्न है तिस अन्नसे वीर्य तथा रक्त उत्पन्न होवे हैं तिन वीर्यरक्तसे सर्व प्राणी उत्पन्न होवे हैं ॥ १४ ॥ ऐसे रात्रिमें अपनी स्त्रीकेसाथ गमन करना यह प्रजापतिका व्रत कहावे है. इस व्रतको जो गृहस्थ विधिपूर्वक आचरण करते हैं तिनोंको प्रत्यक्ष फल तो पुत्रकन्यारूप संतानकी प्राप्ति होवे है और जिनको तप और द्वादश वर्ष पर्यंत पढे वेदकी समाप्तिस्वरूप स्नातक व्रतादिरूप ब्रह्मचर्य और ऋतुविषे तथा अन्यकाल विषे मैथुनका असमान आचरणरूप ब्रह्मचर्य है ॥ और जिनविषे झूठका परित्यागरूप सत्य अव्यभिचारी वर्तमान है ऐसे इष्ट पूर्त और दानके करनेवाले तिनो ऋतुगमन कर पुरुषनकोही यह

चंद्रमंडलविषे पितृयाणरूप ब्रह्मलोक अर्थात् स्वर्ग है सो अदृष्टफल है ॥१५॥ और जो फिर शुद्ध है और चंद्रमाके ब्रह्मलोककी न्याई मलसहित तथा वृद्धिक्षयादिककर युक्त नही है ऐसा जो सूर्यसे उपलक्षित उत्तरायणरूप प्राण अर्थात् अपरब्रह्मका आत्मभाव है यह तिनका है ॥ सो किनका है ? तहां कहे हैं ॥ जैसे गृहस्थको अनेक विरुद्ध व्यवहारके प्रयोजनवाले होनेसे कुटिलभाव अवश्य होवे है तैसे जिन विषे कुटिलभाव नही है और गृहस्थनकी न्याई झूठ तथा माया अर्थात् कपट नही है ऐसे तिन ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और संन्यासीरूप अधिकारियोंविषे निमित्तके अभावसे कपटादिक दोष विद्यमान नहीं है ॥ तिनका यह साधनोंके अनुसारसे ही निर्मल रोगादिक रहित ब्रह्म लोक है ऐसी यह उपासनायुक्त कर्मवाले पुरुषोंकी गति है ॥ पूर्व कहा जो चंद्रलोकरूप ब्रह्मलोक अर्थात् स्वर्गलोक सो केवल कर्मी पुरुषोंकी गति है॥१६॥

॥ इतिश्रीप्रश्नोपनिषद्गतप्रथमः प्रश्नः समाप्तः ॥

शुभमस्तु ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मनेनमः ॥

अथ श्रीप्रश्नोपनिषद्गतद्वितीयः प्रश्नः प्रारभ्यते ॥

इस प्रकार पिप्पलाद ऋषिने अग्निचंद्रमारूप प्रजापतिही सर्व जगतका कर्ता है यह कहा ऐसे पूर्वोक्त प्रकारसे प्रजापतिरूप विराट्को जगत्का कारण निश्चय करके कात्यायनरूप कबंधी तूष्णीं हो कर प्रश्न करनेसे उपराम होता भया ॥

इस प्रकार अधिदैव सूर्य अग्नि आदिकरूपसे प्राणकी उपासनामें उपयोगी अर्थका प्रथम प्रश्नमें कथन किया ॥ अब अध्यात्मरूपसे प्राणके प्रभावके निरूपण वास्ते दूसरे प्रश्नका आरंभ कारते हैं ॥ सो अब विदर्भदेशका निवासी भार्गवनाम ऋषि प्रश्न करते हैं ॥

भार्गवोवाच ॥ हे भगवन् ! इस संघातरूप शरीरके धारण करनेवाले कितने देवता है ? तिनों देवताओंमेंसे भी कितने देवता प्रकाश करनेवाले हैं ? फिर तिनों देवताओंके मध्यभी श्रेष्ठकीर्ति अतिशयता आदिक गुणोंवाला कौन है ? इन तीनों प्रश्नोंका उत्तर आप कृपा करके देवो ॥ १ ॥

इस प्रकार भार्गवरूप वैदर्भेऋषिके प्रश्नको श्रवण करके पिप्पलाद ऋषि आगे क्रमपूर्वक उत्तर कहते हैं ॥

पिप्पलादोवाच ॥ हे भार्गव ! आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी ये पंचभूत तथा श्रोत्र त्वचा चक्षु रसना घ्राण ये पंच ज्ञानइंद्रिय और वाक् पाणि पाद उपस्थ गुदा ये पंच कर्मइंद्रिय और एक मन तथा एक प्राण यह सप्तदश अभिमानी देवता संपूर्ण इस शरीर संघातरूप प्रजाको धारण करते हैं तिन सर्वमेंसे पंच ज्ञानइंद्रिय और एक मन यह षट् प्रकाश करनेहारे हैं ॥ फिर इन सर्वमेंसे अतिशय करके श्रेष्ठ मुख्य प्राण है; काहेतें जो अंध बधिरादिक पुरुष नेत्रश्रोत्रादिकसे रहित हुएभी जीवते देखनेमें आवते हैं परंतु प्राणसे विना यह सर्व विवर्ण होजाते हैं; यातें प्राणही इस संघातरूप प्रजामें श्रेष्ठ मुख्य है. इस प्राणकी श्रेष्ठता अब आगे निरूपण की है ॥ हे भार्गव ! वे संपूर्ण देव अपने माहात्म्यको प्रकाश करके अपनी श्रेष्ठताके अर्थ स्पर्द्धा अर्थात् ईर्षाको करते हुए बडे गृहके स्तंभादिककी न्याई हम इस कार्य कारण संघातरूप शरीरको अस्थिर करके धारण करते हैं ॥ मुझ एकसेही यह संघात धारण करता है ॥ ऐसा एकएक इंद्रियरूप देवका अभिप्राय है ॥ २ ॥

ऐसे अभिमानवाले तिन देवनके तांई मुख्य देवरूप जो प्राण है सो कहता भया ॥ प्राणोवाच ॥ हे देवो ! ऐसे मोहको मत प्राप्त होवो अर्थात् अविवेकसे अभिमान मत करो. काहेतें जो जिस हेतुसे मैंही आपको पंच प्रकारसे विभाग करके अर्थात् प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, इनों पंच वृत्तियों करके इस संघातरूप शरीरको अस्थिर करके स्पष्ट धारता हूं ॥ ३ ॥ ऐसे इस प्राणके कहते हुए वह सर्व इंद्रियरूप देव " यह ऐसे कैसे होवेगा ? " इस रीतिसे अप्रतीतिको प्राप्त होते भये ॥ सो प्राण उनकी अप्रतीतिको देखकर अभिमानसे ऊंचे गमन करते हुएकी न्याई होता भया अर्थात् शरीरसे बाह्य निकसता भया ॥ तिसके पीछे अन्य सर्व इंद्रियभी निकस जाते भये ॥ फिर तिस

प्राणके स्थित हुए अन्य सर्व इंद्रिय स्थित होते भये ॥ जैसे अनेक मधुकर अर्थात् माक्षिका ऊंचे गमन करते हुए अपने मुख्य मक्षिकारूप मधुकर राजाके प्रति सर्वही गमन करते हैं और तिसके स्थित हुए सर्वही स्थित होवे हैं॥यह दृष्टांत कह्या ॥ तैसेही वाक् मन चक्षु श्रोत्र इत्यादिक वह सर्व देव अप्रतीतिको छोडकर प्राणके माहात्म्यको जानकर प्रसन्न हुए प्राणकी स्तुति करते भये॥४॥

कैसे स्तुति करते भये सो दिखावे है ॥ यह प्राण अग्निरूप हुआ तपता है, तैसे यह सूर्य हुआ प्रकाशता है, और यह प्राणही मेघ हुआ वर्षता है, और यह इंद्र हुआ प्रजाको पालता है और यह प्राणही वायु हुआ मेघों और तारामंडलको चलावता है, और यह प्राणदेवही पृथिवीरूप हुआ सर्व जगतको धारता है, और यह चंद्रमा हुआ सर्वका पोषण करता है अर्थात् पुष्ट करता है ॥ बहुत क्या कहैं ॥ जो कुछ स्थूल सूक्ष्मरूप जगत् है और देवताओंकी स्थितिका कारण जो अमृत है सो सर्व यह प्राणही है ॥ ५ ॥ रथकी नाभिमें अराकी न्याई श्रद्धासे लेकर नाम पर्यंत सर्व शरीरस्थिति कालमें प्राणविषे स्थित है ॥ और ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और तिनमें साधने योग्य यज्ञ और ऋग्वेद सर्वकी पालना करता क्षत्रिय जाति और यज्ञादिक कर्मोंके कर्ता होनेसे अधिकारी ब्राह्मणजाति यह सर्वही प्राण है ॥ ६ ॥

किंचः ॥ हे प्राण ! जो प्रजापति विराट् है सो तुमही हो और पिताके गर्भविषे रेतरूपसे और माताके गर्भविषे पुत्ररूपसे जो विचरता है और इस माता पिताके सदृश हुआ जन्मता है सो तूं ही जन्मता है ॥ हे प्राण ! यह मनुष्यादिक प्रजा जो है सो तेरे अ चक्षु आदि कद्वारनसे बलिदानको देते हैं ॥ जिससे तूं चक्षु आदिकके साथ सर्व शरीरनमें स्थित है यातें तेरे अर्थ बलिको देते है ॥ किस निमित्त देते हैं ? जिस कारणसे तूं भोक्तारूप है ॥ इसी कारणसे तेराही सर्व भोग है ॥ ७ ॥ किंचः ॥ इंद्रादिक देवताओंके मध्य तूं वह्नितम है अर्थात् अतिशय करके होम किए द्रव्यका प्राप्त करनेवाला है ॥ और पित्रोंके नांदीमुख श्राद्धमें जो स्वधारूप अन्न है सो देवताओंके होम द्रव्य देनेकी अपेक्षासे प्रथम होवे है यातें पितृनकी प्रथम जो स्वधा है सो तूं है अर्थात् तिस स्वधाकाभी पितृनकेतांई प्राप्त करनेवाला तूं ही है ॥ और चक्षु आदिक इंद्रियरूप

अंगिरा स्वरूप अथर्व नामवाले भये भी तिन ऋपिनका चरित और देह धारणादिकमें उपकार करनेरूप सत्य तुमही हो ॥ ८ ॥ हे प्राण! परम ऐश्वर्य वाले इंद्र तुमही हो और संहार करनेकी सामर्थ्यसे जगतके हरण करता रुद्र तुमही हो और स्थिति काल विषे विष्णु आदिक सोमरूपसे जगतका रक्षण करता तूं एकही है और तूं आकाश विषे निरंतर विचरता है और उदय तथा अस्तसे सर्व ज्योतियोंका पति सूर्य तूं ही है ॥ ९ ॥ हे प्राण! तूं जब मेघरूप हो कर वर्षता है तब अन्न बहुत होता है ॥ तिस अन्नको खाकर यह तेरी प्रजा प्राणोंकी चेष्टाको करते हैं अर्थात् सुखको प्राप्त होवे है ॥ १० ॥

हे प्राण! प्रथम उत्पन्न होनेसे अन्य संस्कार कर ताके अभावसे संस्काररहित व्रात्य तुमही हो अर्थात् स्वभावसे ही तुम शुद्ध हो और अथर्व ऋषियोंके मध्य प्रसिद्ध एक ऋषिनामवाला अग्नि हुआ सर्व हव्यनका भोक्ता तूं है और तूं ही सर्व विश्वका विद्यमान पति है और हम फिर तेरे भक्षणके योग्य हविके दाता हैं. हे वायु! तू हमारा पिता है ॥ ११ ॥ बहुत कहनेसे क्या है? हे प्राण! जो तेरी अपानरूप मूर्ति वक्ता होनेकर वचन रूप चेष्टाको करती हुई वाणिविषे स्थित है और व्यान रूप तनु श्रोत्र विषे स्थित है और प्राणरूप तनु चक्षु विषे स्थित है और समानरूप तनु संकल्पादि व्यापारसे मनविषे स्थित है ताको शांति कर और तेरे निकस नेसे अमंगलरूप कार्यके योग्य मत कर ॥ १२ ॥ और बहुत कहनेसे क्याहै? इस लोकमें यह जो उपभोगका समूह है सो सर्व प्राणके वशमें वर्तता है ॥ और जो स्वर्ग विषे देवादिकका उपभोग रूप जगत् है उसका भी प्राणही रक्षा करता है॥यातें हे प्राण! तू माताकी न्याई हम पुत्रोंकी पालना कर और ऋगादिक तीन वेदरूप ब्राह्मणोंकी लक्ष्मी है और प्रसिद्ध धनादिक ऐश्वर्यरूप क्षत्रियोंकी लक्ष्मी है तिन लक्ष्मीको और तेरी स्थितिरूप निमित्तवाली बुद्धिको हमारे तांई देओ ॥ इस प्रकार सर्व रूपसे जो प्राण वागादिक इंद्रियोंसे स्तुतिको जनाए हुए महिमावाला है सो प्रजापति है ऐसे भार्गवने निश्चय किया ॥ १३ ॥

॥ इति श्रीप्रश्नोपनिषद्गतद्वितीयः प्रश्नः समाप्तः ॥ २ ॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ श्रीप्रश्नोपनिषद्गततृतीयः प्रश्नः प्रारभ्यते ॥

इसीके आगे पिपलाद मुनीश्वरसे आश्वलऋषिका पुत्र आश्वलायननाम कौसलऋषि पूछता भया ॥ **कौसलोवाच** ॥ हे भगवन्! यह प्राण किस कारणसे उपजता है? और उत्पन्न हुआ किस वृत्ति विशेषकर इस शरीरमें आवता है? और शरीरविषे प्रवेशको पाया हुआ आपको भिन्नभिन्न करके किस प्रकारसे स्थित होता है? और किस वृत्तिविशेष कर इस शरीरसे बाहिर निकसता है? और बाहिर जो अधिभूत तथा अधिदैव है ॥ तिनोंको कैसे धारता है? और अध्यात्मको कैसे धारता है? ॥ यह षट्प्रश्न कौलसने किये ॥ तिनोंके उत्तर क्रमपूर्वक आगे पिप्पलाद मुनीश्वर देता भया ॥ १ ॥

पिप्पलादोवाच ॥ हे कौसल! प्राणही प्रथम दुःखसे जानने योग्य है ॥ तिसके जन्मादिकको तूं पूछता है ॥ जिस कारणसे तूं अति प्रश्नोंको पूछता है, याते तूं ब्रह्मनिष्ठ है अर्थात् अतिशय करके ब्रह्मवित् है, तातें मैं प्रसन्न हुआ अब तुमारे तांई कहता हूं ॥ जो तुमने पूर्व प्रश्न हमारेसे पूछे हैं ॥ २ ॥

हे कौसल! अक्षर अर्थात् अविनाशी सत्यस्वरूप परमात्मासे यह प्राण उत्पन्न होवे है ॥ कैसे उत्पन्न होवे है? तहां दृष्टांत कहे है ॥ जैसे मस्तक हस्तादिक स्वरूप पुरुषरूप निमित्तसे यह छाया उत्पन्न होवे है तैसे इस ब्रह्मरूप सत्यपुरुषविषे यह प्राण छायाकी न्याई मिथ्यारूपवाला तत्त्व समर्पण किया है॥ यह प्रथम प्रश्नका उत्तर है ॥ १ ॥

और देहविषे छायाकी न्याई मनके संकल्प इच्छादिक वृत्तियोंकर आपने किये कर्मरूप निमित्तसे इस शरीरविषे आवता है ॥ यह दूसरे प्रश्नका उत्तर है ॥ २ ॥ ३ ॥

अब तीसरे प्रश्नका उत्तर कहे है ॥ जैसे लोकविषे चक्रवर्तिराजाही “ तुम इतने ग्रामोंके प्रति अधिपति होकर स्थित होवो ॥ ” इस प्रकार ग्रामादिकें

विषे अधिकारी पुरुषोंको भिन्न भिन्न जोड़ता है ऐसेही यह मुख्य प्राण चक्षु-आदिक इंद्रियरूप अन्य प्राणनको भिन्नभिन्नही यथायोग्य नेत्रादिक स्थानों विषे जोड़ता है और आपकी वृत्तियोंके भेदरूप प्राण अपानादिक वायुको यथायोग्य गुदा आदिक स्थानों विषे जोड़ता है ॥ ४ ॥ अब स्थानोंका विभाग दिखाते हैं ॥ जो मलमूत्रको नीचे लावता हुआ स्थित है ऐसा आपका भेद अपानवायु है तिसको गुदा और उपस्थ विषे जोडता है॥तैसे चक्षु श्रोत्र तथा मुख नासिकासे निकसता हुआ चक्रवर्ति राजावत् आप प्राण स्थित होवे है और समान जो है सो खायपीए अन्नादिक वस्तुओंको सम लैजाता है यातें समान कहीए है ॥ यातें समानवायुही इस होम किए अर्थात् खायपिए अन्न जलको सम लै जाता है, तातें खाय पीए अन्नरस रूप इंधनवाले जठराग्नि रूप हेतुसे हृदयरूप देशविषे यह सप्तसंख्यावाले मस्तक गत नेत्रादिक सप्तद्वार संबंधी ज्ञानरूप ज्वाला निकसती है ॥ तात्पर्य यह जो प्राणद्वारा दर्शनश्रवणादिक कर रूपादिक विषयोंका प्रकाश होवे है यह तृतीय प्रश्न-का उत्तर है ॥ ३ ॥

हे कौसल! कमलके आकारवाले मांसके पिंडसे प्रच्छिन्न हृदय आकाशविषे यह आत्मा करसहित जीवात्मा वर्तता है ॥ तिस हृदयविषे मुख्य नाड़ियोंकी संख्या कर अर्थात् गणती कर एकसौएक (१०१) नाडी होवे हैं ॥ तिनमेंसे एकएक मुख्य नाड़ीविषे सौ सौ नाडी है फेरभी एकएक प्रति शाखारूप नाड़ीके भेदरूप बहत्तर बहत्तर हजार नाडी होवे हैं अर्थात् एक मुख्य सुषुम्णा नाम नाडीकी स्कंधशाखारूप सौ १०० संख्यावाली मुख्य नाडियोंकी शाखारूप जो सौ सौ नाड़ी हैं, तिन एकएक नाडीकी संख्या बहत्तर बहत्तर (७२०००) हजार नाडी होवे हैं. सर्व मिलकर बहत्तर करोड़ ७२०००००० नाडी होवे है ॥ इन नाडियोंविषे व्यान नामवाला वायु विचरता है ॥ और जो एक नाड़ी है सो एकसौएक नाड़ीके मध्य ऊंचे मूर्धके स्थानमें गमन करनेवाली सुषुम्णा नाम नाड़ी है तिस एक नाड़ीसे ऊंचे जाता हुआ पादसे लेकर मस्तक पर्यंत वर्तमान हुआ उदानवायु विचरता है ॥ ६ ॥ सो शास्त्रविषे विधान किए पुण्यकर्मोंसे देवादिकके स्थानरूप पुण्यलोकके तांई प्राप्त करे है ॥ तिससे विपरीत पापकर्मसे पशुपक्षी आदिककी योनिरूप पापमय नरकके तांई प्राप्त

करे हैं और सम तथा प्रधान पुण्य और पाप दोनोसेही मनुष्यलोकके तांई प्राप्त करे है ॥ ७ ॥ यह चतुर्थ प्रश्नका उत्तर कह्या ॥ ४ ॥

हे कौसल ! आदित्यही प्रसिद्ध अधिदैवत रूपसे बाहिरका प्राण है सो यह ऊंचे जाता है ॥ यह आदित्यही अध्यात्मक चक्षु इंद्रियविषे स्थित प्राणको प्रकाशसे अनुग्रह करता हुआ अर्थात् रूपविषयके ज्ञानसे चक्षुके प्रकाशको करता हुआ वर्तता है ॥ तैसे पृथ्वीविषे अभिमानी जो प्रसिद्ध अग्नि देवता है सो यह पुरुषकी अपान वृत्तिको वश्य करके नीचेही खैंचनेसे अनुग्रह कर वर्ते है ॥ तिस विना शरीर भारी होनेसे पतन होवे है अथवा आकाशमें ऊपर चलाजावे नीचे न गिरना अथवा ऊपर न जाना यह अग्निरूप पृथ्वीका उपकार है और जो यह स्वर्ग तथा पृथवीके मध्य आकाश है तिसविषे स्थित जो वायु है सो मंच विषे स्थित पुरुषकी न्याई आकाशरूप कहीए है सो वायु समानरूप है अर्थात् समानकी न्याई उपकार करता हुआ वर्तता है ॥ काहेतें समानवायुको मध्य आकाशविषे स्थित होनेकी तुल्यतासे और समानसे जो बाहिरका वायु है सो व्याप्तिकी समानतासे व्यानरूप है तात्पर्य यह है जो सो वायु व्यानवायुके तांई अनुग्रह करता हुआ वर्तता है ॥ ८ ॥

और जो बाह्यका प्रसिद्ध समान तेज है सो उदानरूप है ॥ तात्पर्य यह है जैसे तेज अपने प्रकाशसे शरीरविषे उदानवायुके तांई अनुग्रह करे है ॥ यातें तेज स्वभाववाला और शरीरसे बाह्य निवास करनेरूप कर्मका कर्ता उदानवायुभी बाहिरके तेजके अनुग्रहको पाया हुआही शरीरविषे वर्तता है तातें जब जीवके जीवनका हेतु कर्मके उपशम भये बाह्यके तेजके अनुग्रहके अभावसे लौकिक पुरुष स्वभावके तेजसे रहित होवे है तब तिसको क्षीण आयुवाला मरणेको तयार हुआ जाने है ॥ सो पश्चात मन विषे प्रवेशको प्राप्त भई वागादिक इंद्रियोंके साथ अन्य शरीरको पावता है ॥ ९ ॥ हे कौसल यह जीव मरण काल विषे जिस पशुआदिक शरीरमें चित्तवाला होवे है तिस चित्तके संकल्पसे इंद्रियोंके साथ मुख्य प्राण वृत्तिको पावता है अर्थात् मरण काल विषे जब इंद्रियोंकी वृत्तिके क्षीण हुए मुख्य प्राण वृत्तिसे स्थित होता है तब तिसके संबंधि कहते हैं जो यह अबतक जीवता है

सो प्राण जब तेजके अनुग्रहको प्राप्त भई उदान वृत्तिकर युक्त हुआ शरीर के स्वामी जीवात्मारूप भोक्ताके साथ तादात्म्यताको पावता है तब ऐसे उदान वृत्तिसे ही युक्त भया भोक्तारूप प्राण तिसही भोक्ताको पुण्य पापरूप कर्मके वश्यसे जैसा इसका अभिप्राय है तैसे लोकको प्राप्त करे हैं ॥ १० ॥ जो कोई विद्वान् ऐसे उत्पत्ति आदिक उक्त विशेषणोंकर युक्त प्राणको जानता है ॥ इस पुरुषको इस लोक तथा परलोक संबंधी फल सर्व प्राप्त होवे है और इस विद्वानकी पुत्रपौत्रादिक प्रजाका उच्छेद होवे नहीं और शरीरके पात भये यह पुरुष प्राणके साथ सायुजैकत्वभावसे मरणधर्मरहित होवेहै ॥ इस अर्थ विषे आगेका श्लोकरूप मंत्र प्रमाण है ॥ ११ ॥ प्राणकी परमात्मासे उत्पत्तिको और मनसे किए कर्मसे इस शरीर मैं आगमनको और गुदा तथा उपस्थादिक स्थानोंमें स्थितिको और चक्रवर्ति राजाकी न्याई प्राण वृत्तियोंके भेदसे पंच प्रकारसे स्थापनरूप स्वामीपणेको और स्वर्गादिकरूपसे स्थितिरूप बाह्यको और प्राणादिक वृत्ति स्वरूप चक्षु आदिकके आकारसे स्थितिरूप अध्यात्मको ऐसे जानकर प्राणरूप अमृतको पावता है, अमृतको पावता है ॥ यहां दोवार जो कथन है सो तृतीय प्रश्नके अर्थकी समाप्ति निमित्त है ॥१२॥ सो यह पंचमषष्ठ कोसलके प्रश्नोंका उत्तर मिश्रित कथन कीया है॥५॥६॥१२॥

॥ इति श्रीप्रश्नोपनिषद्गततृतीयः प्रश्नः संपूर्णः ॥ ३ ॥

शुभमस्तु ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मनेनमः ॥

अथ श्रीप्रश्नोपनिषद्गतचतुर्थः प्रश्नः प्रारभ्यते ॥

पूर्व तीन प्रश्नोंसे संसाररूप कार्य जगतके अंतरगत साध्यसाधनमय अन्यत् सर्व प्राण स्वरूप अपर ब्रह्मकी विद्याके विषयको समाप्त करके अब साधन रूप प्रमाण अगोचर तथा मन इंद्रिय अगोचर अजन्म अविनाशी पुरुष शिव शांति स्वरूप परम ब्रह्मकी विद्याके विषय वस्तु कहनेको योग्य है

सो आगेके तीन प्रश्नोंकर कथन करीये है ॥ अब सौर्य्यायिणी नाम गार्ग्य-ऋषि प्रश्न करे है ॥

गार्ग्य उवाच ॥ हे भगवन् ! इस मस्तक हस्तादिक अंगवाले पुरुषमें कौनसे कारण अपने व्यापारसे उपरतिरूप निद्राको करे है ? ॥ १ ॥ और कौनसे कारण इस पुरुषविषे अपने व्यापारके करनेरूप जाग्रणको करे है ? ॥ २ ॥ और इनों कार्य तथा करणरूप देवनके मध्य कौन देव स्वप्नोंको देखता है ? ॥ ३ ॥ और सुषप्तिमें सुखको कौन प्राप्त होता है ? ॥ ४ ॥ और सर्व प्राणादिक किसके आश्रित रहे हैं ॥ ५ ॥ यही पंच प्रश्न हैं ॥ १ ॥

अब इन पंच प्रश्नोंके क्रमपूर्वक उत्तर पिप्पालाद मुनीश्वर आगे कहे है ॥

पिप्पलादोवाच ॥ हे गार्ग्य ! जैसे सूर्यकी सर्व किरण अस्तको प्राप्तहुए इस तेजोमंडलमैं विवेचनके अयोग्य एकताको प्राप्त होवे है ॥ और तिसही सूर्यके किरण फिर उदयको पाये हुए फैलते हैं ॥ इसी प्रकार प्रसिद्ध यह सर्व विषय और इंद्रिय आदिकका समूह चक्षुआदिक देवनको मनके अधीन होनेसे परम देव अर्थात् उत्कृष्ट प्रकाशमान जो मन है तिसविषे शयन कालमें सूर्य मंडलविषे किरणोंकी न्याई एकताको पावते हैं अर्थात् चक्षुआदिकका प्रकाशक जो मन है सो मन सुषप्तिविषे लय होवे है तिसकेसाथ चक्षुआदिक इंद्रयभी लय होवे हैं ॥ तिन इंद्रियोंके लय होनेके कारण यह पुरुष श्रोत्र इंद्रियकरके श्रवण नही करे है, और चक्षुइंद्रिय करके देखता नही, नासिका करके सूंघता नही, रसनाकरके रस लेता नहीं, त्वचा करके स्पर्श करता नही, वाणी करके बोलता नही, हाथ करके ग्रहण करता नही, उपस्थ करके आनंदको लेता नहीं, गुदासे मलत्याग करता नहीं और पादोंकरके चलता नहीं किंतु सोवता है ऐसे लौकिक जन कहते हैं ॥ २ ॥ यह प्रथम प्रश्नका उत्तर कह्या ॥ १ ॥

हे गार्ग्य ! सुषुप्ति अवस्था विषे मन सहित इंद्रियोंके लय हुएभी प्राण अपान व्यान समान उदान यह पंच प्रकारका प्राण अग्निवत् स्थितिरूप जाग्रतको प्राप्त होवे है यांते यह प्राणही इस शरीरकी रक्षा करे है यहां सुषुप्तिविषे विद्वान् पुरुषको श्रुतिने अग्निहोत्रकी प्राप्ति कही है सोई दिखावते हैं जैसे प्रसिद्ध अग्निहोत्री पुरुषका गार्हपत्यनाम अग्नि सर्वदा स्थित रहे हैं

और आहवनीयनाम अग्नि तो होमकरने वास्ते गार्हपत्य अग्निसे उठायके प्रज्वलित करा जावे है ॥ तैसे यहां प्रवेश करनेहारे अपानवायुसे बाहिर गमन करनेहारा प्राणवायु उठाया जावे है; यातें प्राण आहवनीयरूप है अपान गार्हपत्यरूप है, और व्यानवायु दक्षिणाग्निरूप है काहेतें जैसे प्रसिद्ध अग्निहोत्रीकी शालाके दक्षिणदेशमें दक्षिणाग्नि स्थित होवे है तैसे यह व्यानवायु हृदयके पंचछिद्रोंके दक्षिणछिद्रमें रहे है यातें व्यान वायुको दक्षणाग्निरूप करके कह्या है ॥ ३ ॥ और यह समान वायु होता-रूप है काहेते जो यह समान वायु उरसे उर्ध्वश्वासनिश्वास होनेसे आहूतियोंको शरीरकी स्थितिके अर्थ समभावसे प्राप्त करे है ॥ और यह मन निश्चय करके यजमानरूप है. और स्वर्गादिक फलही उदान है काहेतें जो उदान वायु करके ही स्वर्गादिक फलको यह पुरुष प्राप्त होवे है इस मनको दिनदिनविषे सुषप्ति अवस्थामें उदान वायु ब्रह्मानंद प्राप्त करे है. ऐसे विद्वानका सर्वदा अग्निहोत्र होवे है यातें विद्वान कर्मरहित नहीं है ॥ ४ ॥ यह दूसरे प्रश्नका उत्तर कह्या ॥ २ ॥

अब तीसरे प्रश्नका उत्तर कहे हैं ॥ हे गार्ग्य ! यह मनही चैतन्यके प्रति बिंब सहित हुआ नानाप्रकारके स्वप्नोंको देखे है अर्थात् महिमाको अनुभव करे है. कैसे महिमाको अनुभव करे है तहां कहे है ॥ जो जिस मित्रपुत्रा-दिक पदार्थको पूर्व अनुभव कीया है तिसकी वासना करके युक्त हुआ पुत्र और मित्रकी वासनासे उद्भव हुए दृश्य वस्तुको पुत्र और मित्रकी न्याईं अविद्यासे देखे हुएकी न्याईं मानता है ॥ तैसे जो अर्थ श्रवण किया है ति-सही श्रवण किए अर्थको तिसकी वासनासे पीछे श्रवण किए हुए की न्याईं मानता है और नदीके तीरादिक अन्य देशोंसे और पूर्वादिक अन्य दिशासे वारंवार अनुभव कीया जो वस्तु तिसको अविद्यासे अनेक दिनविषे वर्तमान अनेक स्वप्नोंविषे अनुभव करे है तैसे अन्य जन्मविषे देखे और इस जन्मविषे न देखे वस्तुको और अन्यजन्मविषे श्रवण किए और इस जन्मविषे श्रवण न किए वस्तुको और अन्यजन्मविषे मनसे अनुभव किए और इस जन्मविषे के-वल मनसे नहीं अनुभव किए वास्तव जलादिक सत्यरूप और मृगजलादिक असद्रूपको बहुत क्या कहें ! कथन किए इन सर्व वस्तुओंको जो देखता है

सो सर्व मनकी वासनारूप उपाधिवाला हुआ देखता है ॥ ऐसे सर्वरूप मनोमय देव स्वप्नोंको देखता है ॥ ५ ॥ यह तृतीय प्रश्नका उत्तर कह्या ॥ ३ ॥

सो मनोरूप देव जिसकालविषे चितानामवाले सूर्यके तेजसे नाडीरूप शय्या विषे सर्व तर्फसे पराभवको प्राप्त होवे है अर्थात् वासनाके उद्भवके द्वाररूप स्वप्नभोगके दाता कर्मके तिरस्कार करके युक्त होवे है तब इंद्रियों सहित मनके वासनारूप किरण हृदयविषे लय होवे है, तब मन वनके अग्निवत सामान्य ज्ञान अर्थात् चैतन्यरूपसे सारे शरीरको व्यापकर स्थित होवे है, तब सुषप्तिको प्राप्त होवे है तिसकालविषे यह मन नामक देव स्वप्नोंको देखता नहीं; काहेतें जो देखनेके द्वारको तेजसे विरोधको पाया हुआ होनेसे पश्चात् इस शरीरविषे तब यह सुख होवे है जो बाधरहित समानरूपसे शरीरविषे व्यापक प्रसन्नज्ञानरूप सुख है सो यह अर्थ है ॥ ६ ॥ यह चतुर्थ प्रश्नका उतर कह्या ॥ ६ ॥

अब पंचम प्रश्नका उत्तर कहे है ॥ इसही सुषुप्तिविषे सर्व जगत अक्षरब्रह्मविषे प्रवेशको पावे है इसपर दृष्टांत दिखावे है. हे सोम अर्थात प्रियदर्शन ! जैसे पक्षी निवासके अर्थ वृक्षको जाते हैं अर्थात आश्रय करते हैं तैसे पृथ्वीआदिक सर्व जगत अक्षर ब्रह्मके तांई सुषप्तिकालमें जाते है अर्थात लीन होते हैं ॥ ७ ॥ वह कौन है सो आगेकहे है ॥ जो यह पृथ्वी तथा तिसकी गंधमात्रा, जल तथा जलकी रसमात्रा, तेज और तिसकी रूपमात्रा, वायु तथा तिसकी स्पर्शमात्रा और आकाश तथा तिसकी शब्दमात्रा और चक्षु इंद्रिय तथा तिसका द्रष्टव्य विषय, श्रोत्र तथा तिसका श्रोतव्य विषय, घ्राण तथा घ्रातव्य विषय, रसना तथा तिसका रसितव्य विषय, त्वक् तथा तिसका स्पर्शयितव्य विषय, वाक् तथा तिसका वक्तव्य विषय, और हस्त तथा तिसका दातव्य विषय, उपस्थ तथा तिसका आनंदयितव्य विषय, पायु तथा तिसका विसर्जयितव्य विषय, पाद इंद्रिय तथा तिसका गन्तव्य विषय, मन तथा तिसका मन्तव्य विषय, बुद्धि तथा तिसका बोद्धव्य विषय, अहंकार तथा तिसका अहंकर्तव्य विषय, चित्त तथा तिसका चेतयितव्य विषय, त्वचाइंद्रियसे भिन्न प्रकाशयुक्त चर्मरूप तेज तथा तिससे प्रकाश करणे योग्य विषय, जिसको सूत्रात्मा कर कहते हैं

ऐसा प्राण और तिस कर धारणेयोग्य सर्व नामरूपात्मक जगत तांका उपाधि-भूत, इतनाही सो सर्व है ॥ ८ ॥

हे गार्ग्य ! इससे परे जो जगतका कर्ता आत्माका रूप है सो सर्वका अधिष्ठान रूप यह आत्माही नेत्रादिकके साथ तदात्मरूपतासे द्रष्टा श्रोता स्प्रष्टा घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुष है॥अर्थ यह है द्रष्टा कहीए देखने वाला, श्रवण करनेवाला,स्पर्श करनेवाला,सूंघनेवाला,रस लेनेवाला, मनन करने वाला, जाननेवाला, करनेवाला, विज्ञानात्मा पुरुष है तिस आत्माकी उपाधिकाही अक्षरात्मामें लय होवे है; यातें उपाधि उपहित आत्माकाही अक्षरमें लय कह्या है अब कथन किये हुए निर्गुण ब्रह्मात्माके ज्ञानका फलकहे है ॥ ९ ॥ यह आत्मा अज्ञान रहित है तथा सूक्ष शरीरसे रहित है तथा व्रणादिकसे रहित है अर्थात् स्थूल शरीरसे रहित है यातें शुद्ध है ॥ ऐसे शुद्ध आत्माको जो अधिकारी पुरुष अपने अंतःकरणमें अपना स्वरूप रूपकरके निश्चय करे है सो अधिकारी पुरुष तिस अक्षरात्माको प्राप्त होवे हैं ॥ इस फलको आगेका श्लोकरूप मंत्र कथन करे है ॥ १० ॥

हे सौम्य अर्थात् प्रिय दर्शन ! यह अग्नि आदिक सर्व देवनकर सहित चक्षु आदिक इंद्रिय और पृथ्वी आदिक भूत जिस अक्षर विषे प्रवेशको पावते है तिस अक्षरको जो उक्त अर्थका ग्राहक विज्ञानात्मा अर्थात जीव जानता है सो सर्वज्ञ हुआ सर्वकेतांई प्रवेशको पावता है ॥ ११ ॥

॥ इति श्रीप्रश्नोपनिषद्गतचतुर्थः प्रश्नः संपूर्णः ॥ ४ ॥

॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ श्रीप्रश्नोपनिषद्गतपंचमः प्रश्नः प्रारभ्यते ॥

इस प्रकार गार्ग्यऋषि प्रश्नके उत्तरको श्रवण करके तूष्णीं होता भया तिसके पश्चात् शिबी ऋषिका पुत्र शैब्य जो सत्यकामनामवाला ऋषि है सो प्रश्न करता भया ॥

सत्यकामोवाच ॥ हे भगवन्! जो पुरुष अक्षर ब्रह्मके जाननेमें समर्थ नहीं है तिसके वास्ते निर्गुणसे गुण ब्रह्म अर्थात् परम ब्रह्म तथा अपर ब्रह्मरूप ॐकारकी उपासना कही है, तिस विषे मैं अब प्रश्न करताहूं ॥ हे भगवन् ! सो जो निश्चय करके प्रसिद्ध मनुष्यों विषे ब्रह्मचर्यादिक यम नियम सहित इस ॐकारका चिंतन मरने पर्यंत करता है सो पुरुष तिस ॐकारकी उपासना करके ध्यान करता पुरुष पृथ्वी आदिकमेंसे किस लोकको प्राप्त होता है ॥ इस प्रकार सत्य कामके प्रश्नको श्रवण करके आगे पिप्पलाद मुनीश्वर उत्तर कहे है ॥ १ ॥

पिप्पलादोवाच ॥ हे सत्यकाम ! यह ॐ कार परम ब्रह्म और अपर ब्रह्मरूप है ॥ परम ब्रह्मनाम अक्षरका है और अपर ब्रह्म नाम समष्टि प्राणरूप हिरण्य गर्भका है ॥ जैसे शालिग्रामविषे विष्णुका ध्यान करना शास्त्रविषे विधान किया है तैसे ॐ कारमें परमब्रह्म तथा अपर ब्रह्मका ध्यान करना कह्या है ॥ जो पुरुष परमब्रह्मरूपसे ॐ कारका ध्यान करता है सो पुरुष अक्षररूप परम ब्रह्मको प्राप्त होता है और जो अपर ब्रह्मरूपसे ॐ कारका ध्यान करता है सो पुरुष अपर ब्रह्मरूप प्राणको अर्थात् हिरण्यगर्भको प्राप्त होता है ॥ २ ॥ हे सत्यकाम ! ऐसे सो जब केवल एक अकारमात्रके विभागके जाननेवालाही सर्वदा एक मात्रारूप ॐ कारका ध्यान करता है, अर्थात् ध्यावता है सो पुरुष एक मात्राकर युक्त तिस ॐ कारके ध्यानसेही तिसमात्राके साक्षात्कार-वान् हुआ तत्कालही पृथिवीविषे जन्म पावता है ॥ यद्यपि पृथिवीविषे अनेक जन्म हैं तथापि तिसविषे उस साधिक पुरुष ध्याताको मनुष्यलोक अर्थात्

मनुष्य जन्मकेतांई ही ऋग्वेदरूप ॐ कारकी प्रथम एकमात्रा प्राप्त करे है ॥ सो उपासक पुरुष तिस मनुष्य जन्ममें तप ब्रह्मचर्य श्रद्धाकरके संपन्न महिमाको अर्थात् विभूतिको अनुभव करे है ॥ ३ ॥ फिर जब दो मात्राके विभागका ज्ञाता जो पुरुष है सो दो मात्रासे युक्त ॐ कारको ध्यावता है सो स्वप्नरूप मनन करने योग्य यजुर्वेदमय चंद्रमारूप दैवतवाले मनविषे एकाग्रतासे आत्मभावको पावता है, सो ऐसे आत्मभावको पाया मरण रहित हुआ द्वितीयमात्रा रूपही यजुरवेदसे अन्तरिक्षरूप आकारवाले द्वितीय लोकरूप चन्द्रलोकके तांई प्राप्त होवे है अर्थात् तिस साधकको यजुर्वेदके वाक्य जो हैं सो चंद्रलोक संबंधि जन्मकेतांई प्राप्त करे है ॥ तिस चंद्रलोक अर्थात् स्वर्गलोक विषे विभूतिको अनुभव करके मनुष्य लोकके तांई फिर जन्मको पावता है ॥ ४ ॥

जो पुरुष तीन मात्राको विषय करनेवाले ज्ञानयुक्त ॐ इस प्रकारको इसही अक्षररूप प्रतीकसे ॐकाररूप सूर्यके अंतर्गत परम पुरुषको ध्यावता है, सो तीसरी मात्रारूप भया ध्यान करता हुआ मरणको पाया हुआ भी तिस ध्यानसे तेजरूप सूर्यविषे प्राप्त होवे है ॥ फिर तिस सूर्यसे चंद्रलोकादिककी न्याई पुनरावृत्तिको पावता नहीं किंतु सूर्यविषे प्राप्त मात्रही होवे है ॥ जैसे सर्प त्वचासे मुक्त होवे है इसी प्रकार प्रसिद्ध निश्चय करके पापोंसे यह साधक पुरुष मुक्त होवे है ॥ पश्चात् मुक्त हुआ सो तृतीयमात्रारूप सामवेदसे ऊंचे हिरण्यगर्भरूप ब्रह्मके सत्यलोककेतांई प्राप्त होवे है ॥ तीन मात्रारूप ॐकारका ज्ञाता सो विद्वान पुरुष ध्यान करता हुआ इस सर्वसे पर अर्थात् उत्कृष्ट जीव घनरूप हिरण्यगर्भसे पर अर्थात् परमात्मा नामक सर्व शरीररूप पुरियोंमें स्थित हुआ पुरुषको देखता है ॥ इस अर्थविषे प्रकाशक आगेके दो मंत्ररूप श्लोक प्रमाण है ॥ ५ ॥

तीन संख्यावाली जो अकार उकार मकार नामवाले ॐकारकी मात्रा है वह मृत्युके विषयही है और परस्पर संबंधवाली है ॥ वह तीनमात्रा विशेषकर एक एक विषयमें ही योजना नही करी होवे है ऐसे नहीं होवे ॥ किंतु विशेष कर एकही ध्यानकालविषे ध्यान करी होई जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिरूप के अभिमानी और वैश्वानरादिकसे अभिन्न विश्वादिक पुरुषनके अकारादिक मात्रासे तादात्म्य कर ध्यानरूप और बाहिर भीतर तथा मध्यकी योग क्रिया है

तिनके सम्यक् ध्यानके काल योजना किए हुए जब वह तीन मात्रा योजना करी होवे है तब ॐकारके उक्त विभागका ज्ञाता जो योगी है सो चलायमान होता नही, किंतु अचलही रहता है ॥ ६ ॥ अब सर्व अर्थके संग्रहरूप अर्थवाला दूसरा मंत्र कहे है ॥ अकार मात्राके ध्यान करनेवालेको ऋग्वेदके अभिमानी देवता इस मनुष्य लोकमें प्राप्त करे हैं, तथा अकार उकाररूप दो मात्राके ध्यानसे यजुर्वेदके अभिमानी देवता स्वर्गलोकमें प्राप्त करे है, और ॐकारके तीन मात्रासे ध्यान करनेवाले पुरुषको ब्रह्मलोकमें सामवेदका अभिमानी देवता लै जावे है ॥ तात्पर्य यह है ॥ ऋग्वेदसे मनुष्य लोकको पावता है, यजुरवेदसे अन्तरिक्षगत चंद्रमाके लोक अर्थात् स्वर्ग लोकको पावता है और जिसको विद्वान् पुरुष जानते हैं, अविद्वान् नही जानते, ऐसा जो तीसरा ब्रह्म लोक है तिसको सामवेदसे पावता है ॥ ऐसे विद्वान् तिस अपर ब्रह्मरूप तीन भांतिके लोकको ॐकाररूप साधनसे पावता है और जो अक्षर सत्यपुरुष नामक शांत मुक्त और जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति आदिक भेदरूप सर्व प्रपंचसे रहित और इसीसे जरारूप विकारादिकसे रहित है याते अभय है, जिसके अभय है इसीसे सर्वते अधिक है, ऐसा जो परम ब्रह्म है तिसकोभी तिसी ॐकाररूप साधनसे ही पावता है ऐसे उपदेशको सत्यकाम ऋषि श्रवण करके तूष्णींभावको प्राप्त होता भया ॥ ७ ॥

॥ इति श्रीप्रश्नोपनिषद्गतपंचमः प्रश्नः संपूर्णः ॥ ५ ॥
शुभमस्तु ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ श्रीप्रश्नोपनिषद्गतषष्ठः प्रश्नः प्रारभ्यते ॥

अब भारद्वाज नाम सुकेशा ऋषि षष्ठ प्रश्नको करे हैं ॥

सुकेशा उवाच ॥ हे भगवन् हिरण्यनाभ नामवाला कौसल्य देशका राजा क्षत्री मेरेको प्राप्त होकर यह पूछता भया ॥ “ हे भारद्वाज ! तुम

षोडशकलावाले पुरुषको जानते हो यातें सो मेरे प्रति कहो " तिस विनय सहित राजपुत्रको मैं कहता भया ॥ हे राजन् ! जो तुमने षोडशकलावाला पुरुष पूछा है, तिस षोड़शकल पुरुषको मैं नही जानता ॥ ऐसे मै तिस राज पुत्रके प्रति कह्याभी, परंतु सो राजपुत्र विश्वास न करता भया, काहेते जो यह भारद्वाज ऋषि षोडशोकला पुरुषको जानते तो हैं; परंतु मुझको किसी निमित्तसे कहते नहीं, ऐसे माननेवाले राजपुत्रके प्रति मैं फिर यह कहता भया. हे राजन् ! यदि मैं षोड़शकला पुरुषको जानता तब मैं तुमारे प्रति किस निमित्त न कहता ॥ और जो पुरुष इस लोकमें मोहके वशंयसे मिथ्या वचनको कहता है सो मिथ्यावादी पुरुषरूप वृक्ष मूलसहित नाशको प्राप्त होवे है. अर्थ यह इसलोक तथा स्वर्ग लोकादिकका सुखरूप फल जो है तिसको नही प्राप्त होता याते मैं मिथ्यावचन कबी नही कहता तुम मेरे वचनपर विश्वास करो, मैं षोडशकला पुरुषको जानता नही हूं. हे भगवन् ! जब मैंने ऐसे कह्या तब सो हिरण्यनाभि राजपुत्र मेरे वचनको श्रवण करके तूष्णींभावको प्राप्त होकर रथपर आरूढ हुआ आपणे देशको जाता भया; हे भगवन् ! तिस षोडशकला पुरुषको आप कृपा करके मेरे प्रति कथन करो ? ॥ वह षोडशकल पुरुष कहां रहता है ? ॥ १ ॥

इस प्रकार सुकेशा ऋषिके प्रश्नको श्रवण करके पिप्पलाद मुनि उत्तर कहता भया ॥

पिप्पलादोवाच ॥ हे सोम्य अर्थात् प्रियदर्शन ! षोडशकलावाला पुरुष इहां शरीरके भीतर हृदय देशमें साक्षीरूपसे स्थित है ॥ यह षोड़शकला जिसमें होवे है सो षोड़शकल पुरुष कहीए है सो दूर नही है ॥ २ ॥ सोई साक्षी आत्माही सर्व जगतका अधिष्ठान हुआ संपूर्णका नियंता है ॥ इस आत्माके अद्वैतरूपताके बोधन अर्थ संपूर्ण जगतरूप षोडशकलावोंकी इस आत्मासेही उत्पत्ति श्रुति भगवती कथन करे है ॥ अब अध्यारोप अपवादकी रीतिसे उत्पत्तिप्रकार कहे हैं ॥ हे भारद्वाज ! यह आत्मा आपने बंधन अर्थ षोडशकलारूप उपाधिकी उत्पत्तिवास्ते इस प्रकारका बिचार करता भया ॥ " मैं व्यापक अक्रिय परमात्मा किसके गमनागमन कर इस लोक तथा परलोक विषे गमनागमन रूप संसारको प्राप्त होंवेगा ॥ जैसे कोशकार

कीट आपणे निवासके वास्ते बंधनका कारण ग्रहरूप उपाधिका आरंभ करे है तैसे वास्तवसे निष्कल हुआभी षोडशकलरूप उपाधिकी उत्पत्तिवास्ते पूर्व उक्त प्रकारसे चिंतन अर्थात् विचार करके सो परमात्माही पांच वृत्तिवाले प्राणको उत्पन्न करता भया ॥ तिस प्राणरूप उपाधि करके व्यापकस्वरूप आत्माका शरीरसे बाह्य निकलना तथा लोक परलोकमें गमनागमनादिक सिद्ध होवे है ॥ ३ ॥ तिस प्राणरूप प्रथम कलाको उत्पन्न करके सो आत्मा फिर शुभकर्मोंमें प्रवृत्ति करनेहारी दूसरी आस्तिक बुद्धिरूप श्रद्धाको उत्पन्न करता भया ॥ तिसके अनंतर सो परमात्मा कर्मोंके करनेका तथा तिन कर्मोंके फलभोगका आधाररूप जो आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी यह पंचभूतरूप पांच कला है तिनको उत्पन्न करता भया ॥ तिसके पश्चात सो परमात्मा पंचज्ञान इंद्रिय तथा पंच कर्म इंद्रिय यह दशइंद्रियरूप अष्टमी कलाको उत्पन्न करता भया; फिर तिसके पश्चात् तिन इंद्रियोंके नियामक मनरूप नवमी कलाको उत्पन्न करता भया. फिर तिस मनकी स्थिति करनेहारा दशमी कलारूप अन्नको उत्पन्न करता भया फिर तिस अन्नकर उत्पन्न भया जो सामर्थ्यरूप वीर्य तिस वीर्यरूप बलको उत्पन्न करता भया; फिर तिस बलरूप वीर्यसे उत्पन्न होनेवाला तथा चित्तशुद्धिके करनेवाले तपको उत्पन्न करता भया. फिर कर्मके उपयोगी ऋग्, यजु, साम और अथर्व इन चार वेदरूप मंत्रको उत्पन्न करता भया. फिर वैदिक कर्मरूप चतुर्दशी कलाको उत्पन्न करता भया. फिर तिस कर्मके पश्चात् कर्मका फलरूप चतुर्दश लोक उत्पन्न होते भये सो लोक पंचदशमी कला है. फिर तिन लोकोंमें उत्पन्न भये प्राणियोंके देवदत्तादिक नाम उत्पन्न होते भये, सो नाम मुक्त पुरुषोंकोभी रहे है यातें प्रलय पर्यंत रहनेवाला नाम सो यह षोड़शी कला है, तिनको परमात्मा उत्पन्न करता भया ॥ ४ ॥

हे भारद्वाज ! जिसको कलाके अधिष्ठान आत्माका यथार्थ साक्षात्कार हुआ है तिसके उपाधिरूप कला सर्वनिवृत्त हो जावे है ॥ जैसे गंगा यमुना आदिक नदीयां समुद्रको प्राप्त होकर भिन्न नामरूपसे रहित होवै है अर्थात् समुद्रही केवल होवे है ऐसेही उक्तलक्षणवाला पुरुषरूप स्वयंज्योतिरूप इस द्रष्टाकी यह प्राणादिक षोडशकला हैं ॥ यह षोडशकला नदियोंके अयनरूप समुद्रकी न्याई पुरुष है ॥ अयन अर्थात् आत्मभावकी प्राप्ति जिस कलाकी, ऐसे होई

पुरुषरूप आत्मभावको पाकर नामरूपके तिरस्कार स्वरूप अस्तको पावे है ॥ तिनका नामरूपरहितता नही पश्चात् केवल शुद्ध पुरुषही शेष रहे है ॥ सो यह पुरुष अकल अर्थात कलारहित है तथा अमृतरूप है इस अर्थको यह मंत्र कथन करे है ॥ ५ ॥ जैसे अरा नाभिमें स्थित होवे है ॥ तैसे जिस आत्मामें यह षोडशकला स्थित है ॥ हे ऋषियो! तिस अधिष्ठानरूप अकल पुरुषको तुम सर्व जानकर निश्चय करो ॥ और तिस आत्माके ज्ञानविना तो तुमारेको मृत्यु त्याग करेगा नही यातें तिस आत्माके ज्ञानसे मृत्युकी निवृत्ति करो. जैसे स्वप्नविषे निद्राकर उत्पन्न भया जो सिंह है तिसकी जाग्रतसे विना निवृत्ति होवे नही तैसे अविद्याक मृत्युभ्रमकी निवृत्ति आत्मज्ञान विना होवे नही याते मृत्युकी निवृत्तिवास्ते आत्माका निश्चय करो ॥ ६ ॥

अब आगे पिप्पलाद मुनि तिन ऋषियोंकी कृतकृत्यता अर्थ कहे है ॥ हे ऋषियो! इस पूर्वोक्त प्रकारसे मैं इतना ही ब्रह्म जानता हूं ॥ इससे अधिक मैं नही जानता और इससे अधिक तुमारेको किंचितमात्रभी जानने योग्य नही है ॥ ७ ॥ ऐसे उपदेशको ग्रहण करके वह ऋषि पिप्पलाद मुनिके पादोंमें दंडवत प्रणाम करते हुए तथा फूलोंसे अनेक प्रकारकी पूजा करते हुए तिस पिप्पलाद गुरुके तांई इसप्रकार वक्ष्यमाण वचन कहते भये ॥ हे भगवन्! आपने हमारे सर्व संशय निवृत्त करे हैं तथा आपने हमारेको कृतार्थ किया है. हे भगवन्! आप हमारे मुख्य पिता हैं, काहेतैं यह मातापिता तो स्थूल शरीर जो बंधनका हेतु है तिसको उत्पन्न करे हैं जिस शरीरमें राग करनेसे पुरुष अनर्थको प्राप्त होवे है, ऐसे शरीरको उत्पन्न करनेवाला पिता तो गौण पिता है, यथार्थ पिता तो तुमही हो. काहेतें अविद्याकर आच्छादित जो वास्तव ब्रह्मरूप शरीर है तिस ब्रह्ममें अविद्याकी आपने उपदेशसे निवृत्ति करते भये हो. यातें तुम हमारे ब्रह्मरूप वास्तव शरीरके जनक हो ॥ भाव यह है जो निरावरण ब्रह्मको निश्चय करना यह ही ब्रह्मकी उत्पत्ति जाननी और अविद्या रूप समुद्रसे ज्ञानरूप दृढ नौका करके आपने हमको पार किया है ॥ अर्थ यह है, हमारा अज्ञान निवृत्त करके ब्रह्मानंदरूप पारले किनारेको प्राप्त किया हैं ॥ तिस तुमारे उपकारकी निवृत्ति वास्ते कोई पदार्थ इस संसा

रमें हम योग्य देखते नही है; यातें हमारा आपके तांई वारंवार नमस्कार हो. हमारा ब्रह्मविद्याकें प्रवर्तक परम ऋषिकेतांई नमस्कार हो ॥ यहां दो वार कथन आदरके निमित्त है ॥ ८ ॥

॥ इति षष्ठः प्रश्नः समाप्तः ॥ ६ ॥

दोहा—प्रश्न उपनिषत इति श्री यह, षष्ठ प्रश्न भयो शांत ॥
हरि प्रकाश जिस पठेसे, मिटे जगततमभ्रांत ॥ १ ॥

॥ इति श्रीप्रश्नोपनिषद्भाषाफकाबावाहरिप्रकाशपरमहंसकृतसुकेशा पिप्पलादादिमुनिप्रश्नोत्तरसंवादषट्ट प्रश्नाः समाप्ताः ॥ ६ ॥

॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ श्रीअथर्ववेदीयमुंडकउपनिषद्भाषाफकाबावाहरिप्रकाशपरमहंसकृतः प्रारभ्यते ॥

दोहा--अथर्व वेदकी जान यह,मुंडको शाखा मीत ॥
तामें है उपनिषत् यह, मुंडकनाम पुनीत ॥ १ ॥

अब ब्रह्मविद्याको स्तुति निमित्त प्रथम उत्पत्तिके आदिमें ब्रह्मविद्याका संप्रदाय कथन करे हैं ॥

॥ मूलमंत्र ॥ ॐब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता ॥ स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठाम थर्व्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥ १ ॥

अर्थ यह है. ब्रह्मा सर्व इंद्रादिक देवनसे प्रथम अर्थात् गुणोंकर प्रधान मुख्य हुआ स्वतंत्र प्रगट होता भया ॥ सो ब्रह्मा कैसा है? जो सर्व विश्वका कर्ता है तथा सर्व भुवन अर्थात् प्रपंचका रक्षक है ॥ सो ब्रह्मा अपने ज्येष्ठ वृद्ध पुत्र अथर्व्वा नामकेतांई ब्रह्मविद्याको कथन करता भया. सो ब्रह्मविद्या कैसी है ? जो

मूलाज्ञानके नाश करनेवाली है. यातें सर्व विद्याओंको आधारभूत है ॥ और ब्रह्मविद्यासे भिन्न अन्य सर्व विद्या तो किंचित किंचित अर्थका प्रकाश करती है; परंतु यह ब्रह्मविद्या सर्व अर्थका प्रकाश करती है ॥ यातें ब्रह्मविद्याके अंतरगत अन्य सर्व विद्या हैं ॥ १ ॥ ब्रह्मा जिस ब्रह्मविद्याको अथर्व्व नाम अपने पुत्रकेतांई कथन करता भया है उसी ब्रह्मविद्याको अथर्व्वा नाम ऋषि अपने शिष्य अंगिरानाम ऋषिकेतांई कथन करता भया. तिस अंगिरानाम ऋषिका सत्यवाहा नामवाला जो भारद्वाज है सो शिष्य होता भया ॥ तिस आपने शिष्य भारद्वाजके प्रति अंगिरानाम गुरु ब्रह्मविद्याका उपदेश करता भया ॥ सो भारद्वाज अपने शिष्य अंगिरसनाम ऋषिको परावर अर्थात् परम ब्रह्मसे अश्रेष्ठ ब्रह्मदेवकर प्राप्त भई है अथवा पर तथा अपररूप सर्व विद्याके विषयमें व्याप्त होनेसे परावर है, तिस परावररूप ब्रह्मविद्याका उपदेश करता भया ॥ २ ॥ तिस अंगिरस ऋषिकी शरणको शास्त्र विधिपूर्वक दातून हस्तमें लेकर शौनक ऋषि प्राप्त होता भया. सो शौनक ऋषि बहुत अन्नदानादिक करके प्रसिद्ध महान् गृहस्थ भावको प्राप्त होता भया, सो शौनक ऋषि शिष्य होकर अंगिरस नाम अपने गुरूसे ब्रह्मविद्याको प्राप्त होता भया जिस प्रकार सो शौनक ब्रह्मविद्याको प्राप्त भया है सो आगे कहे है ॥

वह अंगिरसऋषि एककालमें प्रातःकालविषे स्नादिक नित्य कर्म करके एकांतमें स्थित होता भया ॥ कैसा सो अंगिरसऋषि था ? ॥ सर्व वेदोंका वेत्ता तथा वेदोंकर प्रतिपादित ब्रह्मविषे निष्ठावाला था और सर्व इच्छासे रहित निष्काम था सो पूर्वोक्त शुनकऋषिका पुत्र शौनकऋषि तिसे ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मश्रोत्रिय अंगिरस गुरूकी शरण्यको प्राप्त होकर इस प्रकारका प्रश्न करता भया ॥ **शौनकोवाच** ॥ हे भगवन्! किसएकके जाननेसे सर्व यह वस्तु जाणी जावे है? ॥ जब इस प्रकारका प्रश्न शौनकने किया ॥ ३ ॥ तब तिस शौनक अधिकारी मुमुक्षु पुरुषकेतांई सो अंगिरसऋषि उत्तर कहता भया ॥

अंगिरसोवाच ॥ हे शौनक! दोप्रकारकी विद्या जानने योग्य है, ऐसे प्रसिद्ध वेदार्थके जाननेवाले ब्रह्मवेत्ता कहते हैं ॥ वह दोनो विद्या कौनसी है तहां कहे हैं ॥ एक परानाम विद्या है दूसरी अपरानाम विद्या है ॥ ४ ॥

अब तिन दोनोंको स्पष्ट करके कहे हैं. हे शौनक! ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्व्ववेद, यह चार वेद, तथा शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष, यह षट् वेदके अंग इनका नाम अपरविद्या है ॥ अब परानाम विद्या कहे है ॥ जिस विद्याकरके अक्षर अर्थात् अविनाशी ब्रह्मकी प्राप्तिहो उसका परानाम विद्या है ॥ ५ ॥ सो अक्षर ब्रह्म कैसा है? ॥ तहां आगे उसके विशेषण कथन करे हैं ॥ हे शौनक! सो अक्षर ब्रह्म अदृश्य है अर्थात् ज्ञानइंद्रियोंका विषय नही है और जो अग्राह्य है अर्थात् कर्मइंद्रियोंका विषय नही है, और अगोत्र है अर्थात् वंशावलिसे रहित है और अवर्ण है अर्थात् ब्राह्मणत्वक्षत्रियत्वादिक जातिवाले ब्राह्मणक्षत्री आदिक वर्णोंसे रहित है तथा चक्षु श्रोत्रादिक ज्ञानइंद्रियोंसे रहित है तथा हस्तपादादिक कर्म इंद्रियोंसे रहित है तथा नित्य है और विभु है अर्थात् ब्रह्मासे लेकर स्थावर पर्यंत प्राणीयोंके भेदरूप करके विविधप्रकारसे होवे है यातें विभु है. यह अर्थ स्वामी शंकराचार्यजीने किया है और सर्वगत है अर्थात आकाशकी न्याई व्यापक है और सुसूक्ष्म है अर्थात् अतिशयकर सूक्ष्म है तथा अव्यय है अर्थात् घटनेवढनेरूप व्ययसे रहित अव्ययरूप है, तथा स्थावरजंगम रूप सर्वभूतनका कारण होनेसे भूतयोनि है ऐसे अक्षररूप परमात्माको साधनसंपन्न विवेकी पुरुष देख सकते हैं ॥६॥ इससे पूर्व सर्वभूतनका कारण कह्या था सो अक्षर तिन भूतनका कारण कैसे है? तहां कहे है ॥ जैसे उर्णनाभिनाम कीटविशेष सो किसी अन्यकी अपेक्षासे विना अपने शरीरसे अभिन्नहीं तांतोंको उत्पन्न करे है, फिर अपने विषे ग्रहण करके लय करलेवे है और जैसे पृथिवीसे तृणसे आदिलेकर वृक्षपर्यंत औषध या आपणे स्वरूपसे अभिन्न होवे है, तैसे अन्यकी अपेक्षासे विना प्रसिद्ध अक्षररूप परमात्मासे यह विश्व स्थावर जंगमरूप जगत् उत्पन्न होवे है ॥ ७ ॥

अब जगतकी उत्पत्तिके प्रकारको निरूपण करते हैं ॥ हे शौनक! जगतकी उत्पत्तिसे प्रथम आत्मस्वरूप ब्रह्म जगतको विषय करनेवाले ज्ञानरूप तपकर स्थूलताको प्राप्त होवे है अर्थात् जलसे पूर्ण क्षेत्रविषे अंकुरकी न्याई उत्पन्न करनेको तयार भये बीजकी न्याई ॥ और पुत्रकेतांई उत्पन्न करनेको चाहते हुए पिताकी न्याई जगतकेतांई उत्पन्न करनेको चाहता हुआ अक्षर रूप ब्रह्म हर्षसे पुष्टताको पावता भया ॥ तिस स्थूलताको प्राप्त भये ब्रह्मसे

अव्याकृतरूप अन्न उत्पन्न होता भया. यद्यपि अव्याकृत अर्थात् माया सिद्धांतमें अनादि कही है, तथापि जगत उत्पत्ति कालमें जगत् उत्पन्न करनेके संमुख अवस्थाकी प्राप्तिरूप जन्मको प्राप्त होवे है ॥ तिस जगतके रचनेकी इच्छा युक्त अवस्थावाले अव्याकृत अर्थात् मायारूप अन्नसे ब्रह्मकी ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिवाला प्राण अर्थात् हिरण्यगर्भ सूत्रात्मारूप समष्टि प्राण उत्पन्न होता भया, तिस हिरण्यगर्भ प्राणरूप महत्तत्वसे संकल्प विकल्प संशय निश्चयरूप मनन अर्थात् मन नामवाला अंतःकरणादिकका उपादान अपंचीकृत भूतनका पंचक उत्पन्न होता भया, फिर तिस संकल्पादिक रूपवाले मनसेही सत्यनामवाला आकाशादिक पंचीकृत भूतनका पंचक उत्पन्न होता भया. फिर तिस सत्यनामवाले भूतनके पंचकसे ब्रह्मांडरूप पृथ्वी आदिक सप्त लोक उत्पन्न होते भये, फिर तिन लोकनविषे मनुष्यादिक प्राणियोंके वर्णाश्रमके क्रमसे कर्म उत्पन्न होतेभये, फिर तिन निमित्तरूप कर्मविषे कर्मजन्य फलरूप अमृत उत्पन्न होताभया ॥ जबपर्यंत कर्म नाशको पावता नहीं तबपर्यंत तिनका फलभी नाशको पावता नहीं यातें सो फल अमृत कहिए है ॥ ८ ॥

भाव यह है ॥ तपकर पुष्टताको प्राप्तभये ब्रह्मसे अव्याकृतरूप अन्न उत्पन्न होताभया, फिर तिस अव्याकृतरूप अन्नसे महत्तत्त्वरूप प्राण उत्पन्न होताभया, फिर तिस महत्तत्वरूप प्राणसे सूक्ष्मरूप अपंचीकृत भूतनका पंचकरूप मन उत्पन्न होता भया, फिर तिस सूक्ष्म अपंचीकृत भूतन पंचकरूप मनसे आकाशादिक पंचीकृत भूतनका पंचकरूप सत्य उत्पन्न होता भया. फिर तिस आकाशादिक पंचीकृत स्थूलभूतनपचकरूप सत्यसे पृथवी आदिक सप्तलोकरूप ब्रह्मांड उत्पन्न होता भया, फिर तिन लोकनविषे रहनेहारे प्राणियोंके कर्म उत्पन्न होते भये, फिर तिन कर्मोंका फलरूप अमृत उत्पन्न होता भया. यह अर्थ शंकराचार्यजीने किया है. पूर्वोक्त कथन किये अर्थको संक्षेपसे यह आगेका नवम मंत्र कहे है ॥ जो पूर्वोक्त लक्षणवाला परमात्मा है, सो समानकर सर्वको जाणता है; यातें सर्वज्ञ है और विशेषकर सर्वको जाणता है यातें सर्ववित् है, और इस अक्षररूप ब्रह्मका ज्ञानमय अर्थात् सर्वज्ञतारूप तप है. ऐसे पूर्वोक्त लक्षणवाले सर्वज्ञ परमात्मासे कार्यरूप

हिरण्यगर्भ नामवाला ब्रह्म उत्पन्न होवे है और देवदत्तादिक नाम तथा श्वेत पीतादिकरूप तथा तंदुलयवादिक अन्न होवे है ॥ ९ ॥

इति श्रीमुंडकोपनिषत्प्रथममुंडकगतः प्रथमखंडः समाप्तः ॥ १ ॥

॥ शुभमस्तु ॥ ॐ ॥ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

ॐ श्रीपरमात्मनेनमः ॥

अथ श्रीमुंडकोपनिषत्प्रथममुंडकगतो द्वितीयः खंडः प्रारभ्यते ॥

पूर्व कथन करी जो अपरा नाम तथा परानाम विद्या तिन दोनोंके अधीन संसार और मुक्ति है; यातें अब उत्तर ग्रंथमें तिन दोनोंका विवेचन होवेगा ॥ अब वैराग्यकी प्राप्ति वास्ते अपरानाम विद्याका निरूपण करते हैं ॥ हे शौनक! यह वेदोक्त कर्मोंका फल अवश्य प्राप्त होवे है; यातें कर्मोंको श्रुतिने सत्यरूप करके कह्या है तिनों कर्मोंको वशिष्ठादिक ऋषि कवीश्वर वेदके मंत्रोंविषे देखते भये हैं ॥ फिर वह कर्म त्रेतायुगविषे विस्तारको प्राप्त होते भये. तिन कर्मोंको अपने वांच्छित फलकी प्राप्ति वास्ते नियमसे करे. यह कर्मही इष्ट फलकी प्राप्तिं वास्ते मार्ग है. विना कर्मके किंचित मात्रभी फल प्राप्त होवे नही ॥ काहेतें जो स्वर्गादिक फल तो सकाम कर्मसे विना प्राप्त होवे नही, और निष्काम कर्म विना चित्तशुद्धि होवे नहीं और चित्तशुद्धि विना ज्ञान होवे नहीं और ज्ञान विना मोक्ष होवे नही, यातें फलकी प्राप्ति वास्ते कर्मोंको करे॥ १॥

अब प्रथम अग्निहोत्र कर्मको दिखावे हैं ॥ काहेतें जो सर्व कर्मोंमें अग्निहोत्र कर्म प्रथम है सो अग्निहोत्र कर्म कैसे होवे है? तहां कहे है ॥ हे शौनक! जिस कालमें चारों तरफ काष्ठसे प्रज्वलित ज्वाला चलती है ॥ तिस कालमें चलती हुई ज्वाला विषे दर्शपूर्णमासरूप दोनो घृतके भागनके मध्यरूप कुंडस्थान विषे देवताका उदवासन करके आहुतियोंको डाले ॥ यह सम्यक् आहुतियोंके डालने आदिकरूप कर्मपर लोकको प्राप्तिके

अर्थ मार्ग है. श्रद्धासे जो होम किया है तिसका सम्यक् आचरण होना कठिन है ॥ काहेतें जो तिसमें विपत्तियां अर्थात् विघ्न बहुत होवे है ॥ २ ॥ सोई आगे दिखावे हैं ॥ जिस अग्निहोत्रीका अग्निहोत्र अमावास्यामें जो यज्ञ होवे है उसको दर्श कहे हैं ॥ उस दर्शनाम यज्ञसे जो रहित है तथा पूर्णमासनाम यज्ञसे रहित है तथा चातुर्मासनाम यज्ञसे जो रहित है और शरद् ऋतुके आदिमें जो नूतन अन्न करके जो कर्म किया जाता है उसको आग्रयण कहे हैं ॥ तिस आग्रयण कर्मसे जो रहित है तथा जिसके अग्निहोत्रमें अतिथिका पूजन नही किया, तथा जिसका अग्निहोत्र अग्निकालमें नही भया, तथा जिस अग्निहोत्रमें वैश्वदेव नामक कर्म नहीं भया और जिसका अग्निहोत्र विधिपूर्वक नही भया, ऐसे पुरुषका अग्निहोत्र ही सप्तलोकोंका नाश करे है ॥ तात्पर्य यह है. जो विधिपूर्वक अपने अंग सहित किये कर्मका स्वर्गादिक फल होवे है ॥ पूर्वोक्त पुरुषके विधिसहित कर्मके अभाव होनेसे स्वर्गादिक लोककी प्राप्तिरूप फल होवे नही यातें तिस पुरुषके वह सप्त लोक नाश हूएकी न्याई जानने ॥ ३ ॥ आहूतिके भक्षण वास्ते तिस अग्निके यह सप्त जिह्वा है, सो आगे कहे है ॥ काली १, कराली २, मनोजवा ३, सुलोहिता ४, सुधूम्रवर्णा ५, स्फुलिंगनी ६ और विश्वरूपी ७, यह प्रज्वलित देवीरूप सप्त जिह्वा है, अर्थात् प्रकाशक जिह्वा है तिन सप्त जिह्वासे भक्षण करे है ॥ ४ ॥ इनोंसे प्रकाशमान अग्निके जिह्वाके भेदनसे जो अग्निहोत्रि कालके अनुसार अग्निहोत्रादिकरूप कर्मको आचरण करता है, उस यजमानके तिस यजमानकी करी आहूतियोंको ग्रहण करती हुई सूर्यकी किरणरूप होकर तिन किरणरूप द्वारनसे तिस यजमानको तिस स्वर्गकेतांई प्राप्त करे है ॥ यह स्वर्ग कैसा है ? जो जिस स्वर्गमें देवताओंका पति एक इंद्र निवास करता है ॥ ५ ॥ यह आहूतियां सूर्यकी किरणोंसे स्वर्गकेतांई कैसे ले जावे है सो आगे कहे हैं ॥ वह आहूतीयां आवो आवो ऐसे बुलावती हुई तथा प्रकाशमान हुई और जैसे ब्रह्मलोक पुण्यका फलरूप है तैसे यह आपके पुण्यरूप सुकृतका फलरूप ब्रह्मलोक है अर्थात् स्वर्ग है, ऐसी प्रियवाणीको कहती हुई तथा पूजन करती हुई तिस यजमानको सूर्यकी किरणोंसे ले जावे हैं ॥ ६ ॥ और यह उपासना रहित कर्म जो है सो इतने

अर्थात् उक्त फलवाला है, और अविद्या काम तथा क्रियाका कार्य है, यातें असाररूप है तथा दुःखका कारण है ॥ ऐसे तिसकी निंदा करे है ॥ हे शौनक ! यह यज्ञरूप नौका अदृढरूप है संसार समुद्रके पार करनेको समर्थ नही है ॥ जैसे घासके पूलारूप नौकासे समुद्रके पार उतरना होवे नही तैसे तिन कर्मोंसे संसार समुद्रके पार उतरना होवे नहीं ॥ किंतु स्वर्गादिक फलरूप मत्स्यकी प्राप्तिही कर्मोंसे होवे है ॥ और संसाररूप समुद्रके पार उतरने वास्ते तो ज्ञानरूप जहाजही अपेक्षित है ॥ और यह यज्ञादिक कर्म षोडश ऋत्विक जो यज्ञ करावनेवाले ब्राह्मण और यजमान तथा यजमानकी पत्नी इनों अष्टादश कारकोंसे सिद्ध होवे हैं यातें यह अष्टादशही इन कर्मोंके आश्रय हैं ॥ इन कर्मोंको जो मूढ पुरुष श्रेयका साक्षात साधन मानते हैं वह मूढ पुरुष वारंवार जन्म जरा मृत्युकोही प्राप्त होते हैं. किंचितकाल पर्यंत स्वर्गमें स्थित होते हैं, परंतु वहां स्वर्गसे गिरे हुए घटीयंत्रकी न्याई भ्रमते रहते हैं ॥ ७ ॥ हे शौनक ! सो कर्मी पुरुष सर्वदाकाल अविद्या विषेही वर्तते हैं और वास्तवसे है तो वह अत्यंत मूढ, परन्तु आपको बुद्धिमान पंडित मानते हैं ॥ और कहते हैं हमही जानने योग्य वस्तुको जाण्या है. तथा हमही वेदोंके ज्ञाता पंडित है, ऐसे माननेवाले पुरुष जरा मरण रोगादिक अनर्थोंसे युक्त संसारके क्लेशोंविषे प्राप्त होते हैं और जैसे एक अंध पुरुषके पीछे चलनेवाले अन्य अंध पुरुष गढे कंटकादिकमें गिरकर क्लेशपीडा को अनुभव करे हैं तैसे कर्मी गुरूके पीछे चलनेवाले शिष्य सकाम कर्मोंके अनुष्ठानसे वारंवार संसार दुःखको ही अनुभव करते हैं ॥ ८ ॥

हे शौनक ! वह पूर्वोक्त मूढ अविद्या विषे बहुत ही वर्तमान हुएभी आपको कृतार्थ मानते हैं ऐसे वह मूढ बालकवत् अज्ञानी पुरुष अभिमान करते हैं जिससे ऐसे कर्मिष्ठ जन कर्मफलके रागसे होता जो है आपना तिरस्कार उसके कारणको नहीं जानते ॥ तिस कारणसे दुःखकर आतुर हुए तथा क्षीण भया है कर्मका फलरूप लोक जिसका ऐसे होकर स्वर्गलोकसे गिरते हैं ॥ ९ ॥ हे शौनक पुत्र पशु और स्त्री आदिकों विषे प्रमादको प्राप्त होनेकर जो प्रमूढ पुरुष है सो इष्ट जो यज्ञादिक श्रुतिप्रतिपादित कर्म है और पूर्त्त जो वापीकूपतडागादिकरूप स्मृति प्रतिपादित कर्म है, ताको यहही अति

शयकर पुरुषार्थका मुख्य साधन है ॥ ऐसे चिंतन करते हुए अन्य जो आत्मज्ञान नामक श्रेयका साधन है तिसको नही जानते ॥ वह मूढ पुरुष स्वर्गके ऊपर विद्यमान भोगके स्थानविषे कर्मफलको अनुभव करके फिर इस मनुष्यलोकको अथवा इस मनुष्य लोकसे अतिशय हीन तिर्यग् और नरकादिरूप लोकको शेष रहे कर्मके अनुसार पावते हैं ॥ १० ॥ हे शौनक! तिनसे विपरीत जो उपासनायुक्त वानप्रस्थ और संन्यासी और जो जितइंद्रिय विद्वान अर्थात् उपासनाप्रधान गृहस्थ भिक्षाके भोजनको करते हुए धन संग्रहस्त्रीरहित देशरूप वनविषे वर्तमान हुए आपने आश्रमके अर्थ शास्त्र विहित कर्मरूप तपको और सगुण उपासनारूप श्रद्धा इन दोनोंको सेवन करते हैं सो पुरुष सूर्यसे उपलक्षित द्वार अर्थात् उत्तरायण मार्गसे ब्रह्मलोकको जाते हैं कैसा सो ब्रह्मलोक है. जिस ब्रह्मलोकमें अमृत स्वरूप सो प्रथम भया अविनाशी स्वभाववाला अर्थात् जबतक संसार है तबतक स्थायी होनेवाला हिरण्यगर्भरूप पुरुष स्थित है ॥ यह उपासनाका फलरूप ब्रह्मलोक कह्या ॥ अब इस साध्य और साधनरूप संसारसे विरक्त पुरुषको ब्रह्मविद्या विषे अधिकार दिखावणेके निमित्त यह कहते है ॥ ११ ॥

हे शौनक! ब्राह्मण जो मुमुक्षु है तिस मुमुक्षु पुरुषने ब्रह्मलोकादिककी इच्छा कर श्रवणादिकका त्याग नही करना ॥ काहेतें जो ब्रह्मलोककी प्राप्तिविषे अनंत विघ्न हैं यातें सर्व लोकोंसे वैराग्यको प्राप्त होवे और यह विचार करे जो जो वस्तु कर्मोंकर जन्य होवे है सो सो वस्तु अवश्य नाश होवे है; जैसे यह पुरुष क्षेत्र विषे अन्नादिकको कर्मकर उत्पन्न करे है, फिर तिनकी भोगकर निवृत्ति होवे है; तैसे यह लोक तथा परलोक दोनो कर्मकर रचित होनेसे सर्वही विनाशी है ॥ ऐसे अनेक दृष्टांतोंकर सर्व लोकनको अनित्य जानकर वैराग्यको प्राप्त होवे और यह विचार करे जो कर्मोंकर नित्य मोक्षकी प्राप्ति होवे नहीं ॥ काहेतें जो संसार विषे जो पदार्थ कर्मजन्य है सो सर्व अनित्यही है ॥ ऐसे विचारकर तिस अक्षर ब्रह्मस्वरूप आत्माकी एकताके जाननेवास्ते समित्पाणि हुआ ब्रह्मश्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी शरणको प्राप्त होवे भाव यह है जो केवल वेदके अर्थको जानता हो उसको ब्रह्मश्रोत्रिय कहे है और जिसकी केवल ब्रह्मविषे निष्ठा हो अर्थात् स्थिति हो उसको ब्रह्मनिष्ठ

कहे हैं ॥ तात्पर्य यह है ॥ जो जिसको हस्तामलक ब्रह्मात्मस्वरूपका प्रत्यक्ष ज्ञान हो तथा अधीत वेद हो ऐसे गुरूकी शरणको प्राप्त होवे ॥ १२ ॥ हे शौनक! ऐसे शरणको प्राप्त हुआ सम्यक् एकाग्र चित्तवाला तथा संसारके भोगोंसे विरक्त हुआ जो मुमुक्षु अधिकारी पुरुष है सो विद्वान गुरु तिस अधिकारी केतांई जिसकर अक्षर सत्यपुरुषरूप परमात्माका ज्ञान हो तिस ब्रह्मविद्याको वास्तवस्वरूपसे यथावत उपदेश करे ॥ १३ ॥

॥ इति श्रीमुंडकोपनिषद्गतप्रथममुंडकस्य द्वितीयं खंडं समाप्तम् ॥

॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

॥ इति प्रथममुंडकं समाप्तम् ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ श्रीमुंडकोपनिषद्गतद्वितीय मुंडकप्रथमखंडः प्रारभ्यते ॥
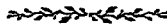
यहांतक अपरानाम विद्याका सर्व कार्य कहा; अब सो अपरानाम विद्याका कार्यरूप संसार जिस सारवाला है तथा जिस अक्षररूप मूलसे उपजे है और जिसविषे लीन होवे है सो यह पुरुषनामवाला अक्षर सत्यरूप है और परानाम विद्याका विषय है; यातें अब तिसका व्याख्यान करते हैं ॥ हे शौनक! कर्मोंका फल तो किंचितूकाल सत्य है, सर्वदा काल सत्य नहीं, और सो यह अक्षर पुरुष सर्वदा काल परमार्थक सत्यरूप है तिस सत्यरूप अक्षरसे यह संपूर्ण चराचर जगत उत्पन्न होवे है ॥ हे सोम्य! जैसे प्रकाशमान अग्निसे प्रकाशरूपवाली अनंतही विस्फुलिंग अर्थात् चिणगारीयां उत्पन्न होवे है, तैसे सत्यरूप अक्षरसे जडचैतन्यरूप सर्व जगत् उत्पन्न होकर फिर तिस अक्षरमेंही लय भावको प्राप्त होवे है यातें तिस अक्षरपुरुषसे किंचित्‌भी भिन्न नही ॥१॥ ऐसे एक अक्षर पुरुषके जाननेसे सर्वका ज्ञान श्रुतिमें विवक्षित है ॥ जगतके

नामरूपका ज्ञान होवे है इस अभिप्रायसे एकके ज्ञानसे सर्वका ज्ञान होवे है यह श्रुतिमें विवक्षित नहीं ॥ जैसे एक मृत्तिकाके कार्य ज्ञानसे सब मृत्तिकाके घटादिकका ज्ञान होवे है अर्थात् सर्व घटादिक मृत्तिकाके कार्य मृत्तिकारूप है ऐसा ज्ञान होवे है तैसे एक अक्षरके जाननेसे सर्व जगत् तिसकी सत्तासे भिन्न नही ॥ यह तात्पर्य है ॥ हे शौनक ! किस एकके ज्ञानसे सर्वका ज्ञान होवे है, यह जो तुमने पूर्व पूछा था सो यह अक्षररूप पुरुष है ॥ हे शौनक ! वह अक्षर आत्मा कैसा है ॥ स्वयंज्योतिरूप होनेसे दिव्यरूप है अर्थात् प्रकाशमान है और जिससे सर्वमूर्तियोंसे रहित है यांते अमूर्त है अर्थात् आकाररहित है और शरीररूप पुरियोंमें स्थित है यांतें पुरुषरूप है और सो अक्षर पुरुष बाह्य भीतरके देशाकर सहित वर्तता है और जिससे जन्मरहित है यातें सो अक्षर अज है और जिससे क्रिया शक्तिवाला प्राणवायु तथा संकल्पात्मक मन विद्यमान नही है यातें अप्राण तथा अमनरूप है और सर्वउपाधियोंसे रहित अद्वैतरूप है यातें शुद्ध है और कार्यसे श्रेष्ठ जो अव्यक्तरूप अक्षर है तिस अक्षर रूपसे पर अर्थात् श्रेष्ठ है ॥ और यह प्राणादिक सर्व ब्रह्मसे उत्पन्न होवे है, इस निमित्तसे ब्रह्म अद्वितीय है काहेतें जो स्वाभाविक भेद तो ब्रह्मविषे नहीं है. भेदके सिद्ध करनेहारे केवल उपाधिरूप मन प्राणादिक हैं ॥ वह मन प्राणादिक उपाधिरूप इस परमात्मासे उत्पन्न हुए हैं यांतें वास्तवसे ब्रह्मविषे उपाधिका भेदभी नहीं है इस अर्थके सिद्ध करणेवास्ते ब्रह्मसे प्राणादिककी उत्पत्ति कहे हैं ॥ २ ॥ इस ब्रह्मरूप आत्मासे प्राण उत्पन्न होवे है और मन तथा सर्वइंद्रिय तथा आकाशवायु अग्नि जल तथा चराचरविश्वके धारण करनेवाली पृथिवी यह पंचभूत आपणे गुणोंसहित उत्पन्न होवे है ॥३॥

हे शौनक ! इसी अक्षरपुरुषसे विराट् उत्पन्न होवे है; अब तिस विराट्के अवयव निरूपण करते हैं॥हे सौम्य! अग्नि अर्थात् स्वर्गलोक जिस विराट् पुरुषका मस्तक है और चंद्रसूर्य जिस विराट् पुरुषके दो नेत्र हैं और दश दिशा जिस के श्रोत्र अर्थात् कर्ण हैं और प्रसिद्ध विस्तृत चार वेद जिस विराट् पुरुषका वाक्य अर्थात वाणी है और वायु जिसका प्राण है और समस्त जगत् इस विराट्का हृदय है और पृथ्वी जिसका पाद है और यह ही विराट्रूप सर्वके अंतर सर्वभूतनका आत्मा है ॥ और पंच अग्निरूप द्वारसे जो प्रजा व्यवहार

करे है ॥ सो अग्निभी तिसही पुरुषसे उत्पन्न होवे है ऐसे अब आगेके मंत्रमें कथन होवेगा ॥ ४ ॥ हे शौनक ! तिस परम पुरुषसेही स्वर्गलोकरूप अग्नि उत्पन्न होवे है ॥ जिस स्वर्गलोकरूप अग्निका समिध सूर्य है; जिससे सूर्यकर स्वर्गलोक प्रकाशता है, यातें ताका सूर्य समिध हैं और तिस स्वर्गरूप अग्निसे उत्पन्न भये चंद्रमासे मेघरूप दूसरा अग्नि उत्पन्न होवे है तिससे पृथिवी विषे औषधियां उत्पन्न होवे हैं. पुरुषरूप अग्निविषे हवन करी हुई औषधियोंसे पुरुष रूप अग्नि जो है सो स्त्रीरूप अग्निविषे वीर्यको सिंचन करेहै. ऐसे क्रमकर परम ब्रह्मरूप पुरुषसे बहुत प्रकारकी ब्राह्मणादिक प्रजा उत्पन्न होवेहै किंवः कर्मके साधन और फल तिसही पुरुषसे उत्पन्न होवे है ऐसे अब आगेके मंत्रविषे निरूपण करते हैं ॥ ५ ॥

हे शौनक ! तिस अक्षर परमात्मासे ऋग् यजुस् सामवेद उत्पन्न होते भये तथा यज्ञोपवीत मुञ्जबंधनादिक कर्मके नियमरूप दीक्षा और अग्निहोत्रादिक जो यज्ञ तथा यूपसहित जो अन्य यज्ञ है तिनको ऋतु कहे हैं सो यूपरहित यज्ञ तथा यूपसहित ऋतु यह सर्व तिस परम पुरुषसे उत्पन्न होतेभये ॥ और गौस्वर्णादिक दक्षणा और संवत्सरादिक काल तथा यज्ञ करता यजमान तथा कर्मोंके फलरूप लोक उत्पन्न होतेभये ॥ जिन सर्व लोकनमें चंद्र सूर्य विचरते हैं तिन सर्वलोकनकी परमात्मासे उत्पत्ति कथन करी ॥ अब अन्य पदार्थोंकी उत्पति निरूपण करते हैं ॥ ६ ॥ हे शौनक ! तिस पुरुषरूप परमात्मासे कर्मके अंगभूत वस्तु आदिक गणोंके भेदसे बहुत प्रकारके देव सम्यक् उत्पन्न होते भये ॥ तथा साध्यनाम देवविशेष और कर्मके अधिकारी मनुष्य और ग्राम तथा वनके निवासी पशु और पक्षी उत्पन्न होते भये और मनुष्यादिकोंका जीवन प्राण और अपान तथा हवनरूप अर्थवाले तंदुल और यव तथा कर्मका अंग पुरुषके संस्कारस्वरूप और स्वतंत्र फलका साधनरूप तप और जिसके पूर्व होते सर्वपुरुषार्थनके साधनोंका कारणरूप चित्तकी प्रसन्नता होवे है, ऐसी आस्तिकभावकी बुद्धिरूप श्रद्धा और पीडाके न करणेवाला जूठरहित यथार्थ अर्थका कथनरूप सत्य भाषण और मैथुनका त्यागरूप ब्रह्मचर्य और कर्तव्यतारूप विधि यह सर्व उत्पन्न होते भये ॥ ७ ॥

तिसही पुरुषसे मस्तकमें स्थित जो दो श्रोत्र दो नेत्र दो नासिका एक

मुख यह सप्त इंद्रियरूप प्राण और तिन प्राणोंकी अपने अपने विषयके प्रकाश करनेरूप सप्त ज्वाला है और सप्तविषयरूप सप्त सामिध हैं जिससे विषयोंकर यह इंद्रियरूप प्राण बाहिर प्रवृत्त होवे है ॥ यातें विषय इनके सामिध है और सप्तविषयोंके विज्ञानरूप सप्त होम होवे है और सप्तगोलकरूप रहणे योग्य यह सप्त लोक है तिनमें सप्त प्राणरूप इंद्रिय विचरते हैं वह प्राण कैसे हैं ॥ जो निद्राकालमें शरीररूप अथवा हृदयरूप गुहाविषे रहते हैं ॥ परमेश्वरने प्राणियोंके भेदकेप्रति सप्त सप्त यह स्थापन किए हैं ॥ ८ ॥ हे शौनक ! इस पुरुषसे सप्त समुद्र और सर्वहिमाचलादिक पर्वत और बहुत रूपवाली तथा चलनेवाली गंगाआदिक नदियां तथा तंदुलयवादिक औषधियां और मधुरादिक षड्रस उत्पन्न होतेभये ॥ जिस रससे पंचभूतनकर आवता हुआ अंतरात्मा अर्थात् लिंगशरीर स्थित होवेहै ॥ ९ ॥ हे सोम्य ! यह सर्व जगत् जिसकारणकर पुरुषरूप परमात्मासे उत्पन्न हुआ है इसी निमित्तसे इस अक्षररूप परमात्मासे किंचितभी भिन्न नहीं ॥ यह पुरुषही सर्वविश्वरूप है और अग्निहोत्रादिक कर्म तथा तिस कर्मका किया ज्ञानमय तप और अन्य जो यह सर्व है सो जिससे ब्रह्मका कार्य है, यातें ब्रह्मसे भिन्न नहीं; सो ब्रह्मही परम अमृतरूप है; तातें हे सोम्य ! सर्वप्राणियोंके हृदयरूप गुहाविषे स्थित परम अमृतरूप इस ब्रह्मको जो यह मैंही हूं ऐसे जो जाणता है सो ऐसे विज्ञानसे यहां जीवता हुआ ही अविद्याके ग्रंथकीन्याई दृढ भई अविद्याकी वासनाको नाश करता है ऐसे एकके ज्ञानसे सर्वका ज्ञान कैसे होवेहै ? इस प्रश्नके अनेक समाधान करके अब ब्रह्मकी प्राप्तिवास्ते आगे साधनोंको कथन करते हैं ॥ १० ॥

॥ इति श्रीमुंडकोपनिद्गतद्वितीयमुंडकस्य प्रथमं खंडं समाप्तम् ॥

॥ शुभमस्तु ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ श्रीमुंडकोपनिषद्गतद्वितीयमुंडकस्य द्वितीयखंडः प्रारभ्यते ॥
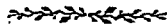
अरूप और सत्यस्वरूप जो अक्षर ब्रह्म है सो किस प्रकारसे जानने-योग्य है ? तहां कहे हैं ॥ जो ब्रह्म प्रकाशरूप है और सम्यक् स्थित है और श्रवण दर्शनादिक प्रकारोंसे हृदयरूप गुहाविषे विचरनेवाला होनेसे गुहाचर ऐसे नामवाला प्रख्यात है ॥ और सर्वसे बड़ा होनेसे महत् है और सर्वका आश्रय होनेसे सर्वको प्राप्त होने योग्य है. यातें पदरूप है इस कारणसे महत्पदरूप है ॥ सो महत्पदरूप कैसे है ? तहां कहे हैं ॥ जो चलनेवाला पक्षी आदिक तथा जो प्राणापानादिक प्राणोंवाला मनुष्य पशुआदिक और जो निमेषादिक क्रियावाला है यह सर्व इस ब्रह्मविषे रथचक्रकी नाभिमें अराकी न्याई प्रवेशको पाया है ॥ ऐसा जो आश्रय है तिसको हे शिष्य ! तुम सर्व जाणो ॥ सो ब्रह्म तुमारा आत्मारूप है और सत्असत्स्वरूप है ॥ काहेतें जो सत् अर्थात् स्थूल और असत् अर्थात् सूक्ष्म प्रपंच तिस ब्रह्मसे भिन्न न होनेसे ॥ यातें सत्असत्रूप सोई ब्रह्म है और सर्व अधिकारियों करके प्रार्थना करने योग्य है ॥ और प्रजाके विज्ञानसे पर अर्थात् न्यारा है. भाव यह है कि लौकिक ज्ञानका अविषय है और सर्व श्रेष्ठ पदार्थोंसे अतिशयकरके श्रेष्ठ है जिससे ऐसा है ॥ यातें हे सोम्य ! तिसविषे चित्तको एकाग्र कर ॥ १ ॥ किंचः ॥ जो ब्रह्म अपने प्रकाशसे सूर्यादिकोंको प्रकाशता है यातें प्रकाशमान है और जो सूक्ष्मपरमाणुओंसे भी अतिशयकरसूक्ष्म है और पृथ्वी आदिक स्थूल वस्तुवोंसे अतिशय कर स्थूल है ॥ जिस विषे पृथ्वी आदिक लोक और तिनमें रहनेवाले मनुष्यादिक लोकके निवासी, वह सर्व स्थित हैं सो यह सर्वका आश्रय अक्षर ब्रह्म है सो प्राणरूप है और वाक्मनादिकरूप है और जो प्राणादिकके भीतर चैतन्यरूप अक्षर है सोई सत्य है तथा सोई अमृत अर्थात् अविनाशीरूप है,

सोई वेधने योग्य है अर्थात् मनसे ताडने योग्य है ॥ तात्पर्य यह है. जो तिस विषे मनकी समाधानता करनी योग्य है ॥ जिससे ऐसे है याते हे सोम्य! वेधन कर अर्थात् तिस अक्षर ब्रह्मविषे चित्त एकाग्र कर ॥ २ ॥

कैसे वेधनेको योग्य है तहां कहे हैं ॥ हे शौनक! जैसे कोई शूरवीर पुरुषसे बाणको चलाकर मृगादिक लक्ष्य वस्तुको वेधन करे है तैसे उपनिषत् विषे प्रसिद्ध धनुषरूप महाअस्त्रको लेकर निरंतर ध्यानसे तीक्ष्ण अर्थात् संस्कार युक्त किए बाणको संधान करना ॥ जिससे यहां हस्तसे धनुष खेंचना बने नहीं इस कारणसे तिस अक्षर ब्रह्मविषे निवृत्त करके लक्ष्यविषे लेआवनेरूप धनुषका आकर्षण करके हे सोम्य! तिस पूर्वोक्त लक्षणवाले अक्षररूप लक्ष्यको वेधन कर अर्थात् लक्ष्यविषे चित्तको एकाग्र कर ॥ ३ ॥ अब पूर्वोक्त धनुषादिक को प्रसिद्ध करके कहे हैं ॥ हे शौनक! उपनिषत्विषे प्रसिद्ध प्रणव अर्थात् ॐकाररूप धनुष है ॥ जैसे धनुष जो है सो निशान अर्थात् लक्ष्यविषे बाणके प्रवेशका कारण भावनावाले चित्तसे इंद्रियसहित अंतःकरणको अपने विषयोंसे ॐकार है ॥ जैसे अभ्यास किये धनुषसे संस्कारयुक्त जो तिस धनुषरूप आश्रयवाला हुआ बाण लक्ष्य विषे स्थित होवे है तैसे जिससे अभ्यास किए ॐकारसे संस्कार युक्त और तिस ॐकाररूप आश्रयवाला हुआ आत्मा प्रतिबंधके अभावसे अर्थात् भूतभविष्यत् वर्तमानके प्रतिबंध तथा संशय विपर्ययसे रहित शोधित किया हुआ आत्मा लक्ष्यविषे स्थित होवे है, यातें ॐकार धनुषवत् है . और शोधित आत्मा बाणवत् है अर्थात् उपाधिकर लक्षित परमात्माही, जलगत सूर्यके प्रतिबिंबादिककी न्याई इस देहविषे सर्व बुद्धिकी वृत्तियोंका साक्षी होकर प्रवेशको पाया है सो बाणकी न्याई है, और आत्माके अर्थ विषयोंकी प्राप्तिकी तृष्णारूप प्रमादसे रहित और सर्वसे विरक्त तथा जितेंद्रिय और एकाग्र चित्तसे वेधनेको योग्य जो ब्रह्म सो लक्ष्य कहिए है. तातें तिस वेधनसे पीछे बाणकी न्याई तन्मय अर्थात् तिसका रूप होवे है जैसे बाणको लक्ष्यके साथ एकरूपतामय फल होवे है ॥ तैसे देहादिक अनात्माकार वृत्तियोंके तिरस्कारसे अक्षरके साथ एकरूपतामय फलको संपादन करना ॥ ४ ॥

अक्षरको दुखसे जानने योग्य होनेसे तिसका बारबार कथन सुखसे जाननेके अर्थ है, इस कारणसे तिसको फिर फिर कहे है ॥ हे शौनक! जिस अक्षर पुरुषविषे स्वर्ग पृथ्वी और अंतरिक्ष अर्थात् आकाशने प्रवेशको पाया है, और अन्य सर्व इंद्रियोंसहित मनने प्रवेशको जिसविषे पाया है, तिस एक अर्थात् अद्वैतरूप तुमारे तथा सर्वप्राणियोंके प्रत्यक्स्वरूप आत्माको जानो ॥ और तिस आत्माको जाणकर अन्य सर्व विद्यारूप वाणियोंको और तिन जानने योग्य साधनसहित सर्व कर्मोंको छोडो अर्थात् त्यागो ॥ यह आत्माका ज्ञान अमृत अर्थात् मोक्षका सेतु अर्थात् पुल है ॥ ५ ॥ किंच ॥ जैसे रथचक्रकी नाभिविषे अरा नामक टेढा काष्ठ होवे हैं ऐसे जिस हृदयविषे सर्व तर्फसे देहमें व्यापनेवाली प्रसिद्ध नाडियां सम्यक् प्रवेशको प्राप्त भई है, तिस हृदयविषे बुद्धिकी वृत्तियोंका साक्षीरूप सो यह आत्मा हृदयके मध्यविषे देखता श्रवण गमन करता हुआ वर्तता है और क्रोध हर्षादिक अनेक प्रकारका हुएकीन्याई होवे है, तिस आत्माको ॐ इस प्रकारसे ॐकाररूप आश्रयवाले हुए शास्त्रोक्त कल्पनासे ध्यान करे ॥ अब अधिकारी शिष्यको ब्रह्मकी प्राप्तिअर्थ आचार्य कहेहैं हे शिष्य! तुमारेको मैने कथन किया जो यह संसाररूप समुद्रको उल्लंघकर प्राप्त योग्य परविद्याका विषय है ॥ सो तुमारेको मेरे उपदेशसे अविद्यारूप तमका पर पार है ॥ तिसके अर्थ अर्थात् अविद्यारहित ब्रह्मात्मस्वरूपकी प्राप्तिनिमित्त निर्विघ्न जैसे होवे तैसे होवें ॥ ६ ॥

सो आत्मा किसविषे वर्तता है सो कहे है ॥ हे शौनक! यह परमात्मा सर्व पदार्थोंको समानरूपसे तथा विशेषरूपसे जाणे है और जिसकी यह प्रसिद्ध पृथ्वी विषे महिमा अर्थात् विभूति है वह कौन है? तहां कहेहै ॥ स्वर्ग और पृथ्वी यह दोनो जिसकी आज्ञाविषे निरंतर स्थित हैं, सूर्य चंद्र यह दोनो जिसकी आज्ञाकर भयवान हुए भ्रमते रहते हैं, जिसकी आज्ञाविषे संवत्सरादिक काल स्थित है, जिसकी आज्ञाविषे पर्वत नदीयां और समुद्र अपने देशको उल्लंघकर वर्तते नही और स्थावर जंगम यह सर्व प्राणी जिसकी आज्ञामें स्थित हैं ऐसा जिसका पृथ्वीलोकमें महिमा है सो यह आत्मा सर्वबुद्धिकी वृत्तियोंके प्रकाशक हृदयरूप ब्रह्मपुरमें विद्यमान आका-

शविषे स्थित हुएकी न्याई भासता है और मनरूप उपाधिवाला होनेसे मनोमय हुआ यह आत्मा प्राण और शरीरको लेजानेवाला है अर्थात् स्थूल शरीरसे अन्य सूक्ष्म शरीरको लेजाता है और दिन दिनमें वडनेघटनेवाले भोजन किये अन्नके परिणाममय पिंडरूप अन्नविषे हृदयकमलके छिद्रसे अपनी उपाधिरूप बुद्धिको सम्यक् स्थापन करके स्थित भया है, जिससे बुद्धिकी स्थितिही आत्माकी स्थिति है ॥ यातें यहां बुद्धिको स्थापन करके अन्नविषे स्थित होता भया, ऐसे कहा, तिस आत्मतत्वको धीर जो विवेकी पुरुष है सो साधनसंपन्न हुए शास्त्र गुरुके उपदेशसे और शम दम ध्यान तथा वैराग्यसे उद्भव भये श्रेष्ठ ज्ञानसे सर्वतर्फसे पूर्ण जानते हैं तिनको जो सर्व अनर्थ दुःखश्रमसे रहित आनंदरूप और अमृतरूप हुआ अपने आपमें सर्वदा विशेषकर भासता है ॥ ७ ॥ अब पूर्वोक्त ब्रह्मज्ञानका यह फल कहेहैं ॥ हे शौनक ! कारणरूपसे पर और कार्यरूपसे अवर अर्थात् कारण कार्यरूप परावर जिस आत्मासे भिन्न नही है तिस परमात्माके साक्षातकार हुए, सो ब्रह्म मैं हूं ऐसे साक्षात् हुए तिस ज्ञानी पुरुषके अज्ञान निवृत्त हुए देहादिकोंविषे आत्मत्वबुद्धिरूप हृदयग्रंथि निवृत्त होवेहै और मैं देह हूं अथवा देहसे भिन्न हूं और कर्ता भोक्ता हूं अथवा अकर्ता अभोक्ता हूं इत्यादिक संशय सर्व निवृत्त होजावे हैं और संचित आगामी कर्म सर्वनाश होजातेहैं ॥ कथन कीए अर्थको संक्षेपसे कहनेवाले आगेके तीन मंत्र हैं सो निरूपण करे हैं ॥ ८ ॥

तल्वारके कोशकी न्याई आत्मस्वरूपकी प्राप्तिका स्थान होनेसे और सर्वके भीतर होनेसे पर जो बुद्धिविषे ज्ञानरूप प्रकाशमय कोश है तिसविषे अविद्या आदिक सर्व रज अर्थात् मलसे रहित और सर्वसे बडा होनेसे और सर्वका आत्मा होनेसे ब्रह्मरूप और षोडशकलारूप अवयवोंसे रहित होनेकर निष्कल है, इसीसे सो शुद्धरूप है और अग्निआदिक ज्योतियोंका ज्योतिरूप है ॥ जो आत्मवेत्ता विवेकी पुरुष है सो तिस साक्षी आत्माको आत्माकारवृत्तिसे जानते हैं ॥ अन्य बाह्य पदार्थाकारवृत्तिवाले पुरुष नहीं जानते ॥ ९ ॥ सो ब्रह्म ज्योतियोंका ज्योतिरूप कैसे है तहां कहे हैं ॥ तिस आपणे आत्मारूप ब्रह्मविषे सर्वका प्रकाशक सूर्यभी भासता नही अर्थात प्रकाशता नही ॥ काहेतें जो न्यून प्रकाशवाला तथा लौकिक प्रकाशवाला होनेसे और चंद्रमा तथा

तारागणभी नही भासता और जब तिस ब्रह्मविषे यह विजलीयां भासती नही हैं, तब यह लोकनका विषय अग्नि सो कहांसे भासेगा ॥ बहुत कहनेसे क्या है ॥ जो यह जगत् भासता है सो सर्व तिसही परमेश्वरके स्वरूपसे प्रकाशरूप होनेसे भासमान हुए पीछे भासता है और तिसही परमात्माके प्रकाशसे सर्व यह सूर्यादिक जगत् भासता है ॥ १० ॥ जो सर्व ज्योतियोंका ज्योतिरूप ब्रह्म है सो सत्य है और जो यह अविद्यायुक्त दृष्टिवाले पुरुषोंको अग्रभागविषे भासमान वस्तु है सो पूर्वोक्त लक्षणवाला अमृतरूप ब्रह्महीं है, तैसे पीछेभी ब्रह्महीं है और दक्षिणतर्फसे तथा उत्तरतर्फ ब्रह्मही है, तैसे नीचे भी ब्रह्मही है और ऊँचेभी ब्रह्मही है ॥ और कार्यरूप आकारसे पसऱ्या हुआ नामरूपवाला भासमान जो वस्तु सो ब्रह्मही है ॥ बहुत कहनेसे क्या है ॥ यह समस्त जगत् अत्यंत श्रेष्ठ ब्रह्म है; ब्रह्मसे भिन्न जो प्रतीत होता है सो सर्व रज्जुविषे सर्पके प्रतीतिकी न्याई अविद्यामात्र है एक ब्रह्मही परमार्थसे सत्यरूप है यह वेदकी आज्ञा है ॥ ११ ॥

॥ इति श्रीमुंडकोपनिषद्गतद्वितीयमुंडकस्य द्वितीयं खंडं समाप्तम् ॥

॥ इति द्वितीयं मुंडकं समाप्तम् ॥

॥ शुभमस्तु ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ श्रीमुंडकोपनिषद्गततृतीयमुंडकस्य प्रथमः खंडः प्रारभ्यते ॥

जिस परानाम विद्यासे अक्षर पुरुष प्राप्त होवे है और जिसकी प्राप्तिसे हृदयग्रंथिआदिक संसारके कारणका अत्यंत नाश होवे है ऐसी जो परा नाम विद्या है सो कथन करी और अक्षरके दर्शनका उपायभूत जो योग्य है ॥ सो धनुषके ग्रहणकी कल्पनासे कथन किया ॥ अब तिस ज्ञानके सहकारी सत्यादिक साधन कहनेको योग्य है, तिसकेवास्ते इस उत्तर ग्रंथका आरंभ है तहां तत्त्ववस्तुको दुःखसे

जाननेके योग्य होनेसे पूर्वतत्त्वका निर्धारण कियाभी फिर मुख्यता कर अन्यप्रकारसे किये हैं ॥ तहां सूत्ररूप जो प्रथम मंत्र है सो परमार्थरूप वस्तुके निश्चय अर्थ आरंभ करिए हैं. जीव और ईश्वर यह दोनो शोभायुक्त गमनवाले होनेसें अथवा पक्षीके समान होनेसे अर्थात् वृक्षको आश्रय करनेसे है ॥ वह सर्वदा साथही इकट्ठे वर्तमान हैं और जिससे तुल्य प्रख्यातिवाले हैं और तुल्य प्रकाशके कारण है यातें परस्पर सखा है ऐसे हुए दोनोंके ज्ञानका स्थान होनेसे एक जो वृक्षकी न्याई छेदनरूप धर्मकी मुख्यतासे शरीररूप वृक्ष है तिसके ताई एक वृक्षके प्रति फलके उपभोग अर्थ दोनों पक्षीकी न्याई आलिंगन अर्थात् मिलाप करते भये. अर्थ यह शरीररूप वृक्ष ऊंचे अर्थात् श्रेष्ठ ब्रह्मरूप मूलवाला है और नीचे प्राणादिक शाखावाला है और अपनी स्थितिके नियमसे रहित होनेकर अश्वत्थ है, और सर्व प्राणियोंके कर्मका आश्रय है; ताको पक्षियोंकी न्याई अविद्या काम और कर्मकी वासनाके आश्रय लिंग शरीररूप उपाधिवाला आत्मा अर्थात् जीव और ईश्वर यह दोनो मिलते भये ॥ मिलेहुए तिन दोनोके मध्य एक जो लिंग शरीररूप उपाधिवाला क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीव हैं सो तो वृक्षकेतांई आश्रय करता हुआ कर्मजन्य सुखदुखरूप फलका स्वाद अविवेकसे लेता है अर्थात् भोक्ता है ॥ और अन्य जो नित्य शुद्ध नित्य मुक्त स्वभावाला सर्वज्ञ शुद्ध सतोगुणप्रधान मायाउपाधिवाला ईश्वर है सो भोक्ता नहीं ॥ जिससे यह ईश्वर नित्य साक्षीरूपसे अपनी सत्तामात्रसे भोग्य और भोक्ताका प्रेरक है, इस कारणसे तो नही भोक्ता हुआ वृक्षसे न्यारा होकर केवल देखता हीहै ॥ तिसका दर्शनमात्रसे राजाकी न्याई प्रेरकपणा सिद्ध भया ॥ १ ॥ ऐसे यह जीव शरीररूप वृक्षपर कर्मोंके फल सुखदुखका अपनेको भोक्ता मानता हुआ शोकको प्राप्त होवे है. कर्मोंके अनुसार प्राप्त भये जो दुःख तिनके दूर करनेमें असमर्थ हुआ अनंत संतापोंको प्राप्त होवे है ॥ हा ! हा ! कष्ट है ! मैं अतिशय कर दुखी हूं, मेरा रक्षक कौन होवैगा ? इस प्रकार बहुत संतापको प्राप्त होवे है. ऐसे अपने सच्चिदानंद वास्तवरूपको न जानकर बडे क्लेशको अनुभव करे है ॥ और जबी निष्काम कर्मसे चित्त शुद्ध हुए यह जीव शुद्ध ब्रह्मको अपनारूप जानकर ध्यान करे है और तिस ध्यानसे यह जाने है ॥ जो मैं नित्य शुद्ध मुक्त स्वभाव परमानंद अद्वितीय स्वरूप हूं और सर्व

भूतोंमें साक्षीरूपसे मैं ही स्थित हूं और मैं ही सर्वरूप हूं ॥ इस प्रकार जब आपको सर्वरूप जानता हुआ इसकी ऐसी महिमा अर्थात् विभूतिको ध्यावता हुआ देखता है तब वीतशोक होवे अर्थात् शोकसे रहित होवे है ॥ २ ॥ और अन्य मंत्रभी इसी अर्थको विस्तारसे कथन करे है ॥ जिसकाल विषे विद्वान् अर्थात् साधक पुरुष स्वयं ज्योति स्वभावाले सर्व जगत्के कर्ता तथा हिरण्यगर्भके कारण ईश्वररूप पुरुषको देखता है तब देखनेवाला विद्वान् बंधनरूप पुण्य पापमय कर्मको मूलसहित नाश करके निरंजन अर्थात् निर्लेप हुआ परम अर्थात् सर्वसे अधिक अद्वैतरूप समभावको पावता हैं ॥ ३ ॥

जो यह प्राणका प्राण परमेश्वर सर्वभूतोंसे अर्थात् सर्वभूतोंमें स्थित सर्वात्मा हुआ अनेक प्रकारका भासता है ॥ ऐसे सर्वभूतोंमें स्थित परमेश्वरको जो विद्वान् हुआ यह मैं हूं ॥ ऐसे साक्षात् करता है सो ऐसे अभेद साक्षात्कार करनेवाला विद्वान् अतिवादी नही होवे है अर्थात् अन्यके मतको खंडन करके स्वमतके स्थापन करनेवालेका नाम अतिवादी है ॥ विवेकी जो जीवन्मुक्त है तिसको भेदकी प्रतीति होवे नहीं इसकारणसे किसीके मतका खंडन करता नहीं यातें अतिवादी होवे नहीं अथवा जो पुरुष ऐसे प्राणके प्राणरूप आत्माको साक्षात जानता है सो अतिवादी नही होवे हैं ॥ काहेतें जब सर्वही आत्मा है तब यह विद्वान् किसको उल्लंघन करके कहे. जिसको तो श्रेष्ठ अश्रेष्ठ अन्य वस्तु देखनेमें आवे है सो ताको उलंघन करके कहता है॥यह विद्वान् तो आपसे भिन्न अन्यको देखता नहीं अन्यको श्रवण नही करता अन्यको जानता नहीं याते अतिवादी नहीं होवे है ॥ किंवः ॥ यह विद्वान् आत्मा विषेही है क्रीडा जिसकी अन्य पुत्रदाराआदिक विषे नहीं सो आत्मक्रीडा कहिए है तथा आत्माविषे ही है प्रीति जिसकी सो आत्मरति कहिए है तथा ज्ञान ध्यान और वैराग्यादिक है क्रिया जिसकी सो क्रियावान् कहिए है ॥ जो ऐसे लक्षणवाला अतिवादरहित आत्मरति और क्रियावान ब्रह्मनिष्ठ है सो यह सर्व ब्रह्मवेत्ताओंके मध्य वरिष्ठ अर्थात् मुख्य हैं ॥ ४ ॥

अब तिस ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिवास्तें साधनोंको कहेहैं हे शौनक ! मिथ्यावचनका त्यागरूप जो सत्य है और मनसहित नेत्रादिक इंद्रियोंका निरोधरूप

जो तप है तथा यथार्थ ब्रह्मबोधरूप जो ज्ञान है तथा उपस्थ इंद्रियका संयमरूप जो ब्रह्मचर्य है इन दृढ साधनोंकर ब्रह्मात्माकी प्राप्ति होवे है ॥ जिस आत्माको संन्यासी रागद्वेषादिक दोषरहित हुए अपने अंतःकरणमें साक्षात् करे हैं, तिस शुद्धस्वप्रकाशरूप आत्माकी प्राप्ति सत्यादिक साधनोंसे होवे हैं ॥ ५ ॥ अब आगे सत्यसंभाषणकी अन्य साधनोंसे श्रेष्ठता कहे है ॥ हे शौनक ! जो पुरुष सत्यवक्ता है उस पुरुषकी जय होवे है मिथ्यावादीका जय कदाचित होवे नहीं और देवयानमार्गभी सत्यसंभाषणवालेको विस्तारयुक्त प्रवृत्त भया है और जहां सत्यरूप उत्तम साधनकर साध्य परमनिधान ब्रह्मलोक है ऐसे ब्रह्मलोकमें जिसप्रकारसे उपासनावाले कपट छल झूठादिकसे रहित आप्तकाम ऋषिजन गमन करते हैं और वहां ब्रह्मज्ञानको प्राप्त होकर मुक्त होते हैं ॥ अब तिस ब्रह्मके लक्षण कहे हैं ॥ ६ ॥ वह ब्रह्म सर्वसे बडा है तथा स्वयंप्रकाश है अर्थात इंद्रियअगोचर है यातें अचिंत्यरूप है और सूक्ष्मसेभी अतिशय कर सूक्ष्म है ऐसा हुआभी सूर्यचंद्रादिक आकारसे नानाप्रकार भासता अर्थात् प्रकाशता है सो आत्मा अज्ञानी पुरुषनको दुर्ज्ञेय होनेसे दूरसे दूर है ॥ और ज्ञानी पुरुषनका आत्मा होनेसे और सर्वांतर होनेसे इस देहमें समीपविषे वर्तता यहांही चेतनावाले पुरुषनके मध्य बुद्धिरूप गुहाविषे स्थित यह ब्रह्म दर्शनादिक क्रियावाला होनेकर योगी पुरुषोंसे लक्षितहै ॥ ७ ॥ फिर कहेहै ॥ और यह आत्मा नेत्रकरके तथा वाणीकरके तथा अन्य इंद्रियोंकरके ग्रहण करनेको शक्य नही है और न तपकरके तथा न अग्निहोत्रादिक कर्मोंकर प्राप्त होवे है और जब इंद्रियोंको विषयोंसे निवृत्त करे तब बुद्धि जलवर्षनादिककी न्याई स्वच्छ शांत होवे है ॥ तिस बुद्धिरूप ज्ञानके प्रसादसे शुद्ध अंतःकरणवाला पुरुष जिससे ब्रह्मके देखनेको योग्य ॥ यातें यह पुरुष सर्व अवयवनको भेदसे रहित निष्कलरूप तिस आत्माको सत्यादिक साधनवान जितेंद्रिय होकर एकाग्र मनसे ध्यावता हुआ आत्माको देखता है ॥ ८ ॥ यह आत्मा सूक्ष्म है, सो जिस शरीरविषे प्राणवायु पंचप्रकारका होकर प्रवेशको पाया हैं ॥ तिसही शरीर विषे हृदय देशमें केवल विशुद्ध ज्ञान रूप चित्तसे जाननेको योग्य है ॥ किस चित्तकर जाननेको योग्य है ॥ तहां कहे है ॥ जिस चैतन्य करके प्राण और इंद्रियों सहित प्रजाका अंतःकरण

व्याप्त है; यातें लोकविषे प्रजाका सर्व अंतःकरण चेतनवाला प्रसिद्ध है; तातें तिस चैतन्यवृत्तिरूप चित्तसे आत्मा जाननेको योग्य है ॥ फिर यह चित्त कैसा है ? जो जिस क्लेशादिक मलरहित शुद्ध चित्तविषे यह कथन किया आत्मा विशेष स्वस्वरूपसे आपको प्रकाशता है ॥ ९ ॥ जो पुरुष ऐसे उक्त लक्षणवाले सर्वके आत्माको आत्मभावसे प्राप्त भया है, तिसको सर्वात्मा होनेसे सर्वकी प्राप्तिरूप फल होवे है ॥ यह कहे है ॥ हे शौनक ! जो क्लेश रहित है तथा आत्माविषे निर्मल अंतःकरणवाला पुरुष है, सो जिस जिस पुत्रादिरूप लोकको मुझअर्थ अथवा अन्यअर्थ होवे; ऐसे मनसे चितवता है तथा जिस भोग्यकी इच्छा करता है तिस तिस लोकको तथा तिन चिंतवन किए भोगनको परमार्थ तत्त्वके ज्ञानसे पावता है, यातें विद्वानको सत्य संकल्पवाला होनेसे विभूतिकी इच्छावाला जो पुरुष है सो आत्मज्ञानसे शुद्ध अंतःकरणवाले आत्मज्ञानीके पादपखालनादिकसे वा तथा नमस्कारादिकसे पूजन करे, याते यह आत्मज्ञानी पूजाके योग्य है ॥ १० ॥

॥ इति श्रीमुंडकोपनिषद्गततृतीयमुंडकस्य प्रथमं खंडं समाप्तम् ॥

॥ शुभमस्तु ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ श्रीमुंडकोपनिषद्गततृतीयमुंडकस्य द्वितीयःखंडः प्रारभ्यते॥

जिससे सो उक्त लक्षणवाले ब्रह्मरूप सर्व कामनाके आश्रय परम धामको जानता है, जिस ब्रह्मरूप धामविषे जगत् स्थित है और जो ब्रह्मरूप धाम शुद्ध हुआ अपने प्रकाशसे भासता है, यातें ऐसे आत्मज्ञानी पुरुषकोही जो बुद्धिमान् पुरुष विभूतिकी कामनासे रहित मुमुक्षु हुए, परमात्मरूप देवकी न्याई उपासते हैं, वह इस प्रसिद्ध शरीरके उपादान कारण बीजरूप वीर्यको उल्लंघकर जाते है और फिर फिर योनियोंको पावते नहीं; यातें तिस आत्म-

ज्ञानीको पूजन करना यह अभिप्राय है ॥१॥ अब मुमुक्षुको कामका त्यागही मुख्य साधन है, यह दिखावे है ॥ जो पुरुष दृष्ट अदृष्टविषयरूप भोगनको गुणबुद्धिसे चितवता हुआ इच्छा करता है सो तिस धर्म अधर्म विषे प्रवृत्तिके कारण विषयोंकी इच्छारूप कामनाके साथ तहां तहां जन्मता है ॥ और जो पुरुष परमार्थ तत्वके ज्ञानसे आत्मकाम होनेकर चारों तर्फसे प्राप्त भये हैं काम अर्थात् भोग्य जिसको सो पूर्णकाम है ॥ और निकृष्टरूप अद्याके स्वरूपसे निकासकर विद्याकर आपने श्रेष्ठरूपसे किया है आत्मा जिसने ऐसा कृतात्मा है तिस पूर्णकाम कृतात्मा पुरुषको तो इसही विद्यमान शरीर विषे सर्व धर्म अधर्मकी प्रवृत्तिके हेतुरूप काम नाशको पावते हैं, तिस कामके जन्मके कारणके नाशसे काम उपजते नही ॥ २ ॥ जब ऐसे परमात्माके ज्ञानसे. सर्वका लाभ होवे है, तब तिस लाभअर्थ शास्त्राध्ययनादिक बहुत उपाय करनेको योग्य है ऐसे प्राप्तहुए यह कहीए है॥ परमपुरुषार्थ जिसका लाभ है ऐसा व्याख्यान कियाजो यह आत्मा है सो वेदशास्त्रको बहुत अध्यनरूप परिवचनसे पानेयोग्य नहीहै, तैसे ग्रंथकी धारणशक्तिरूप बुद्धिसेभी पाने योग्य नही और तैसे उपनिषत्के विचारसे भिन्न बहुतप्रकारके श्रवणसेभी पानेयोग्य नही. तब सो आत्मा किस साधनकर पानेयोग्य है ऐसे पूछे तहां कहेहैं ॥ यह विद्वान जिस आत्माके पानेकी इच्छा करताहै तिस चाहनेवाले पुरुषसेही यह आत्मा पानेके योग्यहै, अन्य साधनसे नहीं ॥ काहेतें जो प्राप्तस्वभाववाला होनेसे विद्वानको इस आत्माका लाभ किसप्रकारका है तहां कहेहैं ? तिस विद्वानका यह आत्मा अविद्यासें आवर्त अपनी उत्कृष्ट स्वात्मतत्त्व स्वरूपतनुको प्रकाशताहै अर्थात् विद्याके हुए घटादिक प्रकाशकीन्याई आविर्भावको पाता है, यातें अन्यके त्यागसे आत्माके लाभकी चिंतन रूप चाहनाही आत्मलाभका मुख्य साधन है ॥ ३ ॥ जिससे यह संन्यास और अप्रमाद तथा तपरूप साधन आत्माके चिंतनरूप चाहनाके सहकारी हैं यातें यह आत्मा आत्मनिष्ठाकर उत्पन्न भये बलसे रहित पुरुषकर पानेको योग्य नहींहैं और न प्रमादसे पानेयोग्य है, तैसे संन्यासरूप लिंगसे रहित ज्ञानरूप तपसे भी पाने योग्य नहीहै ॥ जो विद्वान तत्पर हुआ इनों बल अप्रमाद संन्यास और ज्ञानरूप उपायोंसे

प्रयत्न करताहै, तिस विद्वानका यह आत्मा ब्रह्मधामके तांई सम्यक् प्रवेश करताहै ॥ ४ ॥

ब्रह्मधामकेतांई कैसे प्रवेश करताहै तहां कहेहैं ॥ जो आत्माके दर्शनवाले ऋषिजन इस आत्माको सम्यक् जानकर तिसही ज्ञानसे तृप्त हुए शरीरकी वृद्धिके कारण बाह्यकी तृप्तिके साधनसे नही ॥ और परमात्माके स्वरूपसे ही सिद्ध भये आत्मावाले हुए रागादिक दोषोंसे रहित जितेंद्रिय भयेहैं; वह अत्यंत विवेकी नित्य चित्तकी एकाग्रताके स्वभाववाले पुरुष आकाशकी न्याई व्यापक अद्वैत ब्रह्मको उपाधिसे प्रच्छिन्न एकदेशमें न पाकर किंतु सर्वत्र पाकर शरीरके पतन कालमेंभी सर्वकेतांई प्रवेश करतेहैं ॥ ५ ॥ किंचः ॥ जो पुरुष वेदांतजन्य विज्ञानसे परमात्मारूप जाननेयोग्य अर्थके निश्चयवाले हैं और सर्व कर्मोंके परित्यागपूर्वक केवल ब्रह्मनिष्ठारूप संन्यासयोगसे प्रयत्न करनेके स्वभाववाले यति है और संन्यासयोगसे शुद्धचित्तवाले हैं, वह सर्व प्राणांतकालविषे ब्रह्मरूप लोकनविषे जीवते हुएही परम और मरणधर्मरहित ब्रह्म है आत्मा जिनका ऐसे परामृत हुए सर्व तर्फसे दीपकके निर्वाणकी न्याई और घटाकाशकी न्याई मुक्त होवेहै ॥ ६ ॥

और ब्रह्मवेत्ता जो है वह अविद्या आदिक संसारके बंधनकी निवृत्तिरूप मोक्षकी इच्छा करतेहैं. कार्यरूप मोक्षकी नहीं ॥ किंवाः ॥ मोक्षकालविषे जो देहके आरंभक प्राणादिक पंचदश संख्यावाले कला, जो प्रश्नोपनिषद्रूप ब्राह्मण भागके षष्ठ प्रश्न विषे कथन किया है, वह अपने अपने कारणके तांई लयको प्राप्त होवे हैं, और देहके आश्रित चक्षु आदिक करण विषे स्थित जो देव है वह सूर्यादिक प्रतिदेवता विषे प्राप्त होवे है ॥ मुमुक्षुने जो कर्म किये हैं तिनमेंसे फलके आरंभवाले कर्मोंको भोगसे क्षीण होनेसे तिनको छोडकर, यहां शेष रहे फलके आरंभसे रहित जो कर्म है तिनका ग्रहण है, और आत्मा जो है सो अविद्यारहित बुद्धि आदिक उपाधिको अपना स्वरूप मानकर जलादिकविषे सूर्यादिकके प्रतिबिंबकी न्याई तिसही विज्ञान मय स्वरूपके साथ इस देहके भेदविषे प्रवेशको पाया है ॥ काहेतें जो कर्मोंको तिस विज्ञानरूप बुद्धिकेतांई फलके देने अर्थ होनेंसे यातें आत्मा विज्ञानमय कहिये है, कर्म और विज्ञानमय आत्मा वह यह सर्व उपाधिकी निवृत्तिसे सत्य परम अव्यय अक्षर

आकाशतुल्य अजन्म अजर अमर अभय अकार्य अकारण अंतर्बाह्य रहित अद्वैत शिव शांत ब्रह्मविषे जलादिक आधारके दूर किए हुए सूर्यादिकविषे सूर्यादिक प्रतिबिंबकी न्याई और घटादिकके दूर किए हुए घटादिकसंबंधि आकाशकी न्याई एकताको पावे है ॥ ७ ॥ किंवः ॥ जैसे गंगाआदिक नदीयां चलती हुई समुद्रको पाकर नामरूपको छोडकर समुद्रविषे अस्तको पावे है तेसे विद्वान अविद्याकृत नामरूपसे मुक्त हुआ पूर्वोक्त लक्षणवाले अक्षररूप परसे पर दिव्य पुरुषको पावता है ॥ ८ ॥ ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मरूप होवे है अन्य गतिको प्राप्त होवे नहीं इस वार्ताको अब कहे है ॥

जो कोई अधिकारी पुरुष इस लोकमें प्रसिद्ध तिस परम ब्रह्मको मैं अद्वैत ब्रह्मरूप हूं ऐसे साक्षात् जानता है सो अन्य गतिको पावता नही, किंतु ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मरूपही होवे है ॥ किंवः ॥ इस विद्वानकी कुल अर्थात् शिष्य परंपराविषे अब्रह्मवित् नहीं होवे है अर्थात् अज्ञानी नहीं होवे है ॥ किंवः ॥ यह विद्वान जीवता हुआभी अनेक इष्ट वस्तुके वियोगरूप निमित्तसे भये संतापरूप शोकको तरता है, और धर्म अधर्मरूप पापको तरता है, गुहारूप ग्रंथियोंसे मुक्त हुआ अमृत होवे है ॥ अब ब्रह्मविद्याके दानकी विधिके दिखावनेसे इस उपनिषत्की समाप्ति करिये है ॥ सो यह विद्याके दानका विधान इस मंत्रमें कह्या है ॥ ९ ॥ जो शास्त्रोक्त कर्मके अनुष्ठानरूप क्रियावाले हैं और श्रोत्रिय अर्थात् अपर ब्रह्मविषे कुशल हैं और ब्रह्मनिष्ठ अर्थात् परम ब्रह्मके विज्ञानवाले हैं और श्रद्धावान हुए आप एक ऋषि नामवाले अग्निकेतांई हवन करते हैं ॥ तिन संस्कारयुक्तवाले पात्ररूप पुरुषकेतांईही इस ब्रह्मविद्याको कहना और मस्तकविषे अग्निके धारण करनेरूप अथर्व वेद विषे प्रसिद्ध जो शिरोव्रत है सो जिनोंने शास्त्रोक्त विधिके अनुसार किया है तिनके तांईही इस ब्रह्मविद्याको कहना ॥ १० ॥ तिस इस अक्षर पुरुषरूपको, पूर्व अंगिरानाम मुनीश्वर, विधिवत समीप प्राप्त भये पूछनेवाले शौनककेतांई कहता भया ॥ इस ग्रंथको व्रतके आचरणसे रहित पुरुष अध्ययन करताभी नहीं ॥ जिससे व्रतके आचरणवाले पुरुषकी विद्या संस्कारयुक्त हो, फलके अर्थ होवे है, यातें व्रतरहित पुरुष तिस ग्रंथके अध्ययनके योग्य नहीं है ॥ इस रीतिसे समाप्त भई जो ब्रह्मविद्या सो तिन ब्रह्माआदिकसे परंपराके क्रमसें

सम्यक् प्राप्त भयी है तिन परम ऋषियोंकेतांई नमस्कार है ॥ जो ब्रह्मा आदिक परम ब्रह्मको साक्षात जानते भये हैं वह परम ऋषि हैं ॥ तिन परम ऋषियोंकेतांई फेरभी नमस्कार है ॥ इहां दोवार कथन आदरके अर्थ है ॥११॥

इस प्रकार शौनक ऋषि अंगिरा नाम गुरुसे विधिपूर्वक ब्रह्मविद्याके उपदेशको पाकर आगे अधिकारियों मुमुक्षु पुरुषोंकेतांई उपदेश करता भया ॥ जो अधिकारी साधनसंपन्न पुरुष चित्तकी समाधानतासे ग्रंथका वारंवार एकांत स्थित होकर विचारेगा तथा श्रद्धापूर्वक मनन करेगा, तब तिनके अविद्या आदिक सर्व क्लेशताप दूर हो जावेगे और सर्व काल तिसको आत्मानंदका आविर्भाव रहेगा ॥ और इसके पाठ श्रवणादिक श्रद्धापूर्वक करनेसेभी पुरुषके पाप निवृत्त होवे है ॥ यह वेदका सार उपनिषत् ही ब्रह्मज्ञानका हेतु है ॥

दोहा ॥ मुंडकजाणउपनिषत, इतिवेदसारवेदांत ॥
हरिप्रकाशजिसपढेसे, मिटेसजगतअज्ञान ॥ १ ॥

इति श्रीअथर्ववेदीयमुंडकोपनिषतभाषाफक्काबावांहरिप्रकाशपरम
हंसकृततृतीयमसुंडकस्य द्वितीयःखंडः समाप्तः ॥

॥ इतिश्रीमुंडकोपनिषत समाप्ता ॥

॥ शुभमस्तु ॥ ॐ ॥ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

ॐ श्रीपरमात्मनेनमः ॥

श्रीअथर्ववेदीयमाडूक्योपनिषन्मूलमंत्रार्थ भाषाफक्काबावाहरिप्रकाशपरम हंसकृतप्रारभ्यते ॥

दोहा ॥ वेदअथर्वमेंजाण तूं, मांडूक्यनामप्रसिद्ध ॥
उपनिषतहरिप्रकाश यह, पठिपावेसुखवृद्ध ॥ १ ॥

यह मांडूक्य नामक उपनिषत् अथर्ववेदके मंत्रोंसे मांडूक ऋषिने अपने शिष्योंकेतांई ॐकारकी उपासना लय चिंतनरूपसे ब्रह्मात्मस्वरूपके अभेद

बोधार्थ कथन करी है ॥ और यद्यपि तिस मांडूक्य उपनिषत् पर श्रीमत् गौड पादाचार्यने कारिकारूप श्लोक किये हैं तथापि, तिन कारिकाको छोडकर केवल मूलमंत्रनकाही भाषाफक्कामें अर्थ करताहूं ॥

॥ मूलमंत्राः ॥ ॐभद्रंकर्णेभिः शृणुयाम देवाः । भद्रं पश्येमा क्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांऽसस्तनूभिः । व्यशेम देवहितं यदायुः । स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवाः । स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः । स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

अर्थ यह है. हे यजमानपालक देवतावो! हम दृढ अंगो और शरीर तथा पुत्रादि युक्त आपकी स्तुति करते हुए, कानोंसे कल्याणको श्रवण करें और आंखोंसे कल्याणको देखें ॥ जो देवार्चन योग्य आयु है उसको प्राप्त करो ॥ हे बडी कीर्तिवाले इंद्र ! हमारे तांई कल्याण देवो, हे सर्वज्ञ सूर्य ! हमारे तांई कल्याण देवो, हे विष्णुवाहन गरुड ! और सुदर्शन चक्र ! हमारे तांई कल्याण देवो ॥ हे बृहस्पति ! हमारे तांई कल्याण देवो ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः॥अर्थ यह है आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक तीन प्रकारके दुःख विघ्नोंकी निवृत्तिवास्ते तीनवार शांतिः शांतिः शांतिः कथन करी है ॥

इस प्रकार मांडूक ऋषि शांतिः पाठ कथन करके अब आगे मांडूक्योपनिषत्का आरंभ करते हैं ॥

॥ मूलमंत्र ॥ ॐमित्येतदक्षरमिदꣳसर्व्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्व्वमोंकार एव ॥ यच्चान्य त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव ॥१॥ सर्व्वꣳह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात् ॥ २॥

अर्थ यह हैं ॥ ॐकार अक्षर ही यह सर्वनामरूपप्रपंच है, ॐकारसे भिन्न किंचित् मात्रभी नहीं ॥ तात्पर्य यह है जो ब्रह्म सर्वका अधिष्ठान है और कल्पित वस्तु अधिष्ठानसे भिन्न होवे नहीं ॥ यातें ब्रह्मसे किंचितभी भिन्न नहीं और तिस अधिष्ठानरूप ब्रह्मका वाचक होनेसे ॐकारही ब्रह्म है ॥

और जैसे शालिग्रामविषे विष्णुमूर्तिका ध्यान करनेसे शालिग्रामको विष्णु रूपताहै तैसे इस ॐकारमें ब्रह्मस्वरूपका ध्यान करनेसे ॐकारही ब्रह्मस्वरूप है ॥ और जैसे भ्रांतिकालमें प्रतीत हुआ जो चौरहै सो स्थाणुके न जाननेसे ही प्रतीत होवेहै ॥ जब स्थाणुका यथार्थ बोध होजावे तब चौरका बाध हो जावेहै ॥ फिर ऐसे प्रतीत होवेहै जो यह चौर है सोस्थाणुही है तैसे उकारका अधिष्ठान ब्रह्म है; इस कारणसे ओंकार ब्रह्मरूप है ॥ इसमेंभी बाध समानाधिकरण है और नामके अधीन नामीकी सिद्धि होवेहै. और सोॐकार ब्रह्मका नाम है; नामसे नामी भिन्न होवे नहीं तैसे ॐकार नामसे नामी ब्रह्म भिन्न नही और जैसे अर्थ रूप प्रपंचमें व्यापक ब्रह्म है ॥ तैसे शब्द रूप प्रपंचमें व्यापक ॐकार है यातें व्यापकताके ग्रहणसेभी ॐकारही ब्रह्म है और तिस ब्रह्मसे कार्यप्रपंच भिन्न नहीं, तथा ब्रह्मरूप ॐकारसेभी यह प्रपंच भिन्न नहीं, इससे यह सिद्ध भया ॐकारही सर्व नाम रूप प्रपंचहै ॥ अब तिस ॐकारका स्पष्टविस्तारपूर्वक व्याख्यान करेहै ॥ जो भूत वर्तमान भविष्यत् तीनकालकर परिच्छिन्न पदार्थ है वह सर्व ॐकार रूपहै ॥ और जो अन्य तीन कालोंसे भिन्न कार्यरूप लिंगसे जानने योग्य और कालसे प्रच्छेद करनेको अयोग्य जो अव्याकृतादिक है औरभी ॐकारहीहै ॥ ईहां नाम अर्थात वाचक और नामी अर्थात् वाच्यकी एकताके हुएभी नामकी प्रधानतासे यह निरदेश किया ॥ १ ॥ पूर्वतो ॐकारही सर्व नामरूप प्रपंच है ऐसे श्रुतिने कहाथा अब सर्व जो वाच्य प्रपंच है तिस प्रपंचको वाचक जो ॐकार है ॥ तिस वाचक ॐकार रूपसे निरूपण करेहै ॥ प्रयोजन तो दोनोंके अभेद कथनका हैं ॥ जो वाच्य वाचक दोनोंको शुद्ध ब्रह्ममें लयकर अधिष्ठान निर्विशेष ब्रह्मकों निश्चय करे, यह सर्व प्रपंच ब्रह्मरूप है. ऐसे परोक्षरूपसे कथन किया जो ब्रह्म है तिस ब्रह्मको श्रुति भगवती अपने हस्तको हृदयदेशमें प्रासकर प्रत्यक्षरूपसे कथन करे है ॥ सर्व कार्य कारणही यह ब्रह्म है; तिस परोक्षभावसे कथन किये ब्रह्मको प्रत्यक्षसे विशेषकर निर्देश करे है ॥ यह आत्मा ब्रह्म है. यहां यह ऐसे विश्व तैजस प्राज्ञ और तुरीयरूप चारपादवाला होनेकर विभागको प्राप्त भये आत्माको प्रत्येक आत्मारूप होकर कहनेको

वांच्छित अर्थके निश्चयनिमित्त असाधारण शरीरके हस्तको हृदयदेशकेतांई ले आवणेरूप व्यापारमय अभिमतसे यह आत्मा है, ऐसे कहे है ॥ सो यह ॐकारका वाच्य पर अर्थात् अधिष्ठान और अपर अर्थात् प्रत्यगात्मा होनेकर स्थित भया आत्मा चारपादवाला है ॥ जैसे एक रुपयामें व्यवहारवास्ते चार भाग किये जावे हैं तैसे वास्तवसे एक आत्मामें मुमुक्षु जनोंके बोध निमित्त चार पादका वर्णन है ॥ सो जैसे विश्व तैजस प्राज्ञ और तुरीय यह जीवात्माके चारपाद ईश्वररूप ब्रह्मके है ॥ अब विराट्का विश्वसे अभेद मनमें धारकर विश्वरूप प्रथम पादको वर्णन करे है ॥ २ ॥

विश्वसे अभिन्न जो विराट् है, यह आत्माका प्रथम पाद है ॥ कैसा है यह विश्वाभिन्न विराट् ॥ जो जाग्रत अवस्था है स्थान जिसका और स्थूलशरीरका अभिमानी है, और बाह्य अर्थात् आत्मासे भिन्नविषयमैं है प्रज्ञा जिसकी ॥ इस बाह्य प्रज्ञावाला है अर्थात् बाह्य शब्दादिक विषयोंमें वृत्तिवाला है ॥ इस विश्वाभिन्न विराट्के सप्त अंग हैं ॥ सो यह हैं ॥ स्वर्गलोक मस्तक है, चंद्र सूर्य दोनो नेत्र हैं, प्राण बाह्य वायु है, आकाश धड है, समुद्रादिक रूप जल यह सूत्रस्थान हैं, पृथिवी पाद है, और जिस अग्निमें हवन करे है, तिस अग्निको आहवनीय कहे हैं., सो आहवनीय अग्नि इस विश्वरूप विराट्का मुख है ॥ यह सप्त अंग कहे अब इस विश्वरूप विराट्के उन्नीस मुख हैं वह उन्नीस मुख यह हैं ॥ पांच कर्म इंद्रिय तथा पंच ज्ञानइंद्रिय तथा पंच प्राण और चार अंतःकरण यह उन्नीसही मुखकीन्याई भोगके साधन होनेसे मुख कहे जावे हैं ॥ और इस विश्वको स्थूलभुक्भी कहे हैं अर्थात् स्थूल शब्दादिक विषयोंको भोगे है; इस निमित्तसे इसको स्थूलभुक् कहे हैं और यहही सर्व नररूप है; इसकारणसे इसको वैश्वानर कहे हैं ॥ यह प्रथम पाद निरूपण किया ॥ ३ ॥

अब द्वितीयपादका प्रतिपादन करतेहैं ॥ व्यष्टि सूक्ष्मशरीरके अभिमानी तैजसका समष्टि सूक्ष्मशरीरके अभिमानी हिरण्यगर्भकेसाथ अभेद है ॥ इसकारणकर हिरणगर्भसे अभिन्न तैजसही स्वप्नअवस्थाका अभिमानी है और स्वप्न है मम अभिमानका विषयरूप स्थान जिस तैजसरूप द्रष्टाका ॥ ऐसा जो स्वप्नस्थानवाला है और यह तैजस मनोमात्र जो पदार्थ है तिनको भोगेहै ॥ इस हेतुसे तैजसको अंतःप्रज्ञ कहेहैं अर्थात् अंतर है

सूक्ष्म अविद्यारचित पदार्थोंमें प्रज्ञा जिसकी तिसका नाम अंतःप्रज्ञ है ॥ और सप्त अंग उन्नीस मुख जो विश्वके कहे थे, तैसेंही तैजस है, परंतु इतना भेद है; जो विश्वके तो ईश्वररचित है और तैजसके मनरचित हैं ॥ और यह तैजस प्रविविक्तभुक् है अर्थात् वासनामय सूक्ष्म भोगवाला है ॥ जो जिससे यह तैजस है सो तैजस द्वितीय पाद है ॥ ४ ॥

अब तृतीयपादके निरूपणवास्ते सुषुप्ति अवस्थाको प्रथम कथन करते हैं ॥ जिस अवस्थामें प्राप्तहुआ यह जीव किसी भोगकी इच्छा करता नहीं, तथा जिस अवस्थामें अनेक प्रकारके विपर्ययरूप स्वप्नदर्शनको करता नहीं तिस अवस्थाको सुषुप्ति कहे हैं ॥ ऐसी सुषुप्ति है स्थान जिस प्राज्ञका सो सुषप्ति स्थानवाला है ॥ ऐसी सुषुप्तिस्थानवाला ईश्वराभिन्न प्राज्ञही तृतीय पाद है ॥ तिस व्यष्टिकारणशरीर अविद्याके अभिमानी प्राज्ञकेही विशेषण कहे हैं. यह प्राज्ञही सुषुप्तिअवस्थामें ईश्वरके साथ एकताको प्राप्त होवे है. इस हेतुसे यह एकभूत होवे है और इसीकोही प्रज्ञानघन कहे है. काहेतें जो जाग्रतके तथा स्वप्नके सर्वज्ञान अविद्यामें एकरूप होजावे है, इस निमित्तसे इसको प्रज्ञानघन कहे हैं और सुषुप्तिमें अधिक आनंदको प्राप्त होवे हैं यातें आनंदमय कहीए है ॥ और यह प्राज्ञही अविद्याकी वृत्तियोंसे अज्ञानावर्त आनंदको भोगे है, इस निमित्तसे आनंदभुक् कहीएहै और जाग्रत स्वप्नके ज्ञानमें जो द्वार-रूपसे स्थित होवे तिसको चेतोमुख कहे हैं. प्राज्ञकी जाग्रत स्वप्नमें द्वाररूपता है. इस हेतुसे तिसको चेतोमुख कहे हैं. इसकोही भूत भविष्यत् वर्तमान पदार्थोंका ज्ञान जागृत स्वप्नमें होताभया. इस कारणसे इसको प्राज्ञ कहे हैं. जाग्रत् स्वप्नके ज्ञानोंसे रहित केवल चैतन्य प्रधानतारूप कर स्थित होनेसे ही इस तृतीय पादको प्राज्ञ कहे हैं ॥ ५ ॥ अब प्राज्ञको ईश्वररूपताके सूचनअर्थ ईश्वरके धर्मोंका प्राज्ञमें वर्तन कहे हैं ॥ यह प्राज्ञही सर्वका ईश्वर है तथा यह प्राज्ञही सर्वज्ञ है, यह प्राज्ञही सर्वभूतोंके अंतरस्थित हुआ सर्वका नियामक है और सर्वभूत इस प्राज्ञसेही उत्पन्न होवे हैं तथा इस प्राज्ञमेंही लय होवेहै, यातें यह सर्वभूतनकी उत्पत्तिलयका कारण है ॥ ६ ॥

अब चतुर्थपादको साक्षात्‌शब्दका अविषय होनेसे, इस कारणसे निषेधमुखकर उस तुरीय आत्मारूप चतुर्थ पादका निरूपण करते हैं ॥ यह तुरीय

आत्मा अंतःप्रज्ञरूप तैजस नहीं और बाह्यप्रज्ञरूप विश्व नहीं है तथा जाग्रत स्वप्न अवस्थाकी जो मध्य अवस्था है सो अवस्था भी तुरीयरूप आत्मा नहीं है, तथा प्रज्ञानघनरूप सुषुप्तिअवस्थाभी आत्मा नहीं है, तथा प्रज्ञ अर्थात् सर्व पदार्थोंको ज्ञाताभी नहीं है, तथा अप्रज्ञ अर्थात् सर्व विषयोंका अज्ञाताभी नहीं है और यह तुरीय आत्मा निर्विशेष होनेसे ज्ञान इंद्रियोंका अविषय है, यातेंही क्रियारहित है, तथा कर्मइंद्रियोंका अविषय है. तथा अलक्षण अर्थात् स्वतंत्र अनुमान प्रमाणका विषय नहीं है और अचिंत्य अर्थात् बुद्धिका विषय नहीं है, तथा अविपदेश अर्थात् शब्दका विषय नही है ॥ सर्व प्रकारसे आत्माको अविषय होनेकर प्राप्त भई जो शून्यकी शंका तिस शंकाको निवृत्त करती है ॥ यह आत्मा एकही तीनों अवस्थामें अनुगत होकर प्रकाश करे है ॥ ऐसी वृत्तिकर जानने योग्य है, इस हेतुसे शून्यकी शंकाकी प्राप्ति होवे नहीं और तुरीय आत्मा अपनी सिद्धिविषे आपही प्रमाण है यातेंभी शून्यकी प्राप्ति होवे नहीं तथा सर्व प्रपंचका जिस तुरीयविषे अभाव है तथा निर्विकार है तथा कल्याणरूप है, तथा भेदकल्पनासे रहित अद्वैतरूप है, इसहेतुसे इस आत्माको चतुर्थ कहेहैं ॥ तीनकी अपेक्षासे तुरीय अर्थात् चतुर्थ कह्या जावे है ॥ और पूर्वोक्त तीन पाद वास्तवकर इस तुरीय आत्मासे भिन्न नहीं ॥ यातें इस आत्माको तुरीय कथन केवल उपदेशार्थ है ॥ कोई श्रुतिमाताने अपने अभिप्रायसे इस आत्माको तुरीय नहीं कह्या ॥ ऐसे सर्व कल्पनासे रहित तुरीय आत्माकोही विवेकी पुरुष आत्मस्वरूपसे मानते हैं, भिन्नरूपसे नहीं मानते ॥ ऐसा आत्मा सर्वकल्पनाका अधिष्ठान तुरीयरूपही मुमुक्षु जनोंको जाननेयोग्य है, इसके ज्ञानसे मुमुक्षु कृतकृत्यभावको प्राप्त होवे है ॥ ७ ॥

अब विश्वादिक पादोंका अकारादिक मात्रावोंसे अभेद वर्णन करते हैं ॥ पूर्व चतुर्थपादरूपसे निरूपण किया जो आत्मा सो आत्मा ॐकार अक्षररूप है ॥ ॐकारकी तीन मात्रा यह है अकार, उकार और मकार ॥ अब जिस मात्रासे जिस आत्माके पादका अभेद है तिसको कहे हैं ॥ ८ ॥ जाग्रत् है स्थान जिसका ऐसा जो जाग्रत अवस्थावाला विश्वसे अभिन्न वैश्वानर है सो प्रथम अकारमात्रारूप है ॥ अभेदके संपादक तुल्यधर्मोंको वर्णन करे

है ॥ जैसे सर्व प्रपंचमें व्यापक विराट् है तैसे अकारभी सर्ववाक्यरूप है, ऐसे श्रुतिमें कह्या है; यातें अकारभी व्यापक है और आत्माके पादोंमें प्रथम पाद विराट् है. तैसे ॐकारकी मात्राओंमें प्रथममात्रा अकार है ऐसे व्यापकता तथा प्रथमता रूपसे दोनो धर्म समान होनेसे दोनोंकी एकता है ॥ अब दो समान धर्मोंसे प्रथमपादकी प्रथम मात्रासे जो अभेद चिंतन करे हैं, तिनको फल प्रतिपादन करे हैं ॥ जो पुरुष प्रथमपादका प्रथममात्रासे उक्त तुल्यधर्मों कर अभेद चिंतन करे है, सो पुरुष सर्व कामनाओंको प्राप्त होवे है तथा सर्वमहात्माओंके मध्य अग्रभागी अर्थात् मुख्य होवे है ॥ ९ ॥

स्वप्न है स्थान जिसका ऐसा स्वप्नअवस्थावाला जो तैजस है सो द्वितीय उकारमात्रारूप है ॥ दोनोंमें समान धर्म यह है, उत्कृष्टता तथा द्वितीयता है. तैजसरूप द्वितीय पादमें तथा उकाररूप द्वितीयमात्रामें समान उत्कृष्टता तथा द्वितीयतारूप जानकर जो पुरुष दोनोंका अभेद चिंतन करता है तिसको फल प्राप्त कहे हैं ॥ उच्चारणकी अपेक्षासे उकारमें उत्कृष्टता गौण जाननी; वास्तवसे तो उत्कृष्टता सर्ववर्णोंमें व्यापक जो अकार है तिसमें ही है, ऐसे द्वितीय पादमें और द्वितीय मात्रामें उत्कृष्टतारूप समानधर्मकर अभेदचिंतनसे अत्यंत ज्ञानकी वृद्धिको प्राप्त होवे है. तथा शत्रुमित्रमें समानतारूप फलको प्राप्त होवे है और दोनो धर्मोंकर अभेदचिंतनसे इस वक्ष्यमाण फलको प्राप्त होवे हैं ॥ जो इस ध्याता पुरुषके कुलविषे कोई अब्रह्मवित् अर्थात् अज्ञानी पुत्रादिक नहीं होवे है ॥ १० ॥ सुषुप्ति है स्थान जिसका ऐसा सुषुप्ति अवस्थावाला प्राज्ञ तृतीय पादरूप है ॥ विश्व तैजसको उत्पत्ति प्रलयमें निर्गमनसे तथा प्रवेशसे प्राज्ञ परिमाणरूप मिनती करे है, तथा ॐकारके वारंवार उच्चारण करनेसे अकार उकारका मकारमें लय तथा उत्पत्ति प्रतीत होवे हैं; इस कारणसे उत्पत्ति प्रलयकालमें मकार तिन अकार उकार दोनोकी मिनती करे हैं ॥ इस मिनतीरूप धर्मसे प्राज्ञका तथा मकाररूप तृतीयमात्राका अभेद कह्या ॥ जैसे ॐकारके उच्चारण करनेसे मकारमें अकार उकारकी समाप्ति होनेसे दोनोकी मकारमें एकता होवे है तैसे विश्व तैजस दोनों सुषुप्तिमें प्राज्ञविषे एकताको प्राप्त होते है. इस एकीभावरूप समानधर्मसे प्राज्ञका मकारसे अभेद है ॥ अब आगे प्राज्ञ तथा मकारके

अभेद चिंतनका फल वर्णन करते हैं ॥ जो पुरुष प्राज्ञका मकारसे मिनती-रूप समान धर्मकर अभेद चिंतन करे है सो पुरुष जगतके यथार्थ स्वरूपको जानता है और एकभावरूप समान धर्मसे जो पुरुष प्राज्ञका मकारसे अभेद चिंतन करे है, सो पुरुष सर्व जगतका कारण होवे है ॥ यहां जो विश्वका अकारसे अभेद तथा तैजसका उकारसे अभेद तथा प्राज्ञका मकारसे अभेद ऐसे अभेदको निरूपण करके, पुनः इन तृतीय अभेद चिंतनके जो भिन्न-भिन्न फल निरूपण करेथे वह सर्व प्रधान ओंकारके ध्यानवास्ते कहे हैं ॥ यातें ओंकारके ध्यानकी स्तुतिरूप होनेसे अर्थवादरूप जानने. काहेतें जो श्रुति भगवती भिन्नभिन्न फल निरूपणमें तात्पर्यवाली नहीं किंतु प्रधान जो ओंकारका ध्यान तिसके फलनिरूपणमेंही श्रुतिका तात्पर्य है अन्यथा उपासनाकी एकता प्राप्त होवेगी ॥ केवल एक ओंकारका ध्यानही श्रुतिमें विख्यात है ॥ ११ ॥

अब चतुर्थ पाद जो तुरीय है तिसका अमात्र ॐकारकेसाथ अभेद निरूपण करता है ॥ जो चैतन्य अध्यस्तरूप त्रिमात्रवाले ओंकारकेसाथ अभेदरूप प्रतीत होवे है सोईही ओंकाररूपसे विवक्षित है, तिस ओंकाररूप चैतन्यकी परम ब्रह्मकेसाथ एकता होवे है ॥ ऐसे मात्राकल्पनासे रहित जो ओंकारका वास्तव अमात्ररूप है तिस अमात्ररूपका तुरीयसे अभेद है. अमात्ररूप तुरीय आत्माक्रियासे रहित है. तथा प्रपंचके संबंधसे रहित है तथा आनंद-रूप है और भेदकल्पनासे रहित ऐसे जाननेवाला अधिकारी पुरुष अपने पारमार्थिक स्वरूपविषे प्रवेश करे है, अज्ञानके निवृत्त होनेसे फिर जन्म-मरणादिक संसारको प्राप्त होवे नहीं ॥ १२ ॥

दोहा ॥ इतिश्रीयहमांडूक्य, लक्ष्य इसका करे विचार ॥
हरिप्रकाश जिस पठेसे, मिटे सतम संसार ॥ १ ॥

इति श्रीअथर्ववेदीयमांडूक्योपनिषद्भाषाफका बावाहरि
प्रकाशपरमहंसकृतः समाप्तः ॥

॥ शुभमस्तु ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

ॐ श्रीपरमात्मनेनमः ॥

अथश्रीयजुर्वेदीय तैत्तिरीयोपनिषद्भाषाफक्काबावाहरिप्रकाशपरमहंसकृतः प्रारभ्यते ॥
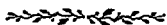
शिक्षोपनिषत्

दोहा ॥ यजुरवेदीय जाणतूं, तैत्तिरीय उपनिषत् ॥
हरिप्रकाश जिस देखके, होय उर ज्ञान अमित ॥ १ ॥

अब यजुर्वेदकी तैत्तिरियोपानिषत्के अर्थका निरूपण करते है ॥ तित्तिरि नामवाले ऋषिने अपने शिष्योंके प्रति कथन करी है, इस हेतुसे इस उपनिषत्का नाम तैत्तिरीय ऐसे कहे हैं ॥ इस उपनिषत्में तीन वल्ली कही है, तिनमेंसे प्रथम शिक्षाध्यायरूप वल्लीका आरंभ करते हैं ॥ अब इस उपनिषत्के आरंभमें शांतिमंत्र पठन किया है ॥ उस शांतिमंत्रका मूलमंत्र लिखकर तिसका अर्थ दिखावे हैं ॥

अथ शांतिमूलमंत्रः ॥ ॐशं नो मित्रः शं वरुणः । शं नो भवत्वर्य्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः । शं नो विष्णुरुरुक्रमः । नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि । ऋतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु । अवतु माम् । अवतु वक्तारम् ॥

॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

अर्थ यह है ॥ प्राणवृत्तिका तथा दिनका अभिमानी जो मित्र अर्थात् सूर्यनाम देवता है सो मित्र देवता हमारेको सुखकारी हो, तैसेही रात्रिका अपान वृत्तिका अभिमानी देवता जो वरुण है सो वरुण हमारेको सुखके करनेवाला होवे, और चक्षुमें तथा आदित्य मंडलमें स्थित देवता जो अर्यमा है सो हमारेको सुखकारी होवे, बलविषे अभिमानी अथवा हस्तका अभिमानी

देवता जो इंद्र है सो हमारेको सुखकारी होवे, और वाणीविषे तथा बुद्धि विषे स्थित देवता जो बृहस्पति है सो हमारेतांई सुखकारी होवे है ॥ और पादोंका अभिमानी वामन अवतारके धारनेवाले जो विष्णु हैं सो विष्णु देव हमारेको सुखकारी होवे ॥ ऐसे अध्यात्म करणोंके अभिमानी देवता हमारे कल्याणको करें ॥

अब ब्रह्मविद्याके जाननेकी इच्छावाले मुमुक्षुकर ब्रह्मविद्याके विघ्नोंकी निवृत्तिअर्थ वायुको विषय करनेवाली नमस्कार और कथनरूप क्रियाको कहते हैं ॥ काहेतें जो सर्वक्रियाके फलको तिसके अधीन होनेसे ब्रह्मरूप जो वायु है तिसकेतांई मैं नमस्कार करताहूं ॥ यहां परोक्ष और प्रत्यक्षकर वायुही कहते हैं ॥ किंवः ॥ जिससे तूंही चक्षु आदिककी अपेक्षाकरके बाह्य समीप और अंतरायसे रहित प्रत्यक्ष ब्रह्म है; यातें मैं तेरेकोही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहताहूं ॥ और जैसे शास्त्रविषे कह्या है, और जैसे करनेको योग्य है, ऐसे बुद्धिविषे सम्यक् निश्चय किया जो अर्थ सो ऋत कहिए है, सोभी तेरे अधीन है, यातें तेरेकोही ऋति कहताहूं ॥ और वाणी तथा शरीरकर संपादन किया जो सत्य है सोभी तेरे अधीन संपादन करिए है यातें तेरेकोही सत्य कहताहूं ॥ सर्वरूपसे आपको कथन करनेवाला जो मैं अधिकारी हूं, तिस मेरेतांई विद्याकी प्राप्ति करो, तथा वक्ता जो मैं अधिकारी हूं, तिस मेरेतांई विद्याकी प्राप्ति करो तथा वक्ता जो आचार्य है तिस वक्ताको कहनेकी शक्तिके दानसे रक्षा करो तथा ब्रह्मविद्याके दानसे मैं अधिकारीकी रक्षा करो. और वक्ता आचार्यकी रक्षा करो यहां दोवार कथन आदरके अर्थ है. ऐसे ब्रह्मविद्यामें विघ्नोंकी निवृत्ति अर्थ अधिकारी वारंवार देवतावोंकेतांई नमस्कार करता है और अध्यात्म अधिभूत अधिदैव इन तीन प्रकारके विद्याप्राप्तिमें विघ्न हैं, तिन विघ्नोंकी निवृत्ति वास्ते तीनवार ॐशांतिः शांतिः शांतिः ॥ यह मंत्र अधिकारी पठन करे ॥ १ ॥

॥ इति श्रीयजुर्वेदीयतैत्तिरीयोपनिषद्गतशिक्षाऽध्यायस्य प्रथमोऽनुवाकः समाप्तः ॥

॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ अथ शिक्षाद्वितीयोनुवाकः प्रारभ्यते ॥

अब अर्थके ज्ञानको प्रधान होनेसे उपनिषत्के ग्रंथके पाठविषे स्वर ऊष्म और व्यंजनरूप अक्षरोंके प्रमादके प्रयत्नकी निवृत्ति मत हो, इस अभिप्रायसे शिक्षा अध्यायका आरंभ करीए है ॥ किसकर शिक्षा करीए है. तहां कहे हैं ॥ वर्णादिकके उच्चारणका लक्षण अर्थात् शास्त्र जो है सो शिक्षा कहिए है जो शिक्षा है सोई वेदमें शीक्षा ऐसे कहीए है, तिस शिक्षाको स्पष्ट जैसे होवे तैसे सर्व प्रकारसे कथन करते हैं ॥ तहां अकारादिक वर्ण और उदात्तादिक स्वर और ह्रस्वादिक मात्रा और यत्नविशेषरूप बल और वर्णोंका मध्यम वृत्तिसे उच्चारणरूप साम अर्थात् समता और संतति अर्थात् संघतारूप संतान यहही शीखने योग्य अर्थरूप शिक्षा जिस अध्यायविषे है ऐसा शीक्षाध्याय है, ऐसे आगे कह्या है ॥ इस कारणसे पंचप्रकारकी शिक्षाको कहे हैं ॥ १ ॥

॥ इति द्वितीयोनुवाकः समाप्तः ॥ २ ॥

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ अथ शिक्षातृतीयोनुवाकः प्रारभ्यते ॥

अब वर्णोंके संबंधरूप संघताकी उपनिषत् अर्थात् उपासना कहे है ॥ तहां संघता आदिककी उपनिषत् अर्थात उपासनाके ज्ञानरूप निमित्तवाला जो यश तिसकी प्रार्थना करिए है ॥ सो यश हम अर्थात् शिष्य और आचार्य दोनोंको साथही हो. और तिस यशरूप निमित्तवाला ब्रह्मवर्चस अर्थात् तेजभी दोनोंको साथही हो ॥ यह शिष्यकी तर्फसे प्रार्थना है ॥ अब जिससे पूर्व व्यतीत भये अध्ययनरूप विधानकी अत्यंत ग्रंथसे निश्चित भई जो बुद्धि सो तत्काल अर्थके ज्ञानविषे प्रवृत्ति करनेको समर्थ नही है; यातें अपनी शाखाकी संघतारूप ग्रंथके समीपवर्ति वर्णोंके संबंधरूप संघताकी उपासनाको कहे हैं ॥ पंच आश्रय अर्थात् ज्ञानके विषयोंविषे जो अधिलोक, अधिज्योतिष, अधिविद्य, अधिप्रज, अध्या-

त्मरूप उपासना है, तिन इन पंच विषयवाली उपासनाको लोकादिक महाव-स्तुको विषय करनेवाली होनेसे वेदके वेत्ता इसको महासंघता ऐसे कहते हैं ॥ अब जिसप्रकार कहनेको आरंभ करते हैं तिस प्रकारसे तिन पंच प्रकारकी उपासनाके मध्य अधिलोकरूप उपासना कहिए है. यहां अथ अर्थात् अथशब्द उपासनाके क्रमके दिखावणे अर्थ है ॥ पृथ्वी पूर्वरूप अर्थात् पूर्ववर्ण है ॥ यहां संघताको पूर्ववर्ण विषे पृथिवीकी दृष्टि करनेयोग्य है, ऐसे जानना ॥ तैसे स्वर्ग लोक उत्तररूप है, और आकाश अर्थात् अंतरिक्षलोक संधि है अर्थात् तिस विषे पूर्व और उत्तररूप संधान अर्थात् मिलाप करिए है. ऐसा आकाश पूर्वरूप और उत्तर रूपके मध्यरूप है ॥१॥ और वायु संधान है ॥ जिसकर संधान अर्थात् मिलाप करिए है सो संधान कहिए है. इस प्रकार अधिलोकरूप उपासन कह्या. ॥ अब अधिज्योतिषरूप उपासन कहे है ॥ अग्नि पूर्वरूप है, और सूर्य उत्तररूप है और जल संधिरूप है, विजलीयां संधान है इस प्रकार अधि ज्योतिषरूप उपासन कह्या ॥ अब अधिविद्यरूप उपासन कहे है ॥ आचार्य पूर्वरूप है ॥ २ ॥ अंतेवासी अर्थात् शिष्य उत्तररूप है, विद्या संधि है, और प्रश्नोत्तररूप भाषण संधान है. इस प्रकार अधिविद्यरूप उपासन कह्या ॥ अब अधिप्रजरूप उपासन कहे हैं ॥ माता पूर्वरूप है, पिता उत्तररूप है, प्रजा संधि है और प्रजनन अर्थात् ऋतुकालविषे भार्यागमन संधान है ॥ इस प्रकार अधिप्रजरूप उपासन कह्या ॥ ३ ॥ अब अध्यात्मरूप उपा-सन कहे है ॥ नीचेका हनु पूर्वरूप है, ऊपरका हनु उत्तररूप है, वाक् संधि है और जिव्हा संधान है. इस प्रकार अध्यात्मरूप उपासन कह्या ॥ इस रीतिसे यह कथन करी महासंघता अधिकारी पुरुषनको विधिके दिखा-वणे अर्थ ग्रहण करिए हैं ॥ जो पुरुष ऐसे पूर्वोक्त इन महासंघताको जानता है सो पुरुष प्रजाकर पशुकर तथा ब्रह्मवर्चस अर्थात् तेजकर तथा अन्नादि-ककर और स्वर्गादिककर जुडता है अर्थात् प्रजाआदिक फलको पावता है ॥ संधि आचार्य पूर्वरूप है ॥ ऐसे अधिलोकसे जुडता है ॥ यहां जानता है अर्थात् इस पदका उपासन करता है यह अर्थ है ॥ ४ ॥

॥ इति तृतीयोनुवाकः समाप्तः ॥ ३ ॥

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ अथ शिक्षा चतुर्थोनुवाकः प्रारभ्यते ॥

सो इंद्र मुझको बुद्धिसे प्रसन्न अथवा सामर्थ्यवान् करो और तातें मेरे तांई लक्ष्मीकी प्राप्ति करो. इस मंत्रविषे और आगले मंत्रविषे कथन किए लिंगके देखनेसे यहां बुद्धिकी कामनावाले और लक्ष्मीकी कामनावाले पुरुषको तिसकी प्राप्तिके साधन जप और होम कहे हैं ॥ जो ॐकार वेदनके मध्य प्रधान होनेसे श्रेष्ठकी न्याई श्रेष्ठ है और वाणी विषे व्याप्त होनेसे विश्वरूप है अर्थात् सर्वरूप है, इसी निमित्तसे ओंकारका श्रेष्ठपणा है ॥ जिससे ओंकार यहां उपासना करनेयोग्य है; इस कारणसे ऋषभादिक शब्दनसे ओंकारकी स्तुति करने योग्य है, और जो वेदरूप अमृतसे प्रतीत होता भया ॥ अथ आर्त लोक और जो वेदरूप व्याहृतियांसे श्रेष्ठ अर्थात् उत्तम भागको इच्छा करनेवाले और इसीसे तप करनेवाले प्रजापतिसे श्रेष्ठ उत्तम भागरूप होनेकर ओंकार प्रतीत होता भया. जिससे नित्यरूप ओंकारकी उत्पत्ति अनायाससे कल्पना नहीं करिए है; यांतें सो प्रतीत होता भया ॥ सो इस प्रकारका ओंकाररूप इंद्र अर्थात् सर्व कामका स्वामी परमेश्वर मेरेको बुद्धिसे प्रसन्न करो अथवा समर्थ करो ॥ अब बुद्धिके बलकी प्रार्थना करिए है ॥ हे देव! तिस बुद्धिके अधिकारसे मैं अमृत अर्थात् अमरभावके हेतुरूप ब्रह्मज्ञानका धारण करनेवाला होवों ॥ किंवः ॥ मेरा शरीर भक्षण योग्य है और मेरी जिह्वा अतिशय कर मधुर भाषणवाली होवो और मैं दोनों कानोंकर बहुत श्रोता होवों और मेरा कार्यकारणरूप संघात जो है सो आत्मज्ञानके योग्य हो ॥ अब आत्मज्ञानके अर्थही बुद्धिकी याचना करिए है ॥ हे ओंकार! तूं ब्रह्मपरमात्माका कोश है. काहेतें जो तलवारके कोशकी न्याई ब्रह्मकी प्राप्तिका स्थानरूप होनेसे जिससे तूं ब्रह्मका प्रतीक अर्थात् प्रतिमा है, इस कारण तेरे विषे ब्रह्म प्राप्त होवे है, सो तूं ब्रह्मका कोश लौकिक बुद्धिसे आच्छादित है अर्थात् मंदबुद्धि पुरुषोंकर तेरा सद्भाव अज्ञात है, सो तूं मेरे श्रवणपूर्वक आत्मज्ञानादिकका रक्षण कर ॥ यह मंत्र बुद्धिकी कामनावाले पुरुषोंको जपके अर्थ कह्या ॥ अब लक्ष्मीकी कामनावाले पुरुषोंको होमके अर्थ जो मंत्र है वह

कहे है ॥ २ ॥ और आत्माके अर्थात् मेरे वस्त्रोंको गौवोंको और अन्नपानको सर्वदा निर्वाह करनेवाली जो लक्ष्मी है, तिस अजा आदिककर युक्त तथा अन्य पशुकरसहित लक्ष्मीको तिस बुद्धिके बढावणेके पीछे मेरे तांई लैआव स्वाहा ॥ जिससे बुद्धिरहित पुरुषको लक्ष्मी जो है सो अनर्थके वास्ते होवे है, यातें यहां बुद्धिके बढनेके पीछे लक्ष्मीको ल्याव ऐसे कह्या ॥ यहां ल्याव इस अधिकार अर्थात् क्रियापदसे ओंकारही चार तर्फसे संबंधको पावता है. और यहां स्वाहाकार जो शब्द है सो होमके अंतके मंत्ररूप अर्थके दिखानेके अर्थ है ॥ ब्रह्मचारी जो है वह निष्कामभावको करो स्वाहा ॥ ब्रह्मचारी जो है वह यथार्थ ज्ञानको करो स्वाहा ॥ ब्रह्मचारी जो है वह इंद्रियोंके जयको करो स्वाहा ॥ ब्रह्मचारी जो है वह शम अर्थात् मनके निग्रहरूप शांतिको करो स्वाहा ॥ ३ ॥ मैं जनोंके समूहमें यशवाला होवों और अतिशय श्रेष्ठ धनवानोंसे धनवान होवों स्वाहा ॥ किंवः ॥ हे भगवन् ! अर्थात् पूजने योग्य तिस ब्रह्मके कोश (भंडार) रूप तेरे तांई प्रवेश करों अर्थात् प्रवेश करके तेरा अन्य न स्वरूप होओं स्वाहा ॥ हे भगवन् ! सो तूंही मेरे तांई प्रवेश कर अर्थात् मुझ और तुझ दोनोकी एकता होवे स्वाहा॥ हे भगवन् ! तिस सहस्र शाखावाले अर्थात् अनेक भेदवाले तुझविषे मैं पापरूप कृत्यको सौपण करों हों अर्थात् धोवता हूं ॥ जैसे लोकविषे जल जो हैं, वह नीचे देशमें जाते हैं अथवा जैसे मास जो हैं वह संवत्सरको जाते हैं, ऐसे हे विधाता ! ब्रह्मचारी जो है वह मेरे तांई सर्व दिशासे आवो स्वाहा ॥ हे भगवन् ! जैसे श्रमके निवारणका स्थान समीपका गृह है तैसे भक्तोंको सर्व पाप और दुःखके निवारणका स्थान तूं समीप गृह है; यातें मेरे को प्रकाश कर और आपके तांई प्राप्त कर ॥ हे धाता ! विस्तार करनेवाले ब्रह्मचारी जो है वह शमको करे स्वाहा ॥ और सर्व दिशासे आवे स्वाहा ॥ यह एक है ॥ इस विद्याके प्रकरणविषे जो लक्ष्मीकी कामना कथन करी है वह धनके अर्थ है. और धन कर्मके अर्थ है और कर्म संचित पापके क्षयार्थ है. तिस पापके नाश होय विद्या प्रकाश करती है ॥ ३ ॥

॥ इति चतुर्थोनुवाकः समाप्तः ॥ ४ ॥

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ अथ शिक्षा पंचमोऽनुवाकः प्रारभ्यते ॥

ऐसे वर्णोंके संबंधरूप संघताको विषय करनेवाला उपासन कह्या. तिसके पीछे बुद्धिकी कामना और लक्ष्मीकी कामनाके मंत्र कहे. वह मंत्र परंपरासे विद्याके उपयोगार्थ है ॥ अब व्याहृतीरूप ब्रह्मके हृदयके मध्य स्वराज्यफलवाला उपासन कहे हैं ॥ भूः भुवः स्वः यह प्रसिद्ध जो तीन व्याहृतियां स्मरण करिए हैं तिनके मध्य यह चतुर्थ व्याहृति महः है. तिस इस चतुर्थी व्याहृतीको महाचमसका पुत्र जो माहाचमस्य ऋषि हैं सो जानता भया अर्थात् देखता भया ॥ यहां उपदेशसे जो यह माहाचमस्य ऋषिने देखी हुई महः ऐसी जो व्याहृती है सो ब्रह्म है ॥ किस मुख्यतासे है ? तहां कहे हैं ॥ जिससे महत् ब्रह्म है और व्याहृति महः है इस कारणसे तिनकी एकता बने है ॥ फिर सो महः क्या है ? सो आत्मा अर्थात् ब्रह्मका स्वरूप है, जिससे सो महः व्याहृतिरूप कर्मवाला है यातें सो आत्मा है, और जो व्याहृतिरूप लोक, देव और प्राण है वह जिससे महत् ब्रह्म है इस आगे कहनेके वाक्य कर कथन किये व्याहृतिरूप ब्रह्मके देवलोकादिक सर्व अवयवरूप हैं ॥ और जिससे वह सूर्यचंद्र ब्रह्म और अन्नरूपकर व्याप्त होवे है, इस हेतुसे अन्य देवता जो हैं वह अंग अर्थात् ब्रह्मके पादादिक अवयव हैं ॥ यहां देवताका ग्रहण जो है सो उक्तलोकादिकके ग्रहण अर्थ है. जिससे महः ब्रह्म है- इस आगे कहनेके वाक्यको कथन किए व्याहृतिरूप ब्रह्मके देव और लोकादिक सर्व अवयवरूप है, यातें सूर्यादिकनकर लोकादिक वृद्धिको पावते हैं ॥ ऐसे आत्माके अंग वृद्धिको पावते हैं. इस प्रकार श्रुति आगे कहती है ॥ भूः ऐसा प्रसिद्ध यह लोक है, भुवः यह अंतरिक्ष लोक है, स्वः ऐसा यह स्वर्ग लोक है ॥ १ ॥ महः यह सूर्यलोक है. सूर्यसे प्रसिद्ध सर्वलोक वृद्धिको पावते हैं भूः यह प्रसिद्ध अग्नि है, भुवः यह वायु है, स्वः यह सूर्य है, महः यह चंद्रमा है ॥ चंद्रमासे प्रसिद्ध सर्व ज्योति अर्थात् तारामंडल वृद्धिको पावते हैं ॥ भूः यह प्रसिद्ध ऋचः अर्थात् ऋग्वेदके वाक्य हैं, भुवः यह साम अर्थात् सामवेदके वाक्य हैं, स्वः यह यजूंषि अर्थात् यजुर्वेदके वाक्य हैं ॥ २ ॥

महः यह ब्रह्म अर्थात् ॐकार है ॥ ब्रह्मसे प्रसिद्ध सर्व वेद वृद्धिको पावते हैं ॥

भूः यह प्रसिद्ध प्राण हैं, भुवः यह अपान है, स्वः यह व्यान है, महः यह अन्न है ॥ अन्नसे प्रसिद्ध सर्व प्राण वृद्धिको पावते हैं ॥

वह प्रसिद्ध यह भूः भुवः स्वः और महः ऐसी चार व्याहृतियां जो हैं वह एक एक चार होई चार प्रकारकी होवे है ॥ यह व्याहृतियां कैसे कल्पना करी है ॥ तैसे तिनका उपदेश जो है सो उपासनाके नियमार्थ है ॥ वह व्याहृति जैसे कथन करी है तैसे तिनको जो जानता है सो ब्रह्मको जानता है ॥ ब्रह्मभावरूप स्वराज्यकी प्राप्तिके हुए सर्व देव अंगभूत हुए इस विद्वानकेतांई बलिदानको ले आवते हैं. यह लोक और यजुर्वेद दोनोंको जानता है ॥ ३ ॥

॥ इति पंचमोनुवाकः समाप्तः ॥ ५ ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मनेनमः ॥ ...वन्! सो

॥ अथ शिक्षा षष्ठोनुवाकः प्रारभ... एकता होवे स्वाहा॥

...दवाले तुझविषे मैं पाप-

भूः, भुवः, स्वः इन तीन व्याहृतिरूप जो अन्य... लोकविषे जल जो हैं, है इस वाक्यमें हिरण्यगर्भ व्याहृतिरूप ब्रह्मके अंग हैं. ...सरको जाते हैं, जिसके वह देवता अंगभूत हैं तिस इस ब्रह्मके साक्षात् ज्ञानके अर्थ और उपासनाके अर्थ विष्णुके स्थान शालिग्रामकी न्याई हृदयादिक आकाशरूप स्थान कहिए हैं ॥ जिससे तिस स्थान विषे उपासन किया हुआ मनोमय भावादिक धर्म कर युक्त ब्रह्म हस्तामलककी न्याई साक्षात जानिए हैं. इस कारणसे सो स्थान और सर्वात्मभावकी प्राप्तिके अर्थ मार्ग कहनेको योग्य है इस अभिप्रायसे इस षष्ठानुवाकके अर्थका आरंभ करिए है ॥

सो जो यह हृदयके भीतर आकाश है तिस विषे सो यह पुरुष है ॥ पुरियोंमें रहनेसे अथवा पृथ्वी आदिक लोक इस कर पूर्ण है इस हेतुकर यह पुरुष कहिए है. सो पुरुष मनोमय है जिसकर पुरुष मनन अर्थात् विचार करे ऐसा जो अंतःकरण सो मन है; जिससे पुरुष तिसका अभिमानी

अथवा तिस मनरूप लिंगवाला है, और सो पुरुष मरणधर्मरहित अमृतरूप है और हिरण्मय अर्थात् प्रकाशमय है अब तिस उक्त प्रकारके लक्षणवाले हृदयाकाशविषे साक्षात किए विद्वानके आत्मरूप पुरुषके ऐसे स्वरूपके ज्ञानके अर्थ मार्ग कहिए हैं. हृदयके ऊपर प्रवृत्त भई जो सुषुम्ना नाम नाडी है सो मुखसे प्रसिद्ध तालुके देशके मध्यस्तनकी न्याई मांसका खंड स्थित है तिसके मध्य प्राप्त है जहां यह केशोंका अंत अर्थात् मूलविभाग कर वर्तता है ऐसा जो मस्तक देश उस देशको पाकर अर्थात् तहां निकसी हुई मस्तकके कपालनको भेदन करके जो निकसी है सो सुषुम्ना नाडी इंद्रयोनि अर्थात् इंद्र जो ब्रह्म तिसकी प्राप्तिका योनि अर्थात् मार्ग (द्वार) है ॥ तिसही नाडीसे मनोमयरूप आत्माके देखनेवाला विद्वान मस्तकसे निकसके इस लोकका अधिष्ठाता जो भूः इस व्याहृतिरूप महत् ब्रह्मका अंगरूप अग्नि है तिस अग्नि विषे स्थित होवे है अर्थात् अग्निरूपसे इसलोकको पावता है ॥ तैसे भुवः इस द्वितीय व्याहृतिरूप वायुविषे स्थित होवे हैं ॥ १ ॥ स्वः इस तृतीय व्याहृतिरूप सूर्य विषे स्थित होवे है, और महः इस अंगी ब्रह्मकी स्वरूपभूत चतुर्थी व्याहृतिरूप ब्रह्मविषे स्थित होवे हैं तिन विषे आत्मभावसे स्थित होकर ब्रह्मभूत हुआ स्वराज्यको पावता है अर्थात् जैसे ब्रह्म है तैसे अंगभूत देवनका आपही राजा अर्थात् अधिपति होवे हैं ॥ सर्व देव अंगभूत होय जैसे ब्रह्मकेताई बलिदान देते हैं तैसे इसकेताई बलिदान देते हैं ॥ जो ऐसे जाननेवाला है सो विद्वान् मनके पतिको पावता है. जिससे ब्रह्म सर्वात्मा है और जिससे सो सर्व मनकर मनन करिए है यातें सो ब्रह्म सर्व मनका पति है उसको विद्वान् पावता है ॥ किंचः ॥ सो सर्व वाणियोंका पति होवे है. तैसेही चक्षुका पति होवे है, श्रोत्रका पति होवे है और विज्ञान अर्थात् बुद्धियोंका पति होवे है ॥ अर्थ यह जो सर्वात्मा होनेसे सर्व प्राणियोंके कर्णों कर तिसवाला होवे है ॥ किंचः ॥ यातें भी यह अर्थात् आगे कहनेका ब्रह्मका विशेषण अत्यंत अधिक होवे है सो क्या है? तहां कहे है आकाश है शरीर जिसका अथवा आकाशकी न्याई सूक्ष्म है शरीर जिसका ऐसा जो आकाश शरीरवाला यह प्रसंगमें प्राप्त भया ब्रह्म सो सत्यस्वरूप है. मूर्त और अमूर्तमय सत्य है स्वरूप अर्थात् स्वभाव जिसका ऐसा जो यह ब्रह्म सो

सत्यस्वरूप कहिए हैं और सो यह ब्रह्म प्राणाराम है अर्थात् प्राणोंविषे रमण करनेसे सो ब्रह्म प्राणाराम स्वरूप कहिए है और सो ब्रह्म मनानंद है अर्थात् मन है आनंद अर्थात् सुखकारी जिसको ऐसा जो ब्रह्म सो मनानंद कहिए है. और सो ब्रह्म शांतिसमृद्ध है ॥ जिससे शांति अर्थात् उपशमरूप समृद्धिको पाया हुआ सो प्राप्त होवे है. इस कारणसे सो शांतिसमृद्ध कहिए है. अथवा शांतिसे समृद्धि अर्थात् विभूतिको पाया हुआ प्राप्त होवे है यातें शांतिसमृद्ध कहिए हैं ॥ और सो ब्रह्म अमृत है अर्थात् सो ब्रह्म मरण धर्मसे रहित है ॥ ऐसे मनोमय भावादिक धर्मनकर विशिष्ट उक्त प्रकारका सो ब्रह्म है उसको हे प्राचीनयोग्य अर्थात् शिष्य तूं उपासन कर. यह जो आचार्यके वचनका कथन है सो आदरके अर्थ है. वायु विषे और अमृतरूप एक है ॥ २ ॥

॥ इति षष्ठोनुवाकः समाप्तः ॥ ६ ॥

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ अथ सप्तमोनुवाकः प्रारभ्यते ॥
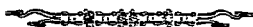
यह जो उपासना करनेयोग्य व्याहृतिरूप ब्रह्म कह्याहै तिसका अब पृथ्वी-आदिक पंचके समुदायको पांक्तस्वरूपसे उपासन कहे है ॥ जिससे पृथ्वी आदिक पंचसंख्याके योग्यसे पांक्तनामक छंदका संपादन होवेहै, यातें पृथ्वी आदिक सर्वको पांक्तभाव है और यज्ञ जो है सो पांक्त है ॥ पंच पाद जो है वह पंक्तिरूप है तिसवाला जो कोई वेदका छंद है सोई पंक्ति कहिए है ॥ जिससे यज्ञ जो है सो यजमान तथा यजमानकी पत्नी और देव तथा मनुष्य और वित् इन पंचकर संपादन करिए हैं; इसकारणसे पंक्तिछंदके सादृश्यके संपादनसे यह पांक्त कहिए हैं ॥ तिस हेतुकर जो यह लोकसे आदि लेकर आत्मापर्यंत जगत है तिसको यज्ञभावरूप पांक्त कल्पते हैं ॥ तिस कल्पित यज्ञकर पांक्तरूप प्रजापतिको पावता है ॥ सो यह पृथिवी आदिक पांक्त कैसे है. तहां कहेहैं ॥ पृथ्वी, अंतरिक्ष, स्वर्गलोक, दिशा, अवांतर दिशा, इस प्रकारका यह लोकरूप पांक्त है ॥ अग्नि, वायु, सूर्य, चंद्रमा, नक्षत्र, यह देवता-

रूप पांक्त है ॥ जल, औषधियाँ, वनस्पतियाँ, आकाश, आत्मा, यह भूतरूप पांक्त है ॥ यहां आत्मा जो कहा है सो विराट्रूप हुए आत्माकी मुख्यतासे है ॥ ऐसे अधिभूतरूप पांक्त कहा ॥ यहां अधिभूतरूप पांक्त अधिलोक अधिदेवरूप दोनो पांक्तनका उपलक्षक है. अब अध्यात्मरूप तीन पांक्त कहे हैं ॥ प्राण अपान व्यान उदान समान यह वायुरूप पांक्त है ॥ चक्षु श्रोत्र मन वाक् त्वक् यह इंद्रियरूप पांक्त है ॥ चर्म मांस नाडी अस्थि मज्जा यह धातुरूप पांक्त है ॥ इतनाही यह सर्व अध्यात्म अर्थात् अंतर और बाह्य जगत पांक्तरूप हैं ॥ ऐसे कल्पना करके वेदका ज्ञाता कोई ऋषि कहताभया ॥ क्या कहताभया ? तहां कहेहैं ॥ प्रसिद्ध यह सर्व पांक्त है ॥ अध्यात्मरूप पांक्तसेही संख्याकी तुल्यतासे बाह्य पांक्तको पूर्ण करै अर्थात् एकरूप होनेकर जाणता है ॥ अर्थ यह जो यह सर्व पांक्त है ऐसे जो जानता है सो प्रजापतिरूप होवे है, और सर्व एक है ॥ १ ॥

॥ इति सप्तमानुवाकः समाप्तः ॥ ७ ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ अथ शिक्षा ष्टमोऽनुवाकः प्रारभ्यते ॥

ऐसे ग्रंथमें व्याहृतिरूप ब्रह्मका उपासन कह्या, पश्चात् पांक्तरूपसे उपासन कह्या, अब सर्व उपासनाका अंगभूत ओंकारका उपासन कहेहैं जिससे पर और अपर ब्रह्मकी दृष्टिसे उपासन करिए हैं, ऐसा जो ॐकार सोशब्दमात्र है. तोभी पर अपर ब्रह्मकी प्राप्तिका साधन होवे है ॥ जिससे विष्णुके प्रतिमाकी न्याई सो ॐकार परब्रह्म और अपर ब्रह्मका आश्रय अर्थात् उपकारक है, यातें ॐकार पर और अपर ब्रह्मकी प्राप्तिका साधन संभवे है ॥ ॐ इस प्रकारका शब्दरूप ब्रह्म है, ऐसे मनकर उपासन करे जिससे ॐ इसप्रकारका शब्द यह सर्व है अर्थात् शब्दरूप यह सर्वमें व्याप्त है और ॐ इसप्रकारका यह अनुकरण है; जिससे अन्यकर करता अथवा पावता हूं ऐसे कथन किएको श्रवणकर अंन्य पुरुष ॐ ऐसा अनुकरण करता है, यातें ॐकार अनुकरण है और ॐ ऐसे श्रवण कराय, इस कथनको प्राप्त होय पुरुष तिस ॐकारके

उच्चारणपूर्वक श्रवण करावते हैं ॥ तैसे सामवेदके गायन करनेहारे जो हैं वह ॐ इस प्रकार सामोंको गायन करे है, और ऋचः के कथन करनेहारे जो है वह ॐ सो ऐसे शास्त्र अर्थात गायनरहित ऋचः को कथन करे हैं. तैसे अध्वर्य्यु अर्थात् यज्ञविषे यजुर्वेदीय ऋत्विज जो है सो ॐ ऐसे प्रतिगर अर्थात् वेदके शब्दविशेषको होम करनेवालेके कथन कथनकेप्रति उच्चारता है ब्रह्मा अर्थात् यज्ञकर्म कर्ता ऋत्विज विशेष जो है सो ॐ ऐसे अनुमोदन करे है और ॐ ऐसे अग्निहोत्रको अनुमोदन करे है अर्थात होताकर होम करों, ऐसे कथन किए हुए ॐ ऐसेही अनुमोदन करेहैं और ब्राह्मण जो है सो ॐ ऐसेही भाषण करनेको चाहता हुआ अध्ययन करता हुआ ॐ ऐसेही कहता है अर्थात अध्ययन करणेको ॐ ऐसे ग्रहण करता है, और ब्रह्म अर्थात् वेदको पावूंगा ऐसे इच्छा करता हुआ ब्रह्मको पावता है अथवा ब्रह्म अर्थात् परमात्माको पावूंगा ॥ ऐसे आत्माके प्राप्त होनेकी इच्छा करता हुआ ॐ ऐसेही कहता है. सो चैतन्यरूप ॐकारसे ब्रह्मको पावताही है. जिससे ॐकारपूर्वक प्रवृत्त भई क्रियाको फलवानपणा है, यातें ॐकाररूप ब्रह्मको उपासन करे यह संपूर्ण वाक्यका तात्पर्य है ॥ ॐ दश ॥ १ ॥

॥ इत्यष्टमोनुवाकः समाप्तः ॥ ८ ॥

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ अथ नवमोनुवाकः प्रारभ्यते ॥

विज्ञानसेही स्वाराज्यको पावता है. ऐसे कथन करनेसे श्रौत अर्थात श्रुत्युक्त और स्मार्त अर्थात् स्मृत्युरूप कर्मोंका व्यर्थपणा प्राप्त भया, यातें उनके व्यर्थपणाके निवृत्त करनेवास्ते और कर्मोंको पुरुषार्थकेप्रति साधनभावके दिखावणे अर्थ आगेके अनुवाकका आरंभ करते हैं ॥ ऋत अर्थात् शास्त्रादिककर बुद्धिविषे निश्चित अर्थ और स्वाध्याय अर्थात् अध्ययन करना, और प्रवचन अर्थात् अध्ययन करावना अथवा वेदका पाठरूप ब्रह्मयज्ञ यह अनुष्ठान करनेको योग्य है और सत्य भाषण और स्वाध्याय तथा प्रवचन यह अनुष्ठान करनेको योग्य है कृच्छ्रचांद्रायणादिक तप और स्वाध्याय तथा

प्रवचन यह अनुष्ठान करनेको योग्य है और इंद्रियोंका दमन करनारूप दम और स्वाध्याय तथा प्रवचन यह अनुष्ठान करनेको योग्य है ॥ शम अर्थात् विषयवासनाका रोकणा और स्वाध्याय तथा प्रवचन अनुष्ठान करनेको योग्य है और अग्नि जो है सो धारण करनेको योग्य है और स्वाध्याय तथा प्रवचन करनेयोग्य है, अग्निहोत्र अर्थात होम करना और स्वाध्याय तथा प्रवचन करनेयोग्य हैं और अतिथि पूजने योग्य है. तिसके साथ स्वाध्याय तथा प्रवचन करनेको योग्य है. और मानुष जो विवाहादिक लौकिक व्यवहार सो जैसे प्राप्त होवे तैसे करनेको योग्य है, और तिसके साथ स्वाध्याय तथा प्रवंचन करनेको योग्य है ॥ और प्रजा उत्पन्न करने योग्य है और तिसके साथ स्वाध्याय तथा प्रवचन करने योग्य है ॥ और प्रजन जो ऋतुकालमें भार्यांका गमन और स्वाध्याय तथा प्रवचन करने योग्य है ॥ और प्रजाति अर्थात पौत्रोत्पत्ति पुत्र जो है सो स्थापन करनेको योग्य है और तिसके साथ स्वाध्याय तथा प्रवचन करनेको योग्य है ॥ यहां इन सर्व कर्मोंकर युक्त पुरुषकोभी स्वाध्याय और प्रवचन यत्नसे अनुष्ठान करनेको योग्य हैं ॥ इस प्रयोजन वास्ते सर्वकर्मके साथ स्वाध्याय प्रवचनका ग्रहण है, जिससे स्वाध्यायके अधीन अर्थका ज्ञान है और अर्थ ज्ञानके अधीन परम श्रेय है ॥ और प्रवचन जो है सो तिसके अविस्मरणार्थ है, अथवा धर्मकी वृद्धि अर्थ है, यातें स्वाध्याय और प्रवचन विषे आदर करने योग्य है ॥ सत्यही अनुष्ठान करनेको योग्य है, ऐसे सत्यवचन नामवाला रथीतर नामक कुलका गोत्र अर्थात् मूल पुरुष ऐसा राथीतर आचार्य मानता है ॥ तपही करने योग्य है ऐसे तपोनित्यः इसनामवाला पुरुशिष्ट ऋषिका पुत्र पौरुशिष्टि आचार्य मानता है ॥ स्वाध्याय और प्रवचन ही अनुष्ठान करनेको योग्य है ऐसे नाक नामवाला मुद्गल ऋषिका पुत्र ऐसा मौद्गल आचार्य मानता है. ॥ जिससे सोई अर्थात स्वाध्याय प्रवचन तप है सोई तपतां तैसो अनुष्ठान करनेको योग्य है ॥ पूर्व कथन किएभी सत्यतप स्वाध्याय प्रवचनका फिर कथन आदरके अर्थ है ॥ प्रजा और स्वाध्याय और प्रवचन और षट् अनुष्ठान करनेको योग्य है ॥ १ ॥

॥ इतिनवमोनुवाकः समाप्तः ॥ ९ ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ अथ शिक्षादशमोनुवाकः प्रारभ्यते ॥

मैं वृक्षका प्रेरक हूं, इस मंत्रका उपदेश स्वाध्यायके अर्थ है और स्वाध्याय प्रकरण सो विद्याकी उत्पत्तिअर्थ है. जिससे यह प्रकरण विद्याके अर्थ है ॥ इस हेतुसे स्वाध्यायसे शुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषको विद्याकी उत्पत्ति कल्पना करिए है ॥ मैं उच्छेदरूप संसार वृक्षका अंतर्यामीरूप सो प्रेरक हूं, मेरी पर्वतके पृष्ठकी न्याई कीर्ति उठी है और मैं उर्द्धपवित्र हूं अर्थात् तिस सर्वात्मा मुझका उर्द्ध अर्थात् कारण पवित्र अर्थात् ज्ञानस्वरूप परम ब्रह्म है यातें मै उर्द्धपवित्र हूं ॥ और सूर्यकी न्याई शुद्ध अमृत हूं अर्थात् जैसे सूर्य विषे सैंकडे श्रुति स्मृतिकर सिद्ध शुद्ध अमृतरूप आत्मतत्त्व है ऐसेही मैं शुद्ध आत्मतत्त्व हूं. और मैं प्रकाशमानही आत्मतत्वरूप धन हूं अथवा आत्मतत्त्वका प्रकाशक होनेसे प्रकाशवाला और मोक्षसुखका हेतु होनेसे धनकी न्याई धनरूप ब्रह्मज्ञान मुझको प्राप्त भया है ॥ और मैं सर्व लक्षणवाली शोभनीक है मेधा अर्थात् बुद्धि जिसकी ऐसा सुमेधा हूं और इसीसे अमृत अर्थात् मरणधर्मसे रहित हूं ॥ और अक्षीण अर्थात् अव्यय हूं अथवा अमृतसे युक्त मैं हूं, इत्यादिक ब्राह्मण भाग है ॥ ऐसा ब्रह्मभूत ब्रह्मवेत्ता त्रिशंकु नामक ऋषिका वेदानुवचन है अर्थात् वेद जो आत्माकी एकताका विज्ञान तिसकी प्राप्तिकेतांई जो वचन सो वेदानुवचन कहिए है ॥ इस प्रकार श्रौतस्मार्त रूप नित्यकर्म विषे युक्त भये निष्काम और परम ब्रह्मके जाननेकी इच्छावाले पुरुषको आत्मा आदिकको विषय करनेवाले ऋषि उक्त ज्ञान प्रगट होवे है ॥ मैं इत्यादि षट् मंत्र है ॥ १ ॥

॥ इति दशमोनुवाकः समाप्तः ॥ १० ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ अथ शिक्षैकादशोऽनुवाकः प्रारभ्यते ॥

वेदको पढायकर आचार्य जो है सो शिष्यकेतांई ग्रंथके धारणसे पीछे शिक्षा करे है अर्थात् तिसके अर्थको ग्रहण करावे है ॥ आचार्य कैसी शिक्षा करे है

तहां कहे है ॥ हे शिष्य ! सत्य अर्थात् प्रमाणानुसार जाने हुए अर्थको कथन कर, तैसे धर्मको आचरण कर, स्वाध्याय अर्थात् अध्ययनसे प्रमादको मतकर, विद्याके प्रति उपकार वास्ते आचार्यकेअर्थ प्रिय अर्थात् अक्षत धन देकर और आचार्यकी आज्ञा पाकर अपने समान वर्णवाली स्त्रीको विवाह करके प्रजाकी अर्थात् संततिका उच्छेद मत कर, सत्यसे प्रमाद करनेयोग्य नही है, धर्मसे प्रमाद करनेको योग्य नही है, कुशल अर्थात् आपके रक्षणरूप अर्थवाले कर्मसे प्रमाद करनेको योग्य नहीं है, विभूतिरूप अर्थवाले मंगल कर युक्त कर्मसे प्रमाद करनेको योग्य नही है, स्वाध्याय और प्रवचनसे प्रमाद करनेको योग्य नही है ॥ १ ॥ देव तथा पितृकार्यसे प्रमाद करनेको योग्य नहीं है अर्थात् देव जिसका ऐसा हो, पितृदेव अर्थात् पिता है देव जिसका ऐसा हो, आचार्य देव पितृकर्म करने योग्य है. हे शिष्य ! तूं मातृदेव अर्थात् माता है देव जिसका ऐसा हो, पितृदेव अर्थात् पिता है देव जिसका ऐसा हो आचार्य देव अर्थात् आचार्य है देव जिसका ऐसा हो, अतिथि देव अर्थात् अतिथि है देव जिसका ऐसा हो, तात्पर्य यह है जो माता आदिक यह चार देवताकी न्याई उपासना करने योग्य है और जो अन्य श्रेष्ठाचरणरूप अनिंदत कर्म है वह तेरेकर सेवन करनेको योग्य है. और अन्य जो निंदित कर्म हैं वह श्रेष्ठ पुरुषोंकर किए हुएभी सेवन करनेको योग्य नहीं है ॥ और जो हमारे आचार्यनके वेदाविरुद्ध श्रेष्ठाचरण है वही तेरेकर उपासन करनेको योग्य है अन्य आचार्यनके किएभी विपरीताचरण करनेको योग्य नही हैं ॥ २ ॥ और कईएक जो आचार्यपणेआदिक धर्मकर विलक्षणताको प्राप्त भये. हम आपसे अत्यंत श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं क्षत्रिय आदिक नही हैं तिनका आसनके देनेआदिकसे तेरेकर श्रमका निवारण करनेको योग्य है. अथवा तिनके वार्ताके निमित्तरूप आसनके सिद्ध भये श्रमका निवारणभी करनेको योग्य है; किंतु केवल तिनके कथन अर्थके सार का ग्राही होना चाहिए ॥ किंचः ॥ जो कुछ देना है सो श्रद्धासे ही देनायोग्य है, अश्रद्धासे देनायोग्य नही है; और लक्ष्मीभीसे देना योग्य हैं, लज्जासे देना योग्य है, भयसे देना योग्य है, संवित् अर्थात् मृत्युआदिकके कार्यसे देना योग्य है, अथवा तेरेको ऐसे वर्तमान होते जब अर्थात् कदाचित तुझको श्रौत अथवा स्मार्तकर्मविषे संशय होवे अथवा आचरण विषे संशय होवे

है ॥ ३ ॥ तब जो तिस देशकालविषे विचारमें समर्थ और कर्मविषे अथवा आचरणविषे युक्त और अन्य कार्यविषे लगे हुए स्वतंत्र और अक्रूर बुद्धिवाले पुण्यके अर्थी अर्थात् भोग्यकी कामनासे रहित ब्राह्मण होवे है ॥ वह जैसे तिसं कर्मविषे अथवा आचरणविषे वर्तमान होवे तैसे तुमभी तहां वर्तमान हो और किसीभी संशयरहित आरोपित दोषकर युक्त जो पुरुष है तिनविषे जो तहां विचारमें समर्थ कर्म अथवा आचरण विषे लगेहुए और अन्यकार्यविषे लगेहुए क्रूरतासे रहित बुद्धिवाले और पुण्यके अर्थी ब्राह्मण होवे वह जैसे तिसविषे वर्तमान होवे तैसे तुमभी तिसविषे वर्तमान होवो ॥ जिससे यह आदेश अर्थात् विधि है, यह पुत्रादिकनको उपदेश है, यह वेदका रहस्य वेदार्थ है, और यहही अनुशासन अर्थात् ईश्वरका वचन है ॥ और जिससे ऐसे यह करनेको योग्य है ऐसे प्रसिद्ध यह करनेको योग्य है. ॥ यहां दोवार कथन आदर केअर्थ है॥स्वाध्याय और प्रवचनसे प्रमाद करनेयोग्य नहीं ॥ वह तेरेकर करनेको योग्य है ॥ अथवा संशय होवे तिसविषे वर्तमान होवो ॥ और सप्तमंत्र हैं ॥ ४ ॥

॥ इत्येकादशोऽनुवाकः समाप्तः ॥ ११ ॥

॥ अथ शिक्षाद्वादशोऽनुवाकः प्रारभ्यते ॥

अब कथन करी विद्याकी प्राप्तिविषे विघ्नोंके निवारणार्थ शांतिको पठन करेहैं, प्राणवायु और दिनका अभिमानी जो मित्रदेवता अर्थात् सूर्य सो हमको सुखकारी होवो, तैसे रात्रि तथा अपानवृत्तिका अभिमानी वरुणदेवता हमको सुखकारी होवो, चक्षु और आदित्यमंडलमें स्थित अर्य्यमानाम देवता हमको सुखकारी होवो, तैसे इंद्र और बृहस्पति हमको सुखकारी होवो तैसे उरुक्रम अर्थात् प्रथम वामनरूप होकर पीछे विष्णुरूप होनेवाला जो विष्णु है सो हमको सुखकारी होवो ॥ ब्रह्मकेतांई मैं नमस्कार करता हूं ॥ हेवायु! मैं तेरेतांई नमस्कार करता हूं, जिससे तूंही प्रत्यक्ष ब्रह्म है, यातें मैं तेरेकोही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहताहूं, और ऋत कहताहूं, सत्य कहताहूं, सो अपर ब्रह्म मुझ अपरविद्याके अर्थीको रक्षण करो, सोई वक्ताको रक्षण करो ॥ सत्य कहता हूं और पंचमंत्र हैं ॥ ॐम् शांतिः शांतिः शांतिः ॥ १ ॥

हमको सुख, शिक्षाको, हमको साथही, जो वेदनके मध्य पृथ्वी, सो जो, पृथ्वी, ॐ ऐसे, ऋत और मैं वृक्षका, वेदको पढायकर, ऐसे द्वादश अनुवाक हमको सुखकारी होवो॥मह ऐसे सूर्य है, अन्य नहीं. त्रयोविंशाति मंत्र हैं ॥ हरिओम् ॥ हमको सुखवक्ताको सुख होवो ॥ २ ॥

॥ इतिद्वादशोऽनुवाकः समाप्तः ॥ १२ ॥

इतिश्रीयजुर्वेदीय तैत्तिरीयोपनिषद्गतशिक्षाध्यायरूपा प्रथमवल्ली समाप्ता१॥

॥ शुभमस्तु ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

॥ॐ श्रीपरमात्मनेनमः॥

अथ श्रीतैत्तिरीयोपनिषद्गतब्रह्मानंदवल्ली नामद्वितीयोध्यायः प्रारभ्यते ॥

पूर्वोक्त विद्याके उत्कृष्टताके प्रतिबंधकी निवृत्तिअर्थ शांति पठन करी. अब आगे तो कहनेयोग्य ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिविषे विघ्नकी निवृत्तिअर्थ शांति पठन करिए है ॥ सोई परमेश्वर हमको अर्थात् शिष्य और आचार्यको रक्षण करो, सोई हमको भोगावो अर्थात् पालन करो. सोई विद्यारूप निमित्तवाले समर्थको संपादन करो. तेजस्वी भये हमारा अध्ययन तेजस्वी अर्थात् अर्थज्ञानके योग्य होवो और विद्याग्रहणकेनिमित्त शिष्य और आचार्यके प्रमादके किए अन्यायसे प्राप्त भया जो द्वेष तिसकी निवृत्तिअर्थ यह प्रार्थना है ॥ जो हम शिष्य और गुरु दोनों परस्पर द्वेषको मत प्राप्त होवें. ओं अर्थात् सत्य कहता है ॥ शांति-हो, शांतिः हो, शांतिः हो ॥ यहां तीनवार जो कथन है. सो आदरकेअर्थ है और आगे कहनेकी विद्याके विघ्ननिवृत्तिअर्थ है ॥ यह शांति जो है सो अविघ्नकर आत्मविद्याकी प्राप्तिकी प्रार्थनाके निमित्त है. तिस विद्याकी प्राप्ति-रूप मूलवालाही परमेश्वर है ॥ पूर्व अध्यायविषे प्रथम संघताको विषय करनेवाले कर्मोंसे अविरुद्धउपासन कहकर पीछे व्याहृतिरूपद्वारसे और स्वारा-ज्यरूप फलसे अंतःकरणकेअंदर सोपाधिक आत्माका ज्ञान कह्या. इतनेकर सर्वसंसारकी निवृत्तिका साधन कोईएक है, यह जाणिए हैं, यातें सर्व अनर्थके

बीजरूप अज्ञानकी निवृत्तिअर्थ सर्वउपाधिके भेदसे रहित आत्माके ज्ञानवास्ते यह द्वितीय अध्यायका आरंभ करियेहै . इस ब्रह्मविद्याका प्रयोजन अविद्याकी निवृत्ति है, सो सर्वके आत्मारूप ब्रह्मको विषय करनेवाली विज्ञानसे अत्यंत संसारकी अर्थात् अज्ञानसहित कार्य संसारकी निवृत्ति हुए परम ब्रह्मरूप मोक्ष की प्राप्ति होवेहै ॥ सोई सूत्ररूप मंत्र कथन करेहै ॥

॥ **ओं ब्रह्मविदाप्नोति परम्** ॥ अर्थ यह है ब्रह्मके जाननेवाला ब्रह्मवेत्ता सर्वसे अधिक तिसही परम ब्रह्मको पावताहै इस संक्षेपसूत्ररूप मंत्रका अर्थ सारे उपनिषत् पर्यंत है, यातें अब प्रथम ब्रह्मके अर्थको कहेहैं ॥

ब्रह्मके लक्षण दोप्रकारके हैं. एक स्वरूपलक्षण, द्वितीय तटस्थ लक्षण है. प्रथम तिस ब्रह्मके स्वरूप लक्षणको श्रुति कथन करेहैं, **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म** ॥ अर्थ यह है सत्यरूप ज्ञानरूप अनंतरूप ब्रह्म है ॥ सत्य अर्थात् असत्से विलक्षण त्रिकालाबाध और ज्ञान अर्थात् जडसे विलक्षण अलुप्तप्रकाशरूप चैतन्य और अनंत अर्थात् देशकालवस्तुके परिच्छेदसे रहित, ऐसे सत्यज्ञानअनंतस्वरूप ब्रह्मको जो अव्याकृतनामवाले परम आकाशमें अथवा हृदयकर अवच्छिन्न परम आकाशविषे वर्तमान बुद्धिरूप गुहामें साक्षीरूपसे स्थित ब्रह्मको जो जानता है सो विद्वान् ब्रह्मसे अभिन्न अभेदरूप होनेसे यातें ब्रह्मभूत हुआ सर्वकामना अर्थात् भोगोंको भोक्ता है ॥ इसप्रकार ब्रह्मके स्वरूप लक्षण कथन करके अब तटस्थलक्षण निरूपण करतेहैं. ब्रह्माभिन्न जो यह आत्मा है, तिस ब्रह्मस्वरूपसे अभिन्न इस आत्मासे आकाश उत्पन्न होता भया, फिर तिस शब्दगुणवाले आकाशसे वायु उत्पन्न होता भया, फिर तिस शब्दस्पर्शगुणवाले वायुसे अग्नि उत्पन्न होताभया, फिर तिस शब्द स्पर्श तथा रूप गुणवाले अग्निसे जल उत्पन्न होताभया, फिर तिस शब्द स्पर्श रूप तथा रसगुणवाले जलसे पृथ्वी उत्पन्न होती भयी, फिर तिस शब्द स्पर्श रूप रस गंध इन पंच गुणवाली पृथिवीसे औषधियां उत्पन्न हुई, फिर तिन औषधियोंसे अन्न फिर अन्नसे रेत अर्थात् वीर्य फिर तिस रेतसे मस्तकहस्तादिक अवयववाला पुरुष उत्पन्न होताभया, सो प्रसिद्ध यह पुरुष अन्नरसमय है अर्थात् अन्नके रसका कार्य है. सो यद्यपि सर्वशरीर अपने अपने खानेयोग्य अन्नके रसके

कार्य होनेसे, यातें सर्व शरीर अन्नरसमय पुरुषरूप है, तथापि मनुष्यशरीरको प्रधानता होनेसे यातें मनुष्यशरीरको पुरुषरूपसे विशेषकर प्रसिद्धता है ॥

अब तित्तिरिऋषि अपने शिष्यको आत्मज्ञानके निमित्त अंतर्मुख वृत्ति करावनेवास्ते इस अन्नरसमय पुरुषरूप शरीरको पक्षीरूप करके कल्पना करे है. जो तिस इस अन्नरसमय पुरुषरूप पक्षीका यह प्रसिद्ध शिरही शिर है, और दक्षिणबाहु दक्षिण पक्ष है और वाम बाहु उत्तरपक्ष है अर्थात् वाम है. और यह देहका मध्यम भाग अवयवनका आत्मा है और नाभिके नीचे भागके जो अंग है सो पुच्छ प्रतिष्ठा अर्थात् आधार है ॥ तिसही उक्त अर्थविषे अन्नमयके स्वरूपका प्रकाशक यह श्लोकरूप मंत्र प्रमाण होवे है ॥ १ ॥

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः समाप्तः ॥ १ ॥

॥ अथ ब्रह्मानन्दवल्लीद्वितीयोऽनुवाकः प्रारभ्यते ॥

अन्नसे प्रसिद्ध जो कईएक विलक्षण पृथ्वीको आश्रय करनेवाली स्थावर जंगमरूप प्रजा है वह सर्व उत्पन्न होवे है और उत्पन्न हुई अन्नसेही जीवे है अर्थात् प्राणनको धारण करे है. पीछे अंतविषे जीवनवृत्तिके समाप्त हुए इस अन्नके तांई लीन होवे है जिससे अन्न जो है सो भूतन अर्थात् प्राणियोंके मध्य ज्येष्ठ है. यातें सर्व प्रजा अन्नसे उपजे है और अन्नकर जीवे है और अन्न विषे लय होवे है जिससे ऐसे है तिससे अन्न जो है सो सर्व प्राणधारीके देह के दाहकी निवृत्ति करनेवाला औषध कहिए है. अब अन्नरूप ब्रह्मके जानने-वाले पुरुषको फल कहे हैं. जो पुरुष उक्त प्रकार अन्नरूप ब्रह्मको उपासते हैं वह निश्चयकर अन्नके समूहको पावते हैं ॥ कैसे पावते हैं तहां कहे हैं ॥ जो जिस कारणसे अन्नही भूतनके मध्य ज्येष्ठ है यातें अन्न सर्वको औषध है काहेतें जो अन्नसे भूत उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हो अन्न करके बढते हैं. यह फिर जो कथन है सो प्रसंगकी समाप्ति अर्थ है ॥ अब अन्न शब्दका अर्थ करते हैं ॥ जिससे जो अन्न अर्थात् अन्नमयकोश स्थूल शरीर भूतनकर भक्षण करिए है और आप भूतनको भक्षण करे हैं. यातें सो अन्न कहिए है ॥

अब अन्नमयसे आदि लेकर आनंदमयकोशपर्यंत जो आत्मा है तिससे अत्यंत आंतर जो ब्रह्म है तिसको, अनेक तुषोंको दूर करके तंदुलकी न्याईं विद्यासे अविद्याकृत पंचकोशनके दूर करनेकर प्रत्यगात्मारूपसे दिखावनेकी इच्छा करते हुए, शास्त्रके कथनका आरंभ करते हैं ॥

· तिस इस कथन किए अन्नरसमयसे भिन्न अंतरपिंडकी न्याईं आत्मभावकर मिथ्या कल्पित आत्मा प्राणमय है अर्थात् प्राण जो वायु तिसरूप है. तिस प्राणमयरूप वायुकर यह अन्नरसमय आत्मा अर्थात् शरीर पूर्ण है सो प्रसिद्ध यह प्राणमय आत्मा शिर और पक्षादिक अंगनसे पुरुषके आकारवालाही है क्या सो आपही पुरुषके आकारवाला है ? तहां नहीं ऐसे कहे हैं॥ प्रथम अन्नमयरूप आत्माको पुरुषके आकारकर युक्तपणा प्रसिद्ध है. तिस अन्नरसके पुरुष आकारताके पीछे मूखाविषे तांबे डारनेसे मूखाके प्रतिमाकी न्याईं यह प्राणमय पुरुषके आकारवाला है, स्वरूपसे नहीं ॥ ऐसे पूर्वपूर्व कोशकी पुरुष आकारताके पिछलेपिछले पुरुषके आकारवाले होवे हैं. और पूर्वपूर्व कोश पिछलेपिछले कोशकर पूर्ण है ॥ इस प्राणमय कोशको पुरुषकी आकारता कैसे ? तहां कहे है जो तिस प्राणमय कोशस्वरूप पक्षीका प्राणही शिर हैं. और व्यान दक्षिणपक्ष है और अपान उत्तरपक्ष अर्थात् वामपक्ष है और आकाश आत्मा है अर्थात् आकाशविषे स्थित वृत्तिविशेषरूप समानवायु सो आत्मा अर्थात् स्वरूप है. और इसकी पृथ्वी पुच्छरूप प्रतिष्ठा अर्थात् आधार है ॥ पृथ्वी अर्थात् उदानवायु तिसही अर्थविषे प्राणमयरूप आत्माको विषय करनेवाला यह श्लोकरूप मंत्र प्रमाण होवे है ॥ १ ॥

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः समाप्तः ॥ २ ॥

॥ अथ ब्रह्मानन्दवल्लीतृतीयोऽनुवाकः प्रारभ्यते ॥

जिससे प्राणके पीछे देव अर्थात् इंद्रियादिक प्राणनरूप क्रियासे जीवनरूप चेष्टाको करे हैं ॥ मनुष्य और पशु जो हैं यह सर्व प्राणनरूप क्रियासेही चेष्टा करे हैं और जिससे प्राणही प्राणियोंका जीवनरूप आयु है. जब पर्यंत प्राण इस शरीरमें स्थित रहता है तबपर्यंत आयु है.यातें प्राण सर्वका आयु कहिए हैं॥

जो पुरुष अन्नमय स्थूल शरीरसे आत्मबुद्धि त्यागकर प्राणमय आत्मारूप ब्रह्मको मैं प्राण हूं, सर्व भूतनका आत्मा और जीवनका हेतु होनेसे आयु हूं, ऐसे जो उपासते हैं, वह इस लोकविषे सर्वही आयुको पावते हैं अर्थात् आयुसे प्रथम अपमृत्युको पावते नहीं, जिससे प्राण सर्वभूतनका आयु है यातें सर्वका आयु कहिए है यहां विद्याके फलकी प्राप्ति अर्थ फिर कथन है ॥ जो यह प्राणमय है यहही तिस पूर्वके अन्नमयका शरीर अर्थात् अन्नमयविषे होनेवाला आत्मा है ॥ तिस प्रसिद्ध इस प्राणमयसे अन्य अंतर आत्मा मनोमय है, तिस मनोमयकर यह प्राणमय पूर्ण है सो प्रसिद्ध यह मनोमय पुरुषके आकारवाला है, तिस प्राणमयकी पुरुषाकारता विषे पीछे यह मनोमय पुरुषके आकारवाला है. तिसका यजुर्वेदही शिर है, ऋग्वेद दक्षिण पक्ष है, सामवेद उत्तर पक्ष है, आदेश अर्थात् ब्राह्मणभाग आत्मा अर्थात् शरीर है और अथर्वांगिरसः अर्थात् अथर्व्ववेद पुच्छरूप प्रतिष्ठा है. तिसही अर्थविषे अर्थात् मनोमयरूप आत्माका प्रकाशक यह श्लोकरूप मंत्र है ॥ १॥

॥ इति तृतीयोनुवाकः समाप्तः ॥ ३ ॥

॥ अथ ब्रह्मानन्दवल्लीचतुर्थोनुवाकः प्रारभ्यते ॥

जिससे मनसहित वाणि अप्राप्त होकर निवृत्त होवे है. ब्रह्मके आनंदके जाननेवाला कदाचित् भयको पावता नहीं जो यह मनोमय है यहही तिस पूर्वले प्राणमयका शरीर अर्थात् प्राणमयविषे स्थित आत्मा है, तिस प्रसिद्ध इस मनोमयसे अन्य अंतर आत्मा विज्ञानमय है; मनोमय जो है सो वेदरूप कह्या और वेदके अर्थको विषय करनेवाली जो निश्चयरूप बुद्धि है सो विज्ञान है ॥ वह विज्ञान निश्चयरूप अंतःकरणका धर्म है, तिसरूप हुआ प्रमाणस्वरूप निश्चयरूप ज्ञानसे निर्वाह किया जो आत्मा सो विज्ञानमय है. जिससे प्रमाणनके ज्ञानपूर्वक यज्ञादिक करिए है, ऐसे कहा जो विज्ञानमय तिसकर यह मनोमय पूर्ण है सो प्रसिद्ध यह विज्ञानमय पुरुषके आकारवालाही है. तिस मनोमयकी पुरुषाकारताके पीछे यह विज्ञानमय पुरुषके आकरवाला होवे है ॥ तिसका श्रद्धाही शिर है ॥ काहेतें जो जिससे निश्चयरूप विज्ञानवाले

पुरुषको करने योग्य अर्थनविषे पूर्व श्रद्धा बने है और शास्त्रविषे कहे कर्मोंके मीमांसाशास्त्रके विचारसे उत्पन्न भयी जो मानसी बुद्धि है तिसको ऋत कहे हैं, सो ऋत दक्षिणपक्ष है, करे हुए शुभ कर्मको विषय करनेहारी बुद्धिको सत्य कहे है. सो सत्य उत्तरपक्ष है, वेदांतवाक्यका निश्चयरूप योग शरीररूप आत्मा है. और हिरण्यगर्भरूप समष्टिबुद्धिको मह कहे हैं, सो मह पुच्छरूप प्रतिष्ठा हैं, तिसही अर्थविषे अर्थात् विज्ञानमयरूप आत्माका प्रकाशक यह श्लोकरूप मंत्र होवे है ॥ १ ॥

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः समाप्तः ॥ ४ ॥

॥ अथ ब्रह्मानन्दवल्लीपंचमोनुवाकः प्रारभ्यते ॥

विज्ञान यज्ञको विस्तारता है ॥ जिससे विज्ञानवान् पुरुष श्रद्धा आदिक पूर्वक यज्ञको करता है, यातें विज्ञानको यज्ञका कर्तापणा है, और कर्मनको भी विस्तारता है. जिससे विज्ञानको यज्ञका कर्तापणा है, तिससे विज्ञानमयआत्मा ब्रह्म है, यह युक्त है ॥ किंवः ॥ सर्व इंद्रादिक देवता विज्ञानरूप ज्येष्ठ अर्थात् प्रथम उत्पन्न भये ब्रह्मको उपासते हैं अर्थात् ध्याते हैं तिस कर वह देवता ज्ञान और ऐश्वर्यवाले होते हैं ॥ तिस विज्ञानरूप ब्रह्मको जब जानता है; केवल जानता नहीं किंतु तिस ब्रह्मसे जब प्रभावको पावता है तब शरीरविषे पापोंको छोडकर सर्व भोगोंको भोक्ता है जो यह विज्ञानमय है; यहही तिस पूर्वले मनोमयका शरीर अर्थात् मनोमयमें होनेवाला आत्मा है ॥ तिस प्रसिद्ध इस विज्ञानमयसे अन्य अंतर आत्मा आनंदमय है. तिस आनंदमयरूप आत्माकर यह विज्ञानमय पूर्ण है. सो प्रसिद्ध यह आनंदमय पुरुषके आकारवालाही है. तिस विज्ञानमयकी पुरुषाकारताके पीछे यह आत्मा आनंदमय पुरुषके आकारवाला है तिस आनंदमयरूप पक्षीकाभी इष्ट पुत्रादिकके दर्शनजन्य प्रियवृत्ति शिरकी न्याई शिर है और प्रिय वस्तुवोंके लाभजन्य जो मोदवृत्तिरूप सुख है. सो मोद इस आनंदमय आत्मारूप पक्षीका दक्षिण पक्ष है और प्रिय वस्तुके भोगसे उत्पन्न भयी जो अतिशयकरके हर्षरूप प्रमोदवृत्ति सो प्रमोद उत्तरपक्ष है. और प्रियादिक

सुखके अवयवनके मध्य समान सुखरूप जो आनंद सो आत्मा है अर्थात् आनंदमयरूप पक्षीका शरीर है और ब्रह्मानंद जो सत्य ज्ञान अनंतरूप परम ब्रह्म है, जिसकी प्राप्तिवास्ते अन्नमयादिक पंचकोश आरंभ किए है और जो तिन कोशनसे अंतर है और जिसकर यह सर्वकोश आत्मावाले होवे है सो ब्रह्म पुच्छरूप है सोई ब्रह्म अविद्याकर कल्पित सर्व द्वैतका अवसानरूप अद्वैतस्वरूप प्रतिष्ठा है ऐसे अविद्याकल्पित द्वैतका अवसानरूप सो अद्वैत ब्रह्मप्रतिष्ठारूप पुच्छ है ॥ तिसही अर्थविषे अर्थात् आनंदमयकी प्रतिष्ठारूप ब्रह्मके प्रकाशविषे तत्पर सो श्लोकरूप मंत्र है. ॥ १ ॥

॥ इतिपंचमोऽनुवाकः समाप्तः ॥ ५ ॥

॥ अथ ब्रह्मानन्दवल्लीषष्ठोऽनुवाकः प्रारभ्यते ॥

जो पुरुष ब्रह्म असत्य अर्थात् अविद्यमान है, ऐसे जब जानता है, यातें सो असत्यही अर्थात् असत्यके तुल्यही होवे है. अर्थ यह है, जैसे असत् पदार्थ पुरुषार्थका संबंधि नहीं होवे है. ऐसे सो अपुरुषार्थका संबंधि होवे है और ब्रह्म है ऐसे जन जानता है तिस जाननेवालेको क्या फल होवेहै ? तहां कहेहैं ॥ इस ऐसे जाननेवाले पुरुषको विद्यमान ब्रह्मस्वरूपसे परमार्थ सत्यरूपको प्राप्त हुआ ब्रह्मवेत्ता जानते हैं. जो यह आनंदमय है ॥ यहही तिस पूर्वले विज्ञानमयका शरीर अर्थात् विज्ञानमयविषे होनेवाला आत्मा है. तिसकेप्रति शंका नही है. काहेतें जो पूर्ववस्तुके सद्भाव हुए अंतके वस्तुका निषेध नहीं होवे है, परंतु ब्रह्मको सर्वविशेषवाला होनेकर प्रत्यक्ष होनेसे और सर्वकेप्रति साधारण होनेसे ब्रह्मको नास्तिपणेकी शंका युक्त है. जिससे ऐसे हैं, इससे अनंतर श्रवण करनेको शिष्यके आचार्यकी उक्तिकेपीछे यह प्रश्न है. जिससे ब्रह्म आकाशादिकका कारण होनेसे विद्वान् और अविद्वान्को साधारण है यातें अविद्वान्कोभी ब्रह्मकी प्राप्तिकी शंका करते हैं ॥ कोईएक अविद्वान्भी यहांसे मरणको पाकर इस परमात्मारूप लोकको पावताहै अथवा नही पावता ? यहां अथवा नहीं पावता है ऐसा जो द्वितीय प्रश्न है सो पीछे प्रश्न है. इस बहुवचनसे जानना ॥ अब विद्वान्केप्रति अन्य दोनो प्रश्न

कहेहैं ॥ जब अविद्वान् समानकारणरूप भी ब्रह्मको नहीं पावता है, यातें विद्वान्कोभी ब्रह्मकी अप्राप्तिकी शंका करिए है, जिससे तिस विद्वान्केप्रति यह प्रश्न है. ॥ कोईएकभी विद्वान् अर्थात् ब्रह्मवेत्ता यहांसे मरणको पाकर इस परमात्मारूप लोकको पावताहै अथवा जैसे अविद्वान् है तैसे विद्वान्भी नहीं पावताहै. ॥ यह द्वितीय प्रश्न है ॥ अथवा विद्वान् और अविद्वान्को विषय करनेवाले दोनोही प्रश्न हैं ॥ ब्रह्म असत्य है ऐसे जब जानता है और ब्रह्म है ऐसे जब जानता है इस श्रवणसे है अथवा नही है ऐसे संशय होवे है. तातें क्या है अथवा नहींहै ? ऐसा प्रथम प्रश्न अर्थसे प्राप्त भया. और ब्रह्मको साधारण होनेसे अविद्वान् पावता है अथवा नहीं पावता ? ऐसा द्वितीय प्रश्न प्राप्त भया ॥ ब्रह्मको समभावके हुए अविद्वान्की न्याई विद्वान्-कोभी अप्राप्तिकी शंका करतेहैं ॥ क्या विद्वान् पावता है अथवा नही पावता ? ऐसे तृतीय प्रश्न प्राप्तभया ॥ इन तीन प्रश्नोंके समाधानार्थ आगेका ग्रंथ आरंभ करिए है ॥ तहां प्रथम अस्तिपणाही कहिए है ॥ जो पूर्व सत्यज्ञानअनं-तरूप ब्रह्म है ऐसे कहाथा यातें तिस श्रुतिसे सो ब्रह्म सत्यरूप है ॥ जो सत्य-रूप हैं सो असत्य कैसे कहिए है और द्वितीय ब्रह्म आकाशादिकका कारण होनेसे सत्यरूप है ॥ जैसे घटवृक्षादिकका कारण मृत्तिकाबीजादिक सत्य रूप हैं उनको असत्य कैसे कहिए है. इसी प्रकार ब्रह्म आकाशादिकका कार-ण होनेसे असत्य कहणावने नहीं ॥ यदि शंका होवे जो मृत्तिका बीजादिक जड अचेतनरूप है तैसे ब्रह्म उनकी न्याई कारण होवेगा तब ब्रह्मभी अचे-तन अर्थात् जड हो जावेगा सो यह कहणावने नहीं; काहेतें जो ब्रह्मको इच्छावाला होनेसे अचेतनपणा नहीं है ॥ काहेतें द्वितीय जो लोकविषे इच्छावाला अचेतन नहीं होवे है- यदि शंका होवे जो इच्छावाला होता है सो अपूर्णकाम होता है यातें ब्रह्म अपूर्णकाम होवेगा. काहेतें जो इच्छावाला होनेसे ॥ सो यह शंकाभी संभवे नहीं काहेतें जो ब्रह्मको स्वतंत्र होनेसे अपूर्णकाम नहीं, केवल जीवोंके कर्मोंकी अपेक्षाकर सृष्टि आदिककी इच्छा होवे है, यातें स्वतंत्र कार्य करे हैं. जिससे आकाश उत्पन्न भया हैं ॥ ऐसा जो आत्मा सो कामना करता भया. कैसे कामना करता भया सो कहे हैं ॥ जो प्रजारूप करके बहुत होवों. तब सो आत्मा तपको तपता भया अर्थात्

प्राणियोंके कर्मोंको विचार कर ऐसे इस सर्व जगतको सृजता भया ॥ यह जो कुछ विलक्षण है तिसको रचकर तिसके पीच्छे तिसही रचेहुए जगतके तांई पीछे प्रवेश करता भया अर्थात् प्रतिबिंबरूप करके प्रवेश करता भया. अथवा स्वतः स्फूर्तिरूप देनेकर प्रवेश करता भया; सो तिस कार्यकेताई पीछे प्रवेश करके सत् अर्थात् मूर्त और त्यत् अर्थात् अमूर्तरूप होता भया अर्थात् पृथ्वी जल अग्नि यह मूर्तरूप और वायु तथा आकाश यह अमूर्तरूप होता भया. और जिसका नामरूप क्रिया करके मनुष्यादिक कथन करे है उसको निरुक्त कहे हैं और जिसका नामरूप क्रियासे व्यवहार नही करिए है तिसको अनिरुक्त कहे हैं और ग्रहादिक आश्रयरूप मूर्तको निलयन कहे हैं और तिससे विरीत अमूर्तको अनिलयन कहे हैं और चैतन्यरूपसे प्रतीत होनेवाले इंद्रिय तथा अंतःकरणको विज्ञान कहे हैं, तिससे भिन्न पाषाणादिकको अविज्ञान कहे हैं ॥ और व्यवहारके जो घटादिक पदार्थ हैं तिनको सत्य कहे हैं ॥ तथा स्वप्नपदार्थ और गंधर्व नगरादिक जो पदार्थ हैं तिनको अनृत कहे हैं ॥ सत्यरूप परमात्मा इन पूर्व कहे सर्व पदार्थरूपसे आपही उत्पन्न होवेहै ऐसे कामना करनेवाला तथा विचार करनेवाला तथा जगतकी उत्पत्ति करनेवाला तथा प्रवेश करनेवाला तथा मूर्त अमूर्तादिरूपको धारनेवाला ब्रह्म असत्य कैसे होवेगा ? किंतु सत्य रूपही है यातें तिस ब्रह्मको ब्रह्मवेत्ता सत्यरूप कहते हैं तिस इस ब्राह्मण भाग उक्त अर्थ विषे यह श्लोकरूप मंत्र प्रमाण होवे हैं ॥ १ ॥

॥ इति षष्ठोनुवाकः समाप्तः ॥ ६ ॥

॥ अथ ब्रह्मानन्दवल्लीसप्तमोनुवाकः प्रारभ्यते ॥
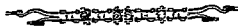
यह जगत् अपनी उत्पत्तिसे पूर्व असत्यही होता भया अर्थात् नामरूप रहित जो ब्रह्म है, तिसविषे यह नामरूपात्मक जगत् अप्रगटरूप होता भया. तिस अप्रगटभावसे सत्यरूप होता भया अर्थात् प्रगट नामरूप होता भया. तात्पर्य यह जो अव्यक्तरूप ब्रह्मसे नामरूप विभागवाला प्रपंचरूप सत् होता

भया. सो असत् शब्दका वाच्य ब्रह्म आपही आपको करता भया. जिससे ऐसे है तातें सो ब्रह्महीं सुकृत अर्थात् आपही कर्ता कहिये है लोकविषे ब्रह्म सर्वका कारण होनेसे जो यह सुकृत है निश्चयकर सो रसरूप है अर्थात् यह पुरुष रसको पाकर आनंदी अर्थात् सुखी होवे हैं. काहेतें जो ईषणादि करहित विद्वान् बाह्य रसके लाभादिकसे रहित रसरूप आनंदवाले देखिए है तिनका ब्रह्मही रस हैं यातें तिन विद्वानोंको आनंदका कारण रसकी न्याई ब्रह्मही है और जो यह आकाशविषे अर्थात् परम व्योमगत हृदयगुहा विषे स्थित आनंद न होवे तब लोकविषे अपानरूप चेष्टाको कब नहीं करेगा॥ और प्राणनरूप चेष्टाको कब नहीं करेगा. अर्थात् कोईभी न करेगा तातें सो ब्रह्म है यह जानते हैं; जिससे यहही परमात्मा लोगोंको पुण्यके अनुसार आनंद करावे है और सोईही आत्मा जीवोंको अविद्यासे प्रच्छिन्न भासता है. इसीसे अविद्वान् और विद्वान्को भय तथा अभयका हेतु होनेसे सो ब्रह्म है ऐसे जानिये हैं॥ और जब जिससे यह साधक इस अदृश्य अर्थात् अविकारी और अविषयरूप होनेसे अदृश्य और इसीसे अनात्म्य अर्थात् शरीररहित होनेसे अनात्म्य है और जिससे अनात्म्य है इसीसे अनिरुक्त अर्थात् अवाच्य है और जिससे अनिरुक्त है इसीसे अनिलयन है अर्थात् अनाधार है. भाव यह है जो सर्व कार्यके धर्मसे विलक्षण ब्रह्मविषे अभय स्थितिको जानता है. तिससे सो विद्वान् अभयस्वरूप ब्रह्मको अर्थात् आत्मभावको पावता है. और जब इस ब्रह्मविषे अल्पमात्रभी अंतर अर्थात् भेददर्शनको करता है॥ तब तिस भेददर्शनरूप हेतुसे तिस भेददर्शी आत्माको भय होवे है तातें आत्माही आत्माको भयका कारण है अर्थात् ईश्वर मुझसे अन्य है और मैं अन्य संसारी हूं ऐसे जाननेवाले और अल्पभी अंतर अर्थात् भेदको करनेवाले पुरुषको भय होवे है॥ यह जानकर एकता करके न माननेवाले भेददर्शीको भेददृष्टिका विषय किया सोई ब्रह्म तो भयका हेतु होवे है. ऐसा भयका हेतु नाशका कारण अविनाशीरूप सो ब्रह्म निश्चयकर है॥ तिस इस अर्थविषेही यह आगे कहनेका श्लोकरूप मंत्र प्रमाण होवे है॥ १॥

॥ इति सप्तमोऽनुवाकः समाप्तः॥ ७॥

॥ अथ ब्रह्मानन्दवल्ल्यष्टमोऽनुवाकः प्रारभ्यते ॥

इस ब्रह्मके भयकर वायु चलता है, इसके भयकर सूर्य उदय होता है, इसके भयकर अग्नि जलता है, इंद्र वर्षा करता है और पंचम मृत्यु प्राणियोंके पकडनेको दौडता है ॥ जिससे वायुआदिक आप ईश्वर अर्थात् सामर्थ्य हुए भयके योग्य होकर बहुत श्रमवाले चलनेआदिक कार्यनविषे नियमसे प्रवृत्त होवे है. सो भयका कारण आनंदरूप ब्रह्म है ॥ जिसके भयकर वायु आदिक नियमसे अपने अपने कार्योंविषे प्रवृत्त होवे है, यातें भयका कारण नियामक ब्रह्म है, सो भयका कारण ब्रह्म आनंदरूप है. तिस इस ब्रह्मके आनंदका यह विचार होवे है ॥ आनंदका क्या विचार करनेको योग्य है? सो कहे है ॥

प्रथम बाह्यके आनंदका साधनसामग्रीकी न्यूनाधिकतासे विषयानंदकी न्यूनाधिकताका विचार करते हुए ब्रह्मानंदकी मुख्यता दिखावे है ॥ जो श्रेष्ठ युवा अवस्था तथा अधीत वेद और चार तर्फसे माता आदिककी शिक्षाकर युक्त तथा अत्यंत दृढ और बलवान् ऐसे भीतरके साधनकर संपन्न जो पुरुष है तिसकी यह भोगके साधन धनकर और कर्मके साधन दृष्ट अर्थकर पूर्ण सर्व पृथ्वी होवे है अर्थात् संपूर्ण पृथ्वीका पति चक्रवर्ति राजा होवे है. तिसका जो आनंद है सो एक मनुष्यनका उत्कृष्ट आनंद है. वह जो सौ १०० मानुषनका आनंद है सो एक मानुष गंधर्वोंका आनंद है अर्थात् मानुषनके आनंदसे शतगुण अधिक मानुष गंधर्वोंका आनंद होवे है ॥ जो मानुष होकर कर्म उपासनाके बलसे गंधर्वभावको प्राप्त होवे सो मानुषगंधर्व कहिए है ॥ वह जिससे अंतरधानादिक शक्तिसे संपन्न है और सूक्ष्म कार्य कारणवाले है यातें तिनको शीत उष्णादिक द्वंद्व पीडाकी अल्पता है और द्वंदके निवारण की सामर्थ्यरूप साधनकी संप्राप्ति है, यातें मानुष भोग्यकी कामनासे रहित मानुष गंधर्वको चित्तकी प्रसन्नता होवे है, तिस प्रसन्नता विशेषसे सुखकी प्रबलता होवे है, ऐसे पूर्वपूर्व भूमिकासे उत्तर उत्तर भूमिका विषे प्रसन्नता के विषे होनेसे शतगुण आनंद उत्कृष्ट होवे है प्रथम तो अकामहत अर्थात्

कामनासे रहितका अग्रहण है. काहेतें जो मानुषनके विषय भोगकी कामना-से अहत भये श्रोत्रिय अर्थात् विद्वानको मानुषके आनंदसे शतगुण आनंदकी उत्कृष्टता मानुष गंधर्वकेतुल्य कहनेको योग्य है ॥ इस प्रयोजन वास्ते श्रेष्ठ युवा और अधीत वेदपदनकर श्रोत्रियपणा और निष्पापपणा ग्रहण करिए है ॥ जो मानुष गंधर्वका आनंद सो श्रोत्रिय मानुषनके विषय भोगकी कामनासे रहित ज्ञानीको होवे है ॥ वह जो शत मानुष गंधर्वनका आनंद है सो एक देवगंधर्वका आनंद होवे है, सो श्रोत्रिय और कामनासे रहित-को होवे है. कल्पके आदिमें जो जातिसे गंधर्व होवे है वह देवगंधर्व कहिए हैं और वह जो शत देवगंधर्वनका आनंद है सो चिरलोक वासी पितृनके लोकका आनंद होवे है सो श्रोत्रिय और कामना रहितको होवे है ॥ और जो शतगुण अधिक पितृनके लोकका आनंद है सो एक आजानज देवनका आनंद है, सोई श्रोत्रिय और कामनासे रहितको होवे है ॥ आजान-ज देवलोक तिस विषे स्मृतिउक्त कर्मसे उत्पन्न भये जो देव सो आजान-ज देव कहिये हैं ॥ वह जो शत आजानज देवनका आनंद है सो एक कर्म देवनका आनंद होवे है ॥ जो केवल वेदोक्त अग्नि होत्रादिक कर्मसे दे-वभावको प्राप्त होय है अर्थात् देवनके स्थान विषे उपजते हैं सो कर्मदेव कहे जाते हैं. सो कर्मदेवनका आनंद श्रोत्रिय और कामनासे रहितको होवे है ॥ वह जो शत कर्मदेवनका आनंद है सो एक मुख्य देवनका आनंद है सो श्रोत्रिय और कामना रहितको होवे है ॥ अष्ट वसु और एकादश रुद्र और द्वादश आदित्य इत्यादिक मिलकर त्रयस्त्रिंशत् ३३ जो हविके भोक्ता मुख्य देव है वह जो शत मुख्य देवनका आनंद है सो एक देवनके पति इंद्रका आनंद है सो श्रोत्रिय और कामनासे रहितको होवे है ॥ वह जो शत इंद्रका आनंद है सो एक इंद्रके आचार्य बृहस्पतिका आनंद है, सो श्रोत्रिय और कामनासे रहितको होवे है ॥ और जो शत बृहस्पतिका आनंद है सो एक प्रजा-पति लोकरूप शरीरवाला विराट्का आनंद है सो श्रोत्रिय और कामनासे रहित-को आनंद होवे हैं ॥ और वह जो शत प्रजापतिका आनंद है सो एक ब्रह्मका आनंद है अर्थात् समष्टिव्यष्टि स्वरूप और जन्ममरणरूप अग्निकर व्याप्त यह आनंदके भेद जहां एकताको पावते हैं और जहां तिनका निमित्त धर्म तथा

तिनको विषय करनेवाला ज्ञान और कामनासे रहितपणा निरतिशय अर्थात् सर्वसे अधिक है सो यह हिरण्यगर्भ ब्रह्मा है, उसका यह आनंद है सो श्रोत्रिय और कामनासे रहितको होवे है अर्थात् श्रोत्रिय निष्पाप अर्थात् शास्त्र मार्गके अनुसार वर्तनेवाला और कामनासे रहित पुरुषको सो ब्रह्मदेवका आनंद सर्व तर्कसे प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं. सो यह विचारका फल अब समाप्त करते हैं. सो जो यह पुरुषविषे है और जो यह आदित्यविषे है सो एक है, सो जो पुरुषविषे यहां परमव्योमगत गुहाविषे स्थित हुआ आकाशसे आदि लेकर अन्नमयपर्यंत कार्यको रचकर तिसके तांई पीछे प्रवेशको पाया है. ऐसा जो परमात्मा यह सो जो ऐसे कहिए है सो एक है ॥ जो यह सूर्य विषे है अर्थात् जो श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठको प्रत्यक्ष कथन किया परमानंद है॥जिसके एक देशकेतांई ब्रह्माआदिक भूतसुखके योग्य हुए उपजीविकाको करे है. यह सो जो सूर्यविषे है ऐसे कहिये है सो एक है ॥ ऐसे तिस विचारकर प्रिय वस्तुको भिन्न देशगत घटाकाश और महाकाशकी एकताकी न्याई उपसंहार करते हैं ॥ जो कोईएक पूर्वोक्त प्रकारका न्यून अधिकभावसे रहित अद्वैत सत्यज्ञान अनंतरूप ब्रह्म मैं हूँ ऐसा जानता है, सो दृष्ट और अदृष्टविषयका समुदायरूप जो यह लोक है सो इस लोकसे निरपेक्ष होनेकर इस कथन किए अन्नमयरूप आत्माको उल्लंघन करता है, तिसके भीतर इस सर्व अन्नमय रूप आत्माविषे स्थित अभिन्न प्राणमयरूप आत्माको उल्लंघन करता है. पीछे इस मनोमयरूप आत्माको उल्लंघन करता है, पीछे इस विज्ञानमयरूप आत्माको उल्लंघन करता है, पीछे इस आनंदमयरूप आत्माको उल्लंघन करता है, पीछे अदृश्य अनात्म्य अनिरुक्त अनिलयन ब्रह्मविषे अभयस्थितिको पावता है ॥ तिस इस अर्थविषेभी सर्वही इस आनंदवल्लीके अर्थरूप प्रकरणके संक्षेपसे प्रकाश करने अर्थ यह श्लोकरूप मंत्र प्रमाण होवे है ॥ १ ॥

॥ इत्यष्टमोऽनुवाकः समाप्तः ॥ ८ ॥

॥ अथ ब्रह्मानन्दवल्लीनवमोनुवाकः प्रारभ्यते ॥

जिस निर्विकल्परूप उक्तलक्षणवाले अद्वैतरूप आत्मस्वरूप ब्रह्मसे मन-सहित वाणियां अप्राप्त होकर अर्थात् विषयनकरके निवृत्त होवेहैं. तिस श्रोत्रिय निष्पाप निष्काम और सर्व ईषणासे रहित पुरुषके आत्मभूत सर्व विभागर-हित सर्वसे उत्कृष्ट ब्रह्मके आनंदको पूर्वोक्त प्रकारसे जाननेवाला पुरुष किसीसेभी भयको पावता नहीं. काहेतें जो तिस आत्मरूप ब्रह्मसे भिन्नके अभाव होनेसे ॥

शंका ॥ शुभ कर्मका न करना और पापक्रियारूप यह भयका निमित्त है तहां श्रुति उत्तर कहेहै ॥ इस कथन किए ऐसे जाननेवालेको किस कारणसे मैं शुभकर्मको न करता भया. ऐसे पीछे मरणके समीपकालविषे जो संताप होवे है. तैसे किस कारणसे मैं पापकर्मको करता भया. ऐसे नरकपातादिक दुःखके भय संताप होवे है जो वह शुभकर्मका न करना और पापक्रिया यह दोनो जैसे अविद्वानको तपावते हैं. ऐसे विद्वानको निश्चय कर तपावते नहीं अर्थात् अवि-वेक करते नही॥वह कैसे नहीं तपावते? तहां कहे है ॥ जो ऐसे जाननेवाला है सो इन दोनो तापके हेतु शुभअशुभ कर्मको अपना आत्मा जानकर तिरस्कार करता है. अथवा परमात्मभावसे देखता है ॥ जिससे ऐसे इन दोनो पुण्य-पापको यह विद्वान् अपने विशेषस्वरूपसे शून्यकरके आत्मारूपसे देखताही है, यातें इसको पुण्यपाप तपावते नहीं ॥ ऐसा कौन है जो ऐसे जानता है ॥ सो पूर्वोक्त प्रकारके अद्वैत आनंदरूप ब्रह्मको जानता है तिसके आत्मभावसे देखे हुए पुण्यपाप निष्फल तापवाले हुए जन्मके आरंभक नहीं होवे हैं ॥ ऐसे यह उपनिषत् है. जैसे है तैसे कथन करी अर्थात् इस बलीविषे ब्रह्मवि-द्यारूप उपनिषत् अर्थात् सर्वविद्यासे परम रहस्य जो है सो दिखाई; इसविषे परम श्रेय स्थित है ॥ १ ॥ पूर्वोक्त ब्रह्म यह इनसे आदि लेकर जो ऐसे जानता है सो ब्रह्मवेत्ता है. ऐसी उपनिषत् है ॥ यहां पर्यंत इस दूसरी बलीके दूसरे मंत्रका अर्थ है ॥

अब शांतिमंत्रका अर्थ करते हैं ॥ सोई परमेश्वर हमको अर्थात् शिष्य और आचार्य दोनोंको रक्षण करो, और सोई हमको भोगावो अर्थात् पालन

करो, सोई परमेश्वर विचारूप निमित्तवाले सामर्थ्यको संपादन करो, और तेजस्वी भये हमारे अध्ययन तेजस्वी अर्थात् अर्थज्ञानके योग्य होवो ॥ विद्याग्रहणके निमित्त शिष्यके अथवा आचार्यके प्रमादके किए अन्यायसे प्राप्त भया जो द्वेष तिसकी निवृत्तिअर्थ यह प्रार्थना है. जो हम परस्पर द्वेषको मत प्राप्त होवे ॥ ओं सत्य कहता है ॥ शांति हो शांति हो शांति हो ॥ जो पूर्वोक्त इस प्रकारसे जानता है सोई ब्रह्मवेत्ता है ऐसी उपनिषत् है॥२॥

॥ इतिश्रीनवमोनुवाकः समाप्तः ॥ ९ ॥

॥ इतिश्रीतैत्तिरीयोपनिषद्गतद्वितीयाब्रह्मानंदवल्ली समाप्ता ॥ २ ॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ श्रीतैत्तिरीयोपनिषद्गतभृगुवल्ली नाम तृतीयोऽध्यायः प्रारभ्यते ॥

जो सत्यज्ञान अनंतरूप ब्रह्म आकाशसे लेकर अन्नमय पर्यंत कार्यको रचकर तिसके ताईं फिर प्रवेशको पाया है सो जिससे विशेषकी न्याईं प्रतीत होवे है तिस सर्वकार्यसे विलक्षण अदृश्यादिक धर्मवाला आनंदरूपही है, तिसीको सो मैं हूं ऐसे जानना ॥ काहेतें जो तिसके प्रवेशको तिस ज्ञानरूप अर्थवाला होनेसे ॥ तिस ऐसे जाननेवाले ब्रह्मवेत्ताके शुभअशुभ कर्म जन्मांतरके आरंभक नहीं होवे है. इस प्रकारका अर्थ पूर्वोक्त आनंदवल्लीविषे कहनेकी इच्छा करी है तिसविषे ब्रह्मविद्या समाप्त करी ॥ इसके पीछे भृगुवल्लीविषे ब्रह्मविद्याका साधनरूप तप अर्थात् वाक्यार्थके ज्ञानके साधन पदार्थका वर्णन अर्थात् कहनेको योग्य है और अन्नमयादिकको विषय करनेवाले उपासन कहे है, यांते पूर्वकी न्याईं शांतिपाठ पूर्वक यह अर्थ करते हैं ॥

सो परमात्मा हमको रक्षण करो, सो हमको भोगावो, और सो परमात्मा सामर्थ्यको करो, हमारा अध्ययन किया हुआ तेजस्वी होवो और हम शिष्य और आचार्य परस्पर द्वेषको मत करें ॥ ॐअर्थात् सत्य कहता है ॥ शांति हो, शांति हो, शांति हो ॥

यहां विद्याकी स्तुति अर्थ प्रिय पुत्रकेतांई पिताने कथन करी, यह आख्यायिका है. सो भृगु इस नामवाला प्रसिद्ध वरुण ऋषिका पुत्र था. सो ब्रह्मके जाननेकी इच्छावाला "हे भगवन् ! मेरे प्रति ब्रह्मका कथन करो" इस प्रकार कहता हुआ वरुण नाम पिताकेतांई समीप जाता भया ॥ और सो पिता विधिपूर्वक समीपको प्राप्त भये इस पुत्रकेतांई यह वचन कहता भया ॥ तिसको अन्न अर्थात् शरीर और तिसके भीतर प्राण और इनके भीतर ज्ञानके साधन चक्षु श्रोत्र मन और वाणि ब्रह्मके ज्ञानद्वारनको कहता भया. और इन द्वारभूत अन्नादिकको कथन करके पीछे तिस भृगुको ब्रह्मका लक्षण कहता भया ॥ सो तिस ब्रह्मका लक्षण क्या है ? तहां कहे हैं जिससे प्रसिद्ध यह ब्रह्मासे आदि लेकर स्थावर पर्यंत भूत उपजते हैं और जिसकर उपजे हुए जीवते हैं अर्थात् प्राणोंके धारणरूप वृद्धिको पावते हैं और विनाशकालविषे जिस ब्रह्मकेतांई जाते है और तादात्म्यको पावते हैं सो ब्रह्मका लक्षण है, तिसको तूं सो ब्रह्म है, ऐसे विशेषकर जाननेको इच्छा कर अर्थात् ऐसे लक्षणवाला ब्रह्म है तिसको तूं अन्नमयादिकद्वारा प्राप्त हो. सो भृगु इन ब्रह्मज्ञानके द्वारनको और ब्रह्मके लक्षणको पितासे श्रवण करके ब्रह्मज्ञानका साधन होनेकर तपको ही तपता भया, सो तपको तपकर अन्न ब्रह्म है, ऐसे जानता भया ऐसे आगेके अनुवाकसे संबंध है ॥ १ ॥

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः समाप्तः ॥ १ ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ अथ भृगुवल्लीद्वितीयोऽनुवाकः प्रारभ्यते ॥

अन्न ब्रह्म है ऐसे जानता भया, काहेतें जो जिससे सो पूर्वोक्त ब्रह्मलक्षणकर युक्त है, जिससे तिसको ब्रह्म है ऐसे जानता भया ॥ कैसे सो ब्रह्मके लक्षणकर युक्त है ? तहां कहे हैं ॥ जिस कारणसे अन्नकर प्रसिद्ध यह भूत उपजते हैं और उपजे हुए अन्नसे जीवते हैं, और अंतमें अन्नकेतांई सन्मुख जाते हैं, और प्रवेशको पावते है यातें अन्नका ब्रह्मपणा युक्त है. सो ऐसे तपको तापके लक्षण और युक्तिसे तिस अन्नरूप ब्रह्मको जानकर फिरभी

संशयको प्राप्त हुआ भृगु अपने वरुण पिताके समीप जाता भया ॥ और हे भगवन्! ब्रह्मको कथन करो. ऐसे पूछता भया ॥ यहां संशय क्या है ॥ जो अन्नकी उत्पत्ति देखनेसे तिसको संशय भया ॥ भृगुके पिता कहते भये, तप ब्रह्म है ऐसे तप करके तूं ब्रह्मको विशेषकर जाननेकी इच्छा कर पीछे सो भृगु तपको तपता भया सो तपको तापके– ॥ १ ॥

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः समाप्तः ॥ २ ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ अथ भृगुवल्लीतृतीयोऽनुवाकः प्रारभ्यते ॥

प्राण ब्रह्म है ऐसे जानता भया; जिससे प्राणतेही प्रसिद्ध यह भूत उपजते हैं और प्राणसेही उपजे हुए जीवते हैं और प्राणकेताईं सन्मुख जाते हैं और प्रवेशको पावते हैं ॥ ऐसे तिस प्राणरूप ब्रह्मको जानकर भृगु फिरभी संशयको प्राप्त हुआ वरुण पिताके समीप जाता भया. और हे भगवन्! ब्रह्मको कथन करो. ऐसे पूछता भया ॥ उसको पिता कहते भये, तप ब्रह्म है ऐसे तप करके तूं ब्रह्मको विशेषकर जाननेकी इच्छाकर. पीछे सो भृगु तपको तपता भया ॥ सो तपको तापके– ॥ १ ॥

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः समाप्तः ॥ ३ ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ अथ भृगुवल्लीचतुर्थोऽनुवाकः प्रारभ्यते ॥

मन ब्रह्म है ऐसे जानता भया. जिससे मनतेही प्रसिद्ध यह भूत उपजते हैं, और मनकर उपजे हुए जीवते हैं और अंतमें मनकेताईं सन्मुख जाते हैं और प्रवेशको पावते है ॥ ऐसे तिस मनरूप ब्रह्मको जानकर भृगु फिरभी संशयको प्राप्त हुआ वरुण पिताके समीप जाता भया ॥ और हे भगवन्! ब्रह्मको कथन करो ऐसे पूछता भया ॥ तिसको पिता कहते भये, तप ब्रह्म है ऐसे तपकरके तूं ब्रह्मके जाननेकी इच्छा कर. पीछे सो तपको तपता भया ॥ सो तपको तापके– ॥ १ ॥

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः समाप्तः ॥ ४ ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ अथ भृगुवल्लीपंचमोऽनुवाकः प्रारभ्यते ॥

विज्ञान अर्थात बुद्धि ब्रह्म है ऐसे जानता भया. काहेतें जो जिससे विज्ञानकर प्रसिद्ध यह भूत उपजते हैं और विज्ञानसे उपजे हुए जीवते हैं और विज्ञानकेताईं सन्मुख जाते हैं और प्रवेशको पावते हैं ॥ ऐसे तिस विज्ञानरूपको जानकर फिरभी भृगु संशयको प्राप्त हुआ वरुण पिताके समीप जाता भया और पूंछता भया. हे भगवन! ब्रह्मको कथन करो ॥ तिसको सो पिता कहते भये ॥ तप ब्रह्म है, ऐसे तपकर तूं ब्रह्मके जाननेकी इच्छा कर ॥ पीछे सो भृगु तपको तपता भया ॥ तपको तापके— ॥ १ ॥

॥ इति पंचमोऽनुवाकः समाप्तः ॥ ५ ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ अथ भृगुवल्लीषष्ठोऽनुवाकः प्रारभ्यते ॥

आनंद ब्रह्म है ऐसे जानता भया. जिससे आनंदकरही प्रसिद्ध यह भूत उपजते हैं; और आनंदसे उपजे हुए जीवते हैं, और अंतमें आनंदके ताईं सन्मुख जाते हैं, और प्रवेशको करते हैं ॥ ऐसे जानता भया ॥ यहां वारंवार जो तपका उपदेश है. सो तपकी अतिशय साधनताके निश्चय अर्थ हैं. जहां तलग जिज्ञासा निवृत्त नहीं होवे हैं तहां तलग तुझको तपही साधन है. तिस तपकरही ब्रह्मके जाननेकी इच्छा कर ॥ यह पिताका अभिप्राय है ॥ ऐसे भृगुऋषि जो है सो तपकर शुद्धचित्त हुआ प्राणादिकविषे संपूर्णपणे कर ब्रह्मके लक्षणको देखता भया ॥ कुछ कालके पीछे तिनके भीतर प्रवेश करके अत्यंत आंतर आनंदरूप साधनकरही जानता भया, तातें ब्रह्मके जिज्ञासी पुरुषोंकर बाह्य और अंतरके करणों अर्थात इंद्रियोंको एकाग्रता स्वरूप परम तपरूप साधन अनुष्ठान करनेको योग्य है ॥ यह इस सारे प्रकरणका अर्थ है ॥

अब पितापुत्रके आख्यायिकाको छोडकर श्रुति अपने वचनकर आख्यायिकासे कथन किए अर्थको कहे है. सो यह भृगुऋषिने जाणी हुई भार्गवी और वरुणऋषिने कथन करी हुई वारुणी विद्या अन्नमयरूप आत्मासे प्रवृत्त हुई परम व्योमगत हृदयाकाशरूप गुहाविषे स्थित परमानंदरूप अद्वैतविषे स्थित अर्थात् समाप्त भयी है ॥ जो अन्य जिज्ञासूभी ऐसे तपरूप साधन कर इसही क्रमसे तिन अन्नमयादिक आत्माविषे प्रवेश होनेकर आनंदरूप ब्रह्मको जानता है सो ऐसे विद्याकी स्थितिसे आनंदरूप परमब्रह्मविषे स्थित होवे है अर्थात् ब्रह्मही होवे है ॥ ऐसे तिसको अदृष्ट फल कथन करके अब दृष्ट फल कहे हैं ॥ बहुतसे अन्नवाला होवे है, तथा ऐसे अन्नको जो भोक्ता है ऐसा जो प्रदीप्त जठराग्निवाला अन्नका भोक्ता अन्नादिकही है सो होवे है, और पुत्रादिरूप प्रजाकर तथा गौ अश्वादिक पशुकर और शमदमज्ञानादिक निमित्तवाले तेजरूप ब्रह्मवर्चसकर महान् होवे है ॥ और कीर्तिकर महान् होवे है अर्थात् बडा होवे है ॥ १ ॥

॥ इति षष्ठोऽनुवाकः समाप्तः ॥ ६ ॥

॥ अथ भृगुवल्लीसप्तमोऽनुवाकः प्रारभ्यते ॥

किंचः ॥ जिससे द्वार अन्नकर ब्रह्मका विज्ञान होवे है यातें गुरुकीन्याई अन्नकी निंदा न करना चाहिए ॥ सो इस ऐसे ब्रह्मवेत्ताका व्रत उपदेश करते है यहां व्रतका उपदेश अन्नकी स्तुति अर्थ है ॥ और प्राण अन्न है काहेतें प्राणको शरीरविषे अंतरभाव होनेसे ॥ जो जिसके भीतर स्थित होवे है सो तिसका अन्न होवे है, और शरीरविषे प्राण स्थित होवे है, यातें प्राण अन्न है और शरीर अन्नाद अर्थात् अन्नका भोक्ता है ॥ तैसे शरीरभी अन्न है और प्राण अन्नाद है. काहेतें जो शरीरकी स्थिति प्राणरूप निमत्तवाली होनेसे ॥ भाव यह है ॥ जो प्राणविषे शरीर स्थित है और शरीरविषे प्राण स्थित है, यातें यह शरीर और प्राण परस्पर अन्न और अन्नाद है. जिस हेतुकर परस्परविषे स्थित है, तिसकर अन्न है और जिसकर परस्परकी स्थितिरूप है तिसकर अन्नाद है, यातें प्राण और शरीर परस्पर अन्न और अन्नाद रूप है ॥ सो

यह अन्न अन्नविषे स्थित है. जो इस अन्नविषे स्थित अन्नको जानता है, सो अन्न और अन्नादरूपसेही स्थित होवे है ॥ किंच ॥ अन्नवान् और अन्नाद होवे है और प्रजाकर पशुकर ब्रह्मवर्चसकर महान् होवे हैं ॥ और कीर्तिकर महान् होवे है ॥ १ ॥

॥ इति सप्तमोऽनुवाकः समाप्तः ॥ ७ ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ अथ भृगुवल्ल्यष्टमोऽनुवाकः प्रारभ्यते ॥

अन्नका त्याग न करे इस व्रतका उपदेश करते हैं ॥ यहां व्रतका उपदेश अन्नकी स्तुतिअर्थ है. अथवा जल अन्न है और ज्योति अर्थात् तेज अन्नाद है जलविषे ज्योति और ज्योतिविषे जल स्थित है. सो यह अन्नविषे अन्नस्थित है जो इस अन्नविषे स्थित अन्नको जानता है सो अन्न और अन्नाद स्वरूपसे स्थित होवे है ॥ किंच ॥ अन्नवान् और अन्नाद होवे है, और प्रजाकर, पशुकर, ब्रह्मवर्चसकर, महान् होवे है ॥ १ ॥

॥ इत्यष्टमोऽनुवाकः समाप्तः ॥ ८ ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ अथ भृगुवल्लीनवमोऽनुवाकः प्रारभ्यते ॥

अन्नको बहुत करना इस व्रतका उपदेश करते हैं जल और तेजके अन्न और अन्नादका गुणवान्पणेकर उपासकका अन्नका बहुत करना व्रत है. अथवा पृथीवी अन्न है और आकाश अन्नाद है ॥ पृथिवीविषे आकाश स्थित है, आकाशविषे पृथिवी स्थित है, सो यह अन्न अन्नविषे स्थित है. जो इस अन्नविषे स्थित अन्नको जानता है सो अन्न और अन्नाद स्वरूपसे स्थित होवे है. और अन्नवान् तथा अन्नाद होवे है, और प्रजाकर पशुकर ब्रह्मवर्चसकर महान् होवे है और कीर्तिकर महान् होवे है ॥ १ ॥

॥ इतिनवमोऽनुवाकः समाप्तः ॥ ९ ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ अथ भृगुवल्लीदशमोऽनुवाकः प्रारभ्यते ॥

तैसे पृथ्वीविषे आकाशके उपासकका निवासविषे अर्थात् निवासके अर्थ प्राप्त भये किसीकोभी निवारण करता नहीं, सो व्रत है ॥ जिससे वासके दिये हुए अवश्य भोजन देना योग्य है. यातें जिस किसी प्रकारसे बहुत अन्नको प्राप्त होना अर्थात् संग्रह करना जिससे अन्नवाले विद्वान् अन्नके अर्थी अभ्यागतकेतांई इसके अर्थ अन्न सिद्ध है. देना ऐसे कहते हैं ॥ अब अन्नदानका माहात्म्य कहते हैं जैसे कालकेतांई अन्नको देता है तैसे तिस कालकेतांईही अन्नको पावता है ॥ कैसे पावता है सोई कहे हैं ? इस प्रसिद्ध सिद्ध अर्थात् रांधेहुए अन्नको मुख्य वृत्तिसे अर्थात् संस्कार पूर्वक अन्नको अर्थी अभ्यागतकेतांई देता है, तिसको क्या फल होवे है तहां कहे हैं ॥ जो इस अन्नदाताको मुख्य वृत्तिसे अन्न सिद्ध होवे है अर्थात् जैसे दिया है तैसे प्राप्त होवे है ऐसे इस प्रसिद्ध सिद्ध अन्नको मध्यम वृत्तिसे अभ्यागकेतांई देता है, तैसेही इस अन्न दाताकेतांई मध्यम वृत्तिसे अन्न सिद्ध होवे है और ऐसे इस प्रसिद्ध सिद्ध अन्नको अंतसे अर्थात् अधम वृत्तिसे अभ्यागतकेतांई देता है, तैसेही इस अधम वृत्तिसे अन्नदाताकेतांई अन्न सिद्ध होवे है ॥ १ ॥ जो ऐसे पूर्वोक्त प्रकारसे अन्नके माहात्म्यको जानता है सो पूर्वोक्त प्रकारके अन्नदानके फलको पावता है.

अब ब्रह्मकी उपासनाका प्रकार कहे हैं. ब्रह्म वाणिविषे क्षेमरूपसे स्थित उपासना करनेको योग्य है और योगक्षेमरूपसे ब्रह्म प्राण अपान विषे स्थित उपासन करनेको योग्य है, अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिका नाम योग है और प्राप्त वस्तुकी रक्षाका नाम क्षेम है और दोनो हस्तन विषे कर्मस्वरूपसे ब्रह्म उपासन करनेको योग्य है, और पादोंविषे गतिरूपसे ब्रह्म उपासन करनेको योग्य है और मृत्युरूपसे गुदाविषे ब्रह्म उपासन करनेको योग्य है, और मानुष विषे अध्यात्मकरूप मानुषी समाज्ञा अर्थात् उपासन है ॥

अब तिसकी अंतर देवनविषे होनेवाली दैवी उपासना कहिये है ॥ तृप्तिरूपसे वृष्टिविषे ब्रह्मकी उपासना है अर्थात् वृष्टिको अन्नद्वारा तृप्तिका हेतु होनेसे यातें ब्रह्म तृप्तिरूपसे वृष्टिविषे स्थित है, ऐसेही अन्यविषे तिसतिस रूपसे ब्रह्मही

उपासन करनेको योग्य है, तैसे बलरूपसे विजली विषे ब्रह्म उपासना करने योग्य है ॥२॥ और यशरूपसे यशोंविषे और ज्योतिरूपसे नक्षत्रों विषे और प्रजापति तथा पुत्रसे पितृऋणकी निवृत्ति द्वारा अमरभावकी प्राप्तिरूप अमृत और आनंद अर्थात् सुख ऐसे उपस्थविषे कहिये है. अर्थात् ब्रह्मही इस रूपसे उपस्थविषे स्थित है ऐसे उपासना करनेको योग्य है. जिससे सर्व आकाशविषे स्थित उपासना करनेको योग्य है, तातें सो सर्वकी प्रतिष्ठा अर्थात् आधार है ॥ ऐसे उपासना करना तिस प्रतिष्ठारूप गुणकी उपासनासे प्रतिष्ठावान् होवे है. ऐसे पूर्व कही उपासनाविषेभी जो जाके अधीन फल है सो ब्रह्मही है तिसकी उपासनासे तिसवाला है ऐसे जानना. काहेतें तिसको जैसेजैसे उपासते हैं सोई सोई फल होवे है ॥ इस अन्य श्रुतिसे सो महत् है ऐसे उपासना करना तब महान् होवे है और मन अर्थात् मननरूप है ॥ ऐसे उपासना करनेसे सो मानवान् अर्थात् मनन विषे समर्थ होवे है ॥ ३ ॥ सो नम अर्थात् नमनरूप गुणवाला है, ऐसे उपासना करनेसे तब इस उपासकके तांई भोगने योग्य विषयरूप काम नमते है सो ब्रह्म अर्थात् अत्यंत परिपूर्ण है ॥ ऐसे उपासना करनेसे ब्रह्मवान् अर्थात् तिसके गुणवाला होवे है, सो ब्रह्मका परिम[illegible] अर्थात् वायु है. ऐसे उपासना करनेसे भाव यह है ॥ जो जिस विषे विज[illegible] चंद्र, सूर्य और अग्नि यह पंच देवता मरते हैं ऐसा जो वायु है सो परिमर है॥ और सो यहही वायु आकाशसे अन्य नहीं अर्थात् अभिन्न एकरूप है. यातें आकाश ब्रह्मका परिमर है ॥ तिस वायुरूप आकाशको ब्रह्मका परिमर है ऐसे उपासना करनेसे ॥ ऐसे जाननेवाले उपासकके द्वेष करनेवाले शत्रु चारतर्फसे मरते हैं ॥ **किंचः** ॥ जो इसके अप्रिय भ्राताके पुत्र है वह द्वेष करनेवाले हुएभी चारों तर्फसे मरते हैं॥यहां शंका करते हैं ॥ जीव और ईश्वरकी एकता कैसे है ? तहां कहे हैं ॥ सो जो यह पुरुष विषे है, और जो सो आदित्यविषे है, सो एक है ॥ ४ ॥ जो विद्वान् सर्वको आत्मरूपसे देखता है, सो विद्वान् एककालविषे ब्रह्मरूपसे सर्वात्मभावसे सर्वकामोंको भोक्ता है उसकी सर्वात्मताका होना कैसे है ? तहां कहे है ॥ जो ऐसे जाननेवाला हे सो दृष्ट अदृष्टरूप इस लोकसे निरपेक्ष होकर पुरुष और सूर्यविषे स्थित आत्माकी एकताके विज्ञानसे अधिकन्यूनको दूर करके, इस अन्नमयरूप आत्माको उल्लंघन करके,

इस प्राणमयरूप आत्माको उल्लंघन करके, फिर इस मनोमयरूप आत्माको उल्लंघन करके, फिर इस विज्ञानमयरूप आत्माको उल्लंघन करके, फिर इस आनंदमयरूप आत्माको उल्लंघन करके, ऐसे अविद्याकल्पित अन्नमयसे आदि लेकर आनंदमय पर्यंत जो आत्मा है तिनको क्रमसे उल्लंघन करके सत्य ज्ञान अनंत अदृश्यादिक धर्मवाले स्वाभाविक आनंदस्वरूप आत्मा अजन्म अमृत अभय अद्वैत ब्रह्मरूप फलको प्राप्त होकर ॥ काम्यन्नी अर्थात् कामनाके अनुसार अन्नको पावणेवाला और कामरूप्यनुसञ्चरन् अर्थात् कामनाके अनुसार रूपनको धारनेवाला हुआ इस पृथिवीआदिक लोकनकेताईं विचरता हुआ सर्वात्मरूपसे इन लोकनको आत्मपणेकर अनुभव करता हुआ 'हा वु, हा वु, हा वु' इस सामको गायन करता हुआ स्थित होवे हैं. काहेतें इस सामको गायन करता हुआ स्थित होवे है तहां कहे हैं ॥ समरूप होनेसे ब्रह्मही साम है तिस सर्वसे अन्य नहीं अर्थात् अभिन्न ब्रह्मरूप सामको गायन करता हुआ अर्थात् आत्माकी एकताको प्रख्यात करता हुआ और लोकोंके अनुग्रह अर्थ अतिशय कृतार्थपणेरूप तिस ज्ञानके फलको गायन करता हुआ स्थित होवे है ॥ यहां तीनवार हावु शब्द जो है सो अहो इस अर्थविषे वर्तमान हुआ विस्मयके जनावणे अर्थ है ॥ ५ ॥ यह विस्मय कौन है ? तहां कहे हैं ॥ अद्वैत आत्मारूप निर्जन हुआभी मैं अन्न हूं, मैं अन्न हूं, मैं अन्न हूं ॥ मैं अन्नाद हूं, मैं अन्नाद हूं, मैं अन्नाद ॥ हूं मैं श्लोकका कर्ता हूं, मैं श्लोकका कर्ता हूं, मैं श्लोकका कर्ता हूं ॥ अर्थात् जो अन्न और अन्नादका संघात तिसका कर्ता चैतन्य मैं ही हूं ॥ यहां तीनवार जो कथन है सो विस्मयपणेके प्रख्यात करनेके अर्थ है ॥ किंवः ॥ मैं ऋत अर्थात् मूर्तअमूर्त रूप इस जगतके प्रथम उत्पन्न भया हिरणगर्भ हूं, और व्यष्टिरूप देवनसे पूर्व विराट् रूपहीं हूं॥और अमृतका नाभि अर्थात् मध्य हूं, ॥ यह प्राणियोंका अमृतभाव मेरेविषे स्थित है. जो कोईएक मुझ अन्नको अन्नार्थियोंके ताईं देता है अर्थात् रूपसे कहता है ॥ सो ऐसे अविनाशीरूप हूए मुझको रक्षण करता है, और जो अन्न मुझ अन्नको अर्थियोंके ताईं समयके प्राप्त भये न देकर अन्नको भक्षण करता है, तिस अन्नके भक्षण करनेवाले पुरुषको मैं अन्नही उलटा भक्षण करता हूं और ब्रह्मा आदिकभूतनकर भोगने योग्य ॥ अथवा

जिसविषे भूत होवे है ॥ ऐसा जो भवन हैं तिस सारे भवनको मैं परमेश्वर स्वरूपसे संहार कर्ता हूं और सूर्यकी न्याई एककालविषे मेरा प्रकाशमान ज्योति है अर्थात् प्रकाश है ॥ यह द्वितीय और तृतीय वल्लीविषे कथन करी उपनिषत् अर्थात् परमात्माका ज्ञान है ॥ तिस इस पूर्वोक्त प्रकारकी उपनिषत्को शांत, दांत, उपरत, तितक्षु और समाधानवान् होयके भृगुकी न्याई बडे तपको आश्रय करके जो ऐसे जानता है तिसको यह उक्तप्रकारका फल होवे है, सिद्ध होवे है, मानवान होवे है, एक हावु जो ऐसे जानता है और एक है ॥ ६ ॥ सो हमको रक्षण करो, सो हमको भोगावो, हमारा अध्ययन तेजस्वी होवो और हम शिष्य और आचार्य परस्पर द्वेषको मत करें ॥ ॐ अर्थात् सत्य कहता है ॥ शांति हो शांति हो शांति हो ॥

इस मंत्रमें जो भृगु तिसकेताई यहांसे लेकर कुर्वीत यहां पर्यंत जो इस तृतीयाध्यायके मंत्रनकी स्मरणार्थ संघता है तिसको अनुपयोगी जानकर भाष्यकार श्रीशंकराचार्यजीने तिसका अर्थ लिखा नही. यातें हमनेभी नहीं लिखा ॥ ७ ॥

॥ इति दशमोऽनुवाकः समाप्तः ॥ १० ॥

॥ दोहा ॥ तैत्तिरीय उपनिषत् विषे, तीसराऽध्यायअंत ॥
हरिप्रकाश जिस पढेसे, पावे शांति अनंत ॥ १ ॥

इति श्रीयजुर्वेदीयतैत्तिरीयोपनिषद्भाषाफक्का बावाहरिप्रकाश परमहंसकृतः समाप्तः ॥

॥ शुभमस्तु ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

॥ इति भृगुवल्ली समाप्ता ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ श्रीऋग्वेदीयैतरेयोपनिषद्भाषाफक्का बावाहरिप्रकाशपरमहंसकृतः प्रारभ्यते ॥

॥ दोहा ॥ ऐतरेय उपनिषत् जो, ऋग्वेदीय तूं जान ॥
हरिप्रकाश जिस देखके, पावे निजात्मज्ञान ॥ १ ॥

इस प्रकार पूर्व तीन अध्यायरूप तैत्तिरीय उपनिषत्का अर्थ दिखायकर अब ऋग्वेदकी जो ऐतेरेय उपनिषत् है तिसका आरंभ करते हैं ॥ इतराके पुत्र ने जिस प्रकार ऋग्वेदके मंत्रोंसे अपने शिष्योंको उपदेश किया है, सोई आगे कहे हैं ॥

॥ मूलमंत्र ॥ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किं-
चन मिषत् । स इक्षत लोकान्नु सृजा इति ॥ १ ॥

अर्थ यह है. प्रसिद्ध यह नामरूप क्रियास्वरूप सर्व जगत् अपनी उत्पत्ति से पूर्व एक आत्मा रूपही होता भया, अन्य कुछभी व्यापारवाला और व्यापाररहित नही था, सो आत्मा सर्वत्र अपने सद्भावके होनेसे एकरूप हुआ ईक्षण अर्थात् अवलोकनको करता भया ॥ सो किस अभिप्रायसे ईक्षणको करता भया तहां कहे हैं ॥ मैं जलादिक प्राणियोंके कर्म फलके उपभोगके स्थानरूप लोकनको निश्चय सृजों अर्थात् रचो, ऐसे ईक्षणको करके सो आत्मा इन लोकनको सृजता भया ॥ १ ॥ सो आत्मा किन लोकनको सृजता भया तहां कहे हैं ॥ अंभ, मरीची, मर, आप इनको सृजता भया अर्थात् आकाशादिकको क्रमसे ब्रह्मांडको उत्पन्न करके जलादिक लोकनको सृजता भया. तहां जलादिकको आपही श्रुति व्याख्यान करे है. यह जो जल शब्दका वाच्य लोक है सो स्वर्गसे परे महरादिक लोक है ॥ और तिस महरादिक लोकन विषे वृष्टि जलके विद्यमान होनेसे ॥ यातें महरादिक लोक अंभशब्दके वाच्य है, और जो स्वर्ग लोकसे नीचे अंतरिक्ष अर्थात् आकाश है सो मरीची है ॥ यहां सूर्यके किरणोंके वाच्य मरीची शब्दसे जनाया जो अंतरिक्ष सो एक हुआ भी अनेक स्थानोंके भेदवाला होनेसे बहुवचनका भागी है अथवा बहुत मरीचियांके सबंधसे सो अंतरिक्ष बहुवचनका भागी है और जिस विषे भूत मरते हैं, ऐसी जो पृथ्वी है सो मरनामसे कहे हैं जो पृथ्वीके नीचे लोक है वह आपनामसे कहे जाते हैं ॥ यद्यपि इन लोकनको पंचमहाभूतनका संबंधिपणा है, तथापि तिन जलादिककी बहुलतासे वह जलादिक नामसे ही अंभ मरीची मर और आप ऐसे कहिये है ॥ २ ॥ सर्व प्राणियोंके कर्मके फल और तिनके उपादान और साधनरूप पूर्वोक्त चार लोकनको सृजके, सो ईश्वर फिरभी

यह तो जलादिक मुझकर रचेहुए लोक, पालनकर्तासे रहित नाशको पावेंगे यातें इनके रक्षणार्थ मैं लोकपालनको निश्चयकरि सिरजूं ॥ ऐसे ईक्षणको करता भया ॥ इस प्रकारसे ईक्षणको करके सो जलसे अर्थात् जल प्रधान इन पंचभूतनसे पूर्वोक्त जलादिक चार लोकनको रचता भया. तिन लोकनसेही पुरुषके आकार कर युक्त शिर और हस्तादिक अंगवाले विराट् पुरुषको ग्रहण करके पृथ्वीसे ग्रहण कीए मृत्तिकाके पिंडको कुलालकी न्याई मूर्छित करता भया अर्थात् भूतनके अवयवनसे अपने अवयवनकी योजना करता भया ॥ ३ ॥ तिस पुरुष आकारवाले पिंडकेताई उद्देश करके चार तर्फसे तपता भया अर्थात् तिनके संकल्प अर्थ यह ज्ञान विचारको करता भया तिस. ईश्वरके संकल्परूप तपसे चार तर्फसे तपता अर्थात् ज्ञानको प्राप्त भये पिंडका मुख अर्थात् मुखके आकारवाला छिद्र भेदको पावता भया अर्थात् होता भया ॥ जैसे पक्षीका अंड भेदको पावता है तैसे ऐसे तिस भेदको प्राप्त भये मुखसे वाक् इंद्रियरूप करण होता भया और तिस वाक्से वाक्का अधिष्ठान अग्नि लोकपालरूप देवता प्रगट होता भया. तैसे दो नासिका भेदनको पावती भई तिस नासिकारूपसे प्राण गोलकरूप करण होता भया ॥ इहां प्राण शब्दसे प्राणवृत्तिसहित घ्राण इंद्रिय जानना ॥ तिस प्राणसे वायु देवता प्रगट होता भया. तैसे दोनो नेत्ररूप गोलक भेदको पावते भये ॥ तिनसे चक्षुरूप करण होता भया तिस चक्षुसे सूर्यरूप देवता प्रगट होता भया. तैसे दोनो कर्णरूप गोलक भेदको पावते भये ॥ तिन कर्णौं (श्रोत्र) इंद्रियरूप करण अर्थात् ज्ञानका साधन होता भया ॥ तिस श्रोत्र इंद्रियसे दिशा अर्थात् दिगपाल देवता प्रगट हुआ ॥ तैसे त्वक्रूप गोलक भेदको पाया ॥ तिस त्वचःसे लोम अर्थात् रोम होते भये ॥ यहां रोम शब्दसे रोमसहित त्वक् इंद्रिय जानना ॥ तिन लोमनसे औषधि और वनस्पति होती भयी. यहां औषधि और वनस्पति शब्दसे तिनका अधिष्ठाता देवता वायु जानना ॥ और तैसे हृदय कमलरूप गोलक भेदको पावता भया तिस हृदयसे मनरूप अंतःकरण होता भया, तिस मनसे चंद्रमारूप देवता होता भया. तैसे नाभिरूप सर्व प्राणोंके रहनेका स्थान भेदको पावता भया, तिस नाभिसे अपान अर्थात् पायु इंद्रिय होता भया. तिस अपानसे मृत्युरूप देवता होता भया. तैसे

शिश्न अर्थात् उपस्थ इंद्रियका स्थान भेदको पावता भया ॥ तिस शिश्नसे रेत अर्थात् उपस्थ होता भया ॥ यहां रेतशब्दसे शिश्न इंद्रियरूप स्थानवाला रेतका संबंधि उपस्थ इंद्रिय कहिये है ॥ रेतके त्यागरूप अर्थवाला होनेसे रेतका संबंधी है॥तिस रेतसे जल अर्थात् प्रजापति रूप देवता होते भये ॥४॥

॥ इति प्रथमाध्यायगतः प्रथमः खंडः समाप्तः ॥

जबी कर्म उपासनासे प्राप्त भये देवतायोंके शरीरोंमेंभी दुःख प्राप्त होवे है तबी अन्य मानुषादिक शरीरोंमें दुःख कैसे न प्राप्त होवेगा इस तात्पर्यके बोधनार्थ श्रुति विराटके शरीरको समुद्ररूप करके वर्णन करते है ॥ सोई दिखाते है ॥ विराट्के शरीररूप समुद्रमें अविद्या काम कर्म रचित जन्म जरा मरणही जल है. ज्ञानसे विना संसाररूप इस विराट् शरीरका नाश होवे नहीं, यातें अनंत है ॥ यह विराट् शरीररूप संसारसमुद्र प्रवाहरूपसे अनादि है और संचितादिक कर्म उसमेंसे जिसमें चक्र हैं और कामक्रोधादिक जिसमें महाग्राह हैं अज्ञानी पुरुषका पार उतरना होवे नहीं, यातें अपार है. विषय और इंद्रियोंके संबंधसे उत्पन्न होनेवाला जो आनंद है तिस आनंदमें ही विश्रामको प्राप्त होय रह्या है ॥ और विषयोंमें तृष्णारूप वायुसे उत्पन्न भयीं हैं अनंत सहस्र क्लेशरूप लहरी जिसविषे और रौरवादिक नरकोंके दुखोंकर उत्पन्न भया है ॥ हाहाकार इत्यादिक महाशब्द जिसमें तथा बालकादिक अवस्थामें होणेहारे दुःखोंकर जिस समुद्रमें हाहा मुंचमुंच इत्यादिक अनंत शब्द उत्पन्न होवे है ॥ ज्ञानरूप जहाजकर जिस समुद्रसे पार उतरणा होवे है और ज्ञानरूप जहाजमेंभी मार्गकेवास्ते अन्नादिक सामग्री चाहिये सो सत्यसंभाषण, कोमल स्वभाव, दान देना और उदारता तथा अहिंसा शम दम धैर्य तथा क्षमा इत्यादिक ज्ञानरूप जहाजमें यह सर्व मार्गवास्ते अन्नादिक है. सत्संग और सर्व स्त्री आदिक विषयोंका त्याग यह जिसमें मार्ग है और मोक्ष जिसका पार तीर है, ऐसे समुद्ररूप विराट् शरीरमें प्राप्त भये देवतात्र्योंको अशनपिपासाने व्याकुल किया, तिस विराट् शरीरमें तृप्तियोग्य अन्नजलको न देखकर अपने पिता परमेश्वरको इसप्रकार वक्ष्यमाण वचन कहतेभये ॥ हे भगवन् ! हमारे अर्थ स्थान अर्थात् शरीरको निर्माण

अर्थात् उत्पन्न कर ॥ जिंस स्थानविषे स्थित हुए हम अन्नजलको भक्षण करें ॥ १ ॥ ऐसे जब अग्निआदिक देवताओंने प्रार्थना करी, तब ईश्वर देवतावोंके अर्थ गौके आकारको रचकर दिखावता भया ॥ तब वह देवता उस गौके शरीरको देखकर कहतेभये ॥ यह पिंड हमारेअर्थ स्थित होकर अन्नके भक्षणको निश्चयकर पूर्ण अर्थात् योग्य नहीं है ॥ ऐसे देवतावोंके वचन श्रवणकरके सर्वका पिता परमेश्वर फिर अश्वको रचकर दिखावता भया, तब वह देवता कहते भये जो यह पिंड हमारे अर्थ स्थित होकर अन्नके भक्षणको निश्चयकर पूर्ण अर्थात् योग्य नहीं है ॥ ऐसे सर्वको निषेध किए हुए ॥ २ ॥ तिन देवनके अर्थ अपने योनि अर्थात् विराट् पुरुषके देहके स्वजाति पुरुषको रचकर दिखावता भया, तब वह देवता अपनी योनिरूप पुरुषको देखकर खेदसे रहित हुए यह शरीर निश्चय कर सुकृत अर्थात् शोभावाला है, ऐसे कहते भये; यातें पुरुष अर्थात् मानुष शरीरही सर्व पुण्य कर्मका हेतु होनेसे सुकृत है अथवा आप परमेश्वरने अपनेही स्वरूपसे अपनी मायाकर किया होनेसे, सो मनुष्यशरीर सुकृत कहिये है ॥ पीछे ईश्वरने जिससे सर्व अपनी योनिरूप शरीरनविषे रुचि करे है; यातें यह शरीर इन देवनको प्रिय है, ऐसे भावकर तिन देवनके प्रति कहता भया, हे देवो ! तुम यथा योग्य स्थानकेतांई जिसका जो वचनादिक क्रियाके योग्य स्थान है तिसकेतांई प्रवेश करो ॥ ३ ॥ जैसे राजाकी आज्ञा पाकर तथास्तु कहकर सेनापति आदिक नगर विषे प्रवेशको करते हैं, तैसे ईश्वरकी आज्ञाको पाकर वाक्का अभिमानी जो अग्नि देवता सो वाक्रूपही होकर अपनी योनिरूप मुखकेतांई प्रवेश करता भया, तैसे वायु प्राण अर्थात् घ्राणरूप होकर अपनी योनिरूप नासिकाकेतांई प्रवेश करता भया, तैसे सूर्य चक्षुरूप होकर नेत्रोंमें प्रवेश करता भया, तैसे दिशा अभिमानी दिग्पाल श्रोत्ररूप होकर अर्थात् श्रोत्रसे अभिन्न होकर कर्णोंविषे प्रवेश करता भया; तैसे औषधि वनस्पतियां लोमरूप होकर त्वक्केतांई प्रवेश किया; तैसे चंद्रमा मनरूप होकर हृदयकेतांई प्रवेश करता भया, तैसे मृत्यु अपान रूप होकर अर्थात् गुदारूप होकर नाभिकेतांई प्रवेश करता भया, तैसे प्रजापति जल रेत अर्थात् उपस्थरूप होकर मानुषनकेतांई प्रवेश करते भये ॥ ४ ॥ ऐसे देवतावोंको

स्थानकेतांई प्राप्त हुएभी अशन और पिपासा यह दोनोने तिस ईश्वरके प्रति प्रार्थना करी. हे भगवन्! हमारे अर्थ स्थानको चिंतन करो अर्थात् उत्पन्न करो ॥ ऐसे जब कह्या तब सोई ईश्वर तिन अशन पिपासाकेताई कहता भया: जिससे तुमको भाव अर्थात् धर्मरूप होनेसे ॥ और चेतनावाली वस्तुरूप आश्रयसे रहित होनेसे भोक्तापणा नहीं संभवे है यातें इस अध्यात्म अर्थात् व्यष्टि देहगत और अधिदैवत अर्थात् समष्टि विराट् देहगतरूप अग्नि आदिक देवता विषेही तुम दोनोंकी वृत्तिके विभागसे अनुग्रह करता हूं. इन देवता विषे तुम दोनोको भागवालियां करता हूं अर्थात् तिन देवनका हवि आदिकरूप भाग है, तिन तिन देवनके तिसही भागसे तुम दोनोको भागवाली करता हूं, तातें सृष्टिके आदिविषे ईश्वर ऐसेही करता भया; सो अबभी जिसी किसी देवताके अर्थ चरू और पुरोडाशादिरूप हवि ग्रहण करते हैं॥ इन देवता विषे यह अशन पिपासा दोनो भागवाली होवे हैं ॥ ५ ॥

॥ इति प्रथमाध्यायगतो द्वितीयः खंडः समाप्तः ॥ २ ॥

सो ईश्वर ऐसे ईक्षणा करता भया ॥ कैसे करता भया? तहां कहे हैं जो यह प्रसिद्ध लोक और लोकपाल मेरेकर रचे हैं और वह अशन पिपासा कर योजना किए है यातें इनकी स्थिति अन्नविना नहीं होवेगी. यातें इन लोक तथा लोकपालनके निमित्त अन्नको रचों. ऐसे ईक्षणा करता भया ॥ ऐसेही लोकोंविषे ईश्वरनका अर्थात् सामर्थ्यनका अपने किंकरादिक मैं अनुग्रह और निग्रह अर्थात् दंडविषे स्वतंत्रपणा देखता है. तैसे महेश्वरकोभी सर्वका ईश्वर होनेसे सर्वकेप्रति अनुग्रह और निग्रहकेतांई स्वतंत्रपणा है ॥ १ ॥

सो ईश्वर अन्नके रचनेकी इच्छा करता हुआ तिन पूर्वोक्त जल अर्थात् जलप्रधान पंचभूतनके तांईही उदवेश करके तप अर्थात् संकल्पको करता भया ॥ तिस तप अर्थात् ईश्वरके संकल्पको प्राप्त भये उपादानरूप जलनसे घन अर्थात् कठिनरूप और शरीर धारणके समर्थ चराचररूपमूर्ति उत्पन्न भयी जो प्रसिद्ध सो मूर्ति उत्पन्न भयी सो निश्चयकर अन्न है अर्थात् जो उत्पन्न भया अन्न है सो मूर्तिरूप है ॥ और जो सो मूर्ति उत्पन्न भयी सो

यह अन्न है ॥ २ ॥ सो यह अन्न लोकपालनके सन्मुख छोड्या हुआ जैसे मूशकादिक बिलारादिकके दृष्टिके सन्मुख छोड्या हुआ यह, मेरा मृत्यु अन्नाद है ऐसे मानकर पीछे जाता है, तैसे सो अन्न पराङ्मुख हुआ अपने भोक्ताको उल्लंघन करनेकी इच्छा करता भया अर्थात् आपकी पालणा करनेको आरंभ करता भया, तिस अन्नके अभिप्रायको मानके सो लोक और लोकपालनके संघातनसे, कार्य और कारणरूप पिंड अर्थात् विराट् प्रथम उत्पन्न भया विराट् होनेसे अन्नोंको अन्नादकीन्याई तिस अन्नको वचनक्रियारूप वाणिसे ग्रहण अर्थात् भक्षण करनेको चाहता भया, परंतु तिसको वाणिसे ग्रहण करनेको समर्थ नहींभया ॥ सो प्रथम उत्पन्न भये शरीरवाला विराट् जिससे इसको वाणिसे ग्रहण करता भया, यांते सर्वलोकभी तिसका कार्य होनेसे इसको वाचकशब्दसे कथन करके ही तृप्त होतेभये ॥ ३ ॥ तिसको प्राण अर्थात् घ्राणसे ग्रहण करनेको चाहता भया, तिसको प्राणसे ग्रहण करनेको समर्थ नही भया ॥ जिससे सो इसको प्राणसे ग्रहण करता भया तिससे सर्व लोकभी इस अन्नको सूंघकेही तृप्त होते भये ॥ ४ ॥ फिर तिसको चक्षुसे ग्रहण करनेको चाहता भया, तिसको चक्षुसे ग्रहण करनेको समर्थ नहीं भया ॥ जिससे इसको चक्षुसे ग्रहण करता भया, तांते सर्वलोकभी इस अन्नको देखके तृप्त होते भये ॥ ५ ॥ फिर तिसको श्रोत्रसेही ग्रहण करनेको चाहता भया, तिसको श्रोत्रसे ग्रहण करनेको समर्थ नहींभया ॥ जिससे इसको श्रोत्रसे ग्रहण करता भया, तांते सर्वलोकभी इस अन्नको श्रवण करकेही तृप्त होतेभये ॥ ६ ॥ फिर तिसको त्वचासेही ग्रहण करनेको चाहता भया ॥ तिसको त्वचासे ग्रहण करनेको समर्थ नही भया, जिससे इसको सो त्वचासे ग्रहण करता भया, यातें सर्वलोकभी इस अन्नको स्पर्श करकेही तृप्त होते भये ॥ ७ ॥ फिर तिसको मनसे ग्रहण करनेको चाहता भया, तिसको मनसे ग्रहण करनेको समर्थ नही भया, जिससे सो इसको मनसे ग्रहण करता भया, यांते सर्व लोकभी इस अन्नको चिंतन करकेही तृप्त होतेभये ॥ ८ ॥ फिर तिसको शिश्नसे ग्रहण करनेको चाहता भया, तिसको शिश्नसे ग्रहण करनेको समर्थ नहीं भया. जिससे सो इसको शिश्नसे ग्रहण करता भया, यातें सर्व लोकभी इस अन्नको त्यागकेही तृप्त होते भये ॥ ९ ॥ पीछे तिसको

अपान वायु अर्थात् मुखछिद्रसे ग्रहण करनेको चाहता भया, तब तिस अन्नको भक्षण करता भया; तिस कारणकर सो यह अपानवायु अन्नका ग्राहक है ॥ जो वायु अन्नसे जीवनवाला प्रसिद्ध है सो यह जो वायु है ॥ १० ॥ सो ऐसे पुर और पुरके निवासी जन और तिनके पालक राजभृत्यनकी स्थिति के तुल्य अन्नरूप निमित्तवाली लोक और लोकपालनके संघातकी स्थितिको करके पुरके स्थानीकीन्याई ईक्षण अर्थात् अवलोकनको करता भया ॥ कैसे जो यह कार्यकारणका संघातरूप आगे कहनेका कार्य है सो परके अर्थ हुआ स्वामीविना पुरकीन्याई मुझसे विना निश्चयकर किसप्रकारसे स्थित होवेगा ॥ फिर जब वाणिसे कथन किया होवे, जब प्राणसे सूंघा होवे, श्रोत्रसे श्रवण किया होवे, जब त्वचासे स्पर्श किया होवे, जबमनसे चिंतन किया होवे, जब अपानसे भक्षण किया होवे, जब शिश्नसे त्याग किया होवे, तब मै कौन हूं ऐसे ईक्षण करता भया ॥ फिर सो पिता रचनेवाला परमात्मा प्रवेशकेवास्ते विचार करता भया ॥ जो अपानादिक सहित यह संघात मेरे विना किंचितभी कार्य करनेको समर्थ नही है ॥ जैसे पुरस्वामी राजाके विना पुरकी शोभा होवे नहीं तैसे मुझ चैतन्यके विना इस स्थूलसूक्ष्म संघातकी सिद्धि होवे नही ॥ यातें मैं इस संघातविषे शब्दादिकोंके भोगवास्ते तथा अपने स्वरूपके ज्ञान-वास्ते अवश्य प्रवेश करूं ॥ ऐसे प्रवेशके संकल्पको करके फिर प्रवेशके मार्गका विचार करता भया ॥ क्रिया शक्तिवाले प्राणने तो पादके अग्र भागमार्गकर प्रवेश किया है ॥ ज्ञान शक्तिके अभावसे जड जो यह प्राण है तिसको गुणदोषका विवेक नहीं हैं, यातेंही तिस प्राणने पादाग्ररूप निकृष्ट मार्गकरकेही इस शरीरमें प्रवेश किया है और चैतन्यरूप मेरे-कोभी अब इस संघातमें अवश्य प्रवेश करना योग्य है, परंतु जिन मार्गोंकरके मेरे भृत्य प्राणादिकोंने प्रवेश किया है, तिन मार्गोंकरके मैं स्वामीको प्रवेश करना योग्य नहीं है ऐसे विचार करके॥ ११ ॥सो परमेश्वर सर्वका जनक अपनी समीपता मात्रसे मूर्ध सीमाको भेदन करता हुआ ॥ तिस मूर्धसीमामार्गकरकेही इस शरीर विषे प्रवेश करता भया अर्थात् सो ईश्वर यह जो स्त्रीकेशनके विभाग पर्यंत मस्तककी सीमा है, तिस इसही सीमाको विदारण करके अर्थात् छिद्र करके इसद्वार अर्थात् मार्गसे इस कार्यकारणके संघातरूप लोकके तांई प्रवेश

करता भया,सो यह सीमा विदारण भया, विदारण होनेसे विवृति नामवाला प्रसिद्ध द्वार है. सो यह द्वार नांदन अर्थात् आनंदका हेतु है; जिस द्वारकर जाय के परम ब्रह्मविषे आनंदको पावता है, सो द्वार नान्दन कहिए है ॥ इसही रचेहुए अपने पुरकेतांई राजाकी न्याई जीवरूपसे प्रवेश भये परमात्माके तीन स्थान हैं. जाग्रत काल विषे दक्षिणका चक्षु और स्वप्न कालविषे भीतरका मन अर्थात् मनका आश्रय कंठस्थान है और सुषुप्ति कालविषे यह हृदयाकाश स्थान है. इन तीन स्थानमें जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति नामवाली यह तीन अवस्थां स्वप्न अर्थात् भ्रमरूप है और यह स्थान दक्षिण चक्षुरूप प्रथम है यही स्थान भीतरके मनरूप द्वितीय है, यहही स्थान हृदयकाशरूप तृतीय है, यहां यह स्थान ऐसा जो उच्चारण है सो पूर्वोक्त अर्थकाही अनुवाद है ॥१२॥ जिससे यह आत्मा तिन स्थानोंविषे क्रमकर आत्मभावसे वर्तमान होके स्वाभाविक अविद्यासे दीर्घ कालपर्यंत गाढ निद्राको पाया हुआ प्रबोधको पावता नहीं सो परमात्मा प्रगट हुआही भूतनकोही मैं मानुष हूं, मैं अंध हूं, मैं सुखी हूं, इत्यादिक प्रकारसे तादात्म्यकर स्पष्ट जानता भया और कहता भया ॥ इस शरीरविषे अन्य आत्माको क्या कहता भया ॥ नही कहता भया और नहीं जानता भया ॥ जिससे ऐसे है, तातें भूतनको स्पष्ट जानता भया ॥ अथवा सो प्रगट हुआ भूतनको चिंतन करता भया अर्थात् इनकी स्वरूपसे सत्ता है अथवा नहीं है, ऐसे विचारता भया और विचार करके किस अन्य अर्थात् आत्मासे भिन्न स्वतः सत्तावालेको कहूं ॥ किसीकोभी आत्मासे भिन्न कहनेको समर्थ नही हूं ऐसे निश्चय करता भया॥ऐसे पदार्थके शोधनवाले पुरुषको वाक्यार्थका ज्ञान कहे है ॥ सो इसही शरीररूप पुरिविषे रहनेवाले आत्मारूप पुरुषको आकाशकी न्याई परिपूर्ण ब्रह्मरूप देखता भया कैसै देखता भया तहां कहेहैं ॥ जो हो इस ब्रह्मरूप मुझ आपके स्वरूपको देखता हूं, ऐसे जिससे इसी अर्थात् यह शब्दका वाच्य जो साक्षात् अपरोक्ष सर्वांतर ब्रह्म है, तिसको अपरोक्षरूपसे देखता भया ॥ १३ ॥ जिससे सर्वांतर ब्रह्मको यह अर्थात् अपरोक्ष प्रत्यगात्मा ऐसे देखता भया, यातें परमात्मा अदिंद्रनामवाला होता भया ॥ लोकविषे ईश्वर अदिंद्रनामवाला प्रसिद्ध है तिस ऐसे अदिंद्र हुए परमात्माको यह ब्रह्मवेत्ता तिसको अत्यंत पूज्य होनेसे ॥

और तिसके प्रत्यक्ष नाम ग्रहणके भयसे सम्यक् व्यवहार अर्थ परोक्ष नामसे इंद्र ऐसे कहते है तैसेही दिखावे है ॥ जातें अर्थात् जब अन्य देव परोक्षप्रिय अर्थात् परोक्षनाम ग्रहणसे प्रीतिवालेकी न्याई है॥ देव परोक्षप्रियकी न्याई है तब सर्व देवनकाभी देव जो परमेश्वर सो परोक्ष प्रिय अर्थात् परोक्ष नाम ग्रहणसे प्रीतिवाला है, इसमें क्या कहना कुछभी नही यहां दोवार जो कथन है सो इस अध्यायकी समाप्तिके अर्थ है ॥ १४ ॥

॥ इति तृतीयः खंडः समाप्तः ॥ ३ ॥

॥ इत्यैतरेयोपनिषत्प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १ ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ अथैतरेयोपनिषद्गतद्वितीयाध्यायरूप-श्चतुर्थः खंडः प्रारभ्यते ॥

इस अध्याय विषे यह आगे कहनेके वाक्यका अर्थ कहना चाहते हैं जिससे जगतकी उत्पत्ति स्थिति प्रलयका कर्ता असंसारी सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्ववित् परमेश्वर इस जगत्को स्वरूपसे भिन्न अन्य वस्तुको नहीं ग्रहण करकेही आकाशादिकको क्रमसे रचकर और स्वस्वरूपके बोधार्थ सर्व प्राणादिक वाले शरीरनकेंताई आप प्रवेश करता भया और प्रवेश करके अपने आत्मा-को जैसेका तैसा यह ब्रह्म मैं हूं ऐसे साक्षात् जानता भया, तातें सोई आत्मा सर्व शरीरनमें एकही है अन्य नही ॥ ऐसे पूर्व कहकर अब उस आत्म ज्ञान की प्राप्ति वास्ते वैराग्यका निरूपण करे है; काहेतें जो आत्मज्ञान वैराग्यसे विना उत्पन्न होवे नहीं और वैराग्य दोषदृष्टिसे विना होवे नहीं इस हेतुसे अब प्रथम श्रुतिमाता इस शरीरके दोषोंको दिखावे है ॥

यहही अविद्या काम और कर्मवान् जीव यज्ञादिक कर्मको करके इस मृत्यु लोकमें धूमादिकके क्रमसे चंद्रमस अर्थात् स्वर्गलोकको पाकर कर्मके क्षय वाला हुआ वृष्टि आदिकके क्रमसे इस भूमिलोकको पाकर अन्नरूप हुआ पुरुष अर्थात पितारूप अग्नि विषे होमको पाया है, तिस पुरुष विषे प्रसिद्ध यह संसारी रसादिक धातुके क्रमसे वीर्यरूपसे गर्भ होवे है ॥

तिसको कहे हैं, जो यह पुरुषविषे रेत अर्थात् वीर्य है तिसरूप होवे है और जो यह रेत अन्नमय पिंडके रसादिक धातुरूप सर्व अंगोंसे शरीरका साररूप तेज उपजिया है. सो पुरुषका आत्मारूप होनेसे आत्मा है ॥ तिस रेतरूपसे गर्भरूप भया आत्मा अर्थात् आपको आत्मा अर्थात् शरीरविषेही धारता है तिस रेतको जब अर्थात् जिसकालविषे भार्या ऋतुमती होवे है, तिस कालविषे तिस स्त्रीरूप अग्निविषे स्त्रीकेतांई गमन करता हुआ सिंचन करे है तब पिता तिस इस आपके गर्भरूप रेतको जन्म देता है ॥ इस संसारीका वीर्यके सिंचनविषे जो तिस पुरुषके स्थानसे निकसता है सो प्रथम जन्म है अर्थात् प्रथम अवस्थाका प्रगटपणा है ॥ १ ॥ सो रेत जिस स्त्रीविषे सिंचन किया है तिस स्त्रीके स्वरूपसे अभिन्नताको पावता है ॥ जैसे पिताके स्वरूपसे अभिन्नताको पाया था तैसे ॥ और जैसे अपना अर्थात् स्त्रीका स्तनादिरूप अंग आपके स्वरूपसे अभिन्नताको पाया है, तैसेही अभिन्नताको पावता है. तिस हेतुसे सो गर्भ इस माताको नाश करता नहीं ॥ सो गर्भिणी ऐसे इस गर्भरूप भर्ताके इस आत्माको यहां उदरविषे प्रवेशको पाया जानकर पालन करे अर्थात् गर्भसे विरुद्ध भोजनादिकके त्यागको और गर्भके अनुकूल भोजनादिकके उपयोगको करे है ॥ २ ॥ सो गर्भरूप भर्ताके स्वरूपकी पालना करनेहारी गार्भिणी स्त्री भर्ताकर रक्षा करनेको योग्य होवे है ॥ उस गर्भको स्त्री जन्मसे पूर्वोक्त गर्भ धारणके विधानसे धारण करे है. सो पिता जन्मसे पूर्वही उत्पन्न होनेवाले कुमारको और जन्मसे पीछे उत्पन्न भये कुमारको जातकर्मादिकसे जो पालन करता है सो आपकोही पालन करे है अर्थात् पिताका आत्मा अर्थात् शरीरही पुत्ररूपसे जन्मता है सो किस अर्थ आपको पुत्ररूपसे उत्पन्न करके पालन करे है तहां कहे हैं ॥ इस पुत्रपौत्रादिरूप लोकनकी संतति अर्थात् अविच्छेदार्थ पालना करे है, कुमाररूपसे माताके उदरसे जो निकसता है सो रेतरूपकी अपेक्षासे इस संसारी पुरुषका द्वितीय जन्म है अर्थात् दुसरी अवस्थाकी प्रगटता है ॥ ३ ॥ पिताका सो यह पुत्ररूप आत्मा शास्त्रोक्त पुण्य कर्मोंके अर्थ स्थापन करते हैं अर्थात् पिताको जो कर्म करने योग्य है, तिसके अर्थ पिताके स्थानविषे स्थापन करते हैं ॥ पीछे पुत्रविषे अपने भारको स्थापन करके इस पुत्रका यह पितारूप

जन्म आत्मा है; सो कृतकृत्य अर्थात् तीन ऋणोंरूप कर्तव्यसे मुक्त और जीर्ण हुआ मरता है सो इस लोकसे शरीरको परित्याग करताही तृणजलौंकाकी न्याई कर्मरचित अन्य शरीरको ग्रहण करता हुआ फिर जन्मता है ॥ मरणको पाकर जो प्राप्त होनेको योग्य है सो इस पुरुषका तृतीय जन्म अर्थात् तीसरी अवस्थाकी प्रगटता है, सो यह वस्तुका तत्व मंत्रमेंभी कहा है, ऐसे आगेके वाक्यविषे ब्राह्मणभाग कहे है ॥ ४ ॥ माताके गर्भस्थान विषे शयन अर्थात् स्थित हुआ अनेक जन्मांतरके परिपाक पुण्यके वश्यसे मैं इन वाक् और अग्निआदिक देवनके सर्व जन्मोंको अहो अर्थात् आश्चर्य है जो जानता हूं ॥ मुझको अनेक लोहमयीकी न्याई भेदन करनेको अयोग्य शरीररूप पुरियां रक्षण करती भई अर्थात् पिंजरेकी न्याई बंधन करती भई ॥ मैं संसार फाससे निकसनेको नीचे अर्थात् नीचे देखता हुआ श्येन पक्षीकी न्याई आत्मज्ञानके किए सामर्थ्यसे जालको भेदन करके निकसा हूं ॥ इस रीतिसे अहो गर्भविषेही स्थित हुआ वामदेव ऋषि यह ऐसे कहता भया ॥ ५ ॥ सो वामदेव ऋषि पूर्वोक्त आत्माको ऐसे जानता हुआ इस शरीरके भेदसे अर्थात् अविद्याकल्पित और लोहके पिंजरकी न्याई भेदन करनेको अयोग्य जन्ममरणादिक अनेक सैकडे अनर्थनकर व्याप्त शरीररूप बंधनको परमात्माके ज्ञानरूप अमृतके योगसे जन्यत सामर्थ्यके किये भेदसे अर्थात् शरीरकी उत्पत्तिके बीजरूप अविद्या आदिक निमित्तके विनाशसे शरीरके विनाशसे उर्द्ध अर्थात् परमार्थरूप हुआ अधोभावरूप संसारसे निकसकर ज्ञानसे प्रकाशित निर्मल सर्वात्मभावको प्राप्त हुआ उक्त प्रकारके अजर अमर अभय सर्वज्ञ अकारण अकार्य अनंत प्रज्ञान अगूढ एकरस स्वस्वरूपभूत स्वर्गलोक निर्वाणको प्राप्त भये दीपककी न्याई प्राप्त होता भया ॥ अपूर्व आत्मज्ञानसे प्राप्त कामनावाला होनेकर जीवता हुआभी सर्व कामोंको पाकर अमृत होता भया ॥ यहां दोवार जो कथन है सो फलसहित और वामदेवकी उदाहरणसहित आत्मज्ञानकी परिसमाप्तिके दिखावने अर्थ है ॥ ६ ॥

॥ इत्यैतरेयारण्यके चतुर्थः खंडः पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ५ ॥

॥ इत्युपनिषद्गतद्वितीयाध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ अथैतरेयोपनिषद्गततृतीयाध्यायरूपः पंचमः खंडः प्रारभ्यते ॥

बामदेवादिक आचार्यनकी परंपरासे श्रुतिकर प्रकाशितभी और ब्रह्मवेत्तोंकी सभाविषे अत्यंत प्रसिद्ध ब्रह्मविद्यारूप साधनके किये सर्वात्मभावरूप फलकी प्राप्तिको जानते हुए आधुनिक ब्राह्मणरूप मुमुक्षु ब्रह्मकी जिज्ञासावाले और जीवभाव पर्यंत अनंत साधनरूप संसारसे निकसनेकी इच्छावाले होकर विचार करते हुए परस्पर पूछते भये ॥ कैसे पूछते भये ? तहां कहे हैं ॥ जिस आत्माको यह आत्मा है साक्षात् हम उपासना करे कौन सो आत्मा है ॥ ऐसे और जिस आत्माको यह आत्मा है ऐसे साक्षात् उपासना करता हुआ वामदेव ऋषि अमृत होता भया तिसही आत्माको हमभी उपासना करे कौन प्रसिद्ध सो आत्मा है ? ऐसे परस्पर पूछते भये तिनको प्रथम कथन किए जो देह विषे प्रवेश भये प्राण और आत्मा तिनको विषय करनेवाली श्रवणसे जन्यत अनुभव जन्यसंस्कारद्वारा स्मृति उपजती भयी और वह प्राण तथा परम ब्रह्म इस पिंडके आत्मरूप है, तिन दोनोंके विषे एक आत्मा उपासना करने योग्य होवे है ॥ जो यहां उपासना करनेयोग्य है कौन निश्चयकर सो आत्मा है ऐसे विशेष निर्धारणके अर्थ फिर विचार करते हुए परस्पर पूछते भये ॥ फिर तिन विचार करनेवालेको विशेष विचारके आश्रयको विषय करनेवाली बुद्धि होती भयी ॥ कैसी होती भयी ? जो इस पिंडविषे अनेक भेदकर भिन्न करनेसे दोनो वस्तु प्रतीत होवे है ॥ जिसकर प्रतीत होवे है और जो एक अन्य करणोंकर जानेहुए विषयकी स्मृतिके संधानसे प्रतीत होवे है, तहां प्रथम जिसकर प्रतीत होवे है सो आत्मा होनेको योग्य नहीं है ॥ किसकर प्रतीत होवे है ? तहां कहे है ॥ जिस चक्षुकर प्रसिद्ध रूपको देखता है, जिस श्रोत्रकर शब्दको श्रवण करता है, जिस घ्राणकर गंधको सूंघता है, जिस वाणि रूप करणकर वचनको बोलता है, जिस जिह्वाकर स्वादु और अस्वादु रसको जानता है ॥ १ ॥ सो एक करण अनेक प्रकारसे किस निमित्त भेदको पाया

है तहां कहे है ॥ प्रजाका रेत अर्थात् सारभूत कार्य हृदय है और हृदय विषे स्थित रेत अर्थात् सारभूत कार्य मन है, और मनसे जल तथा वरुण रचे है ॥ जो यह पूर्व कथन किया हृदय और मनरूप करण सोई यह तेरेकर पूछा हुआ करण एक हुआ चक्षु आदिकके भेदसे अनेक प्रकारके भेदको पाया है ॥ अब आत्माके अष्टादश (अढारह) नाम कहे हैं ॥ जिससे हृदय विषे आत्माका प्रत्यक्ष होवे है, यातें आत्माका नाम हृदय है और आत्मा सर्वका मनन करे है यातें आत्माको मन नाम करके कहे है और आत्माही अपने कल्पित जगतको प्रकाशे है, यातें इस चैतन्यात्माको संज्ञान कहे है और सूर्य चंद्र इंद्र वायु अग्नि वरुण यम कुबेरादिक सर्व प्राणी इस आत्माकी आज्ञाविषे रहे हैं; इस कारणसे तिस आत्माका अज्ञान यह नाम है ॥ और यह आत्माही गीतवाद्यादिक चौसठ कलाके ज्ञानवाला है, यातें इस आत्माको विज्ञान नामकरके कहेहै ॥ और वर्तमान पदार्थोंको यह आत्मा जाने है, यातें इस आत्माको प्रज्ञाननामकरके कहे है ॥ और यह आत्मा ग्रंथके अर्थको धारण करे है, यातें इस आत्माको मेधा कहे है ॥ और यह आनंदरूप आत्मा इंद्रियोंकरके घटादिकको प्रकाशे हैं यातें इस आत्माको दृष्टि कहे हैं ॥ और जिस अंतःकरणकी वृत्तिसे दुःखी हुआभी पुरुष इंद्रियोंको धारण करेहैं उस वृत्तिविशिष्ट आत्माका नाम धृति है ॥ और यह आत्माही सर्व प्राणियोंके हृदयमें स्थित हुआ शुभ अशुभको जाने हैं यातें इस आत्माका नाम मति है ॥ और संकल्पविकल्परूप मनको अधीन करनेवाली बुद्धिकी जो वृत्ति है, तिस वृत्तिविशिष्ट हुए इस आत्माको मनीषा कहेहै ॥ और अध्यात्मादिक त्रिविध दुःखनकर उत्पन्न भई जो अंतःकरणकी वृत्ति तिस वृत्तिका प्रकाशक होनेसे इस आत्माका नाम ज्योति कहे है ॥ और भूत पदार्थोंको स्मरण करनेवाली जो वृत्ति तिसके साथ मिलनेसे आत्माको स्मृति कहे है ॥ और रक्तपित्तादिक अनेकरूपसे आत्माही सम्यक् कल्पना करे हैं, यातें आत्माको संकल्प कहेहै, और यह आत्माही घटादिकके निश्चय करनेसे क्रतु कहावे है ॥ और यह आत्मा अपनी समीपता करके प्राणोंकी चेष्टा करावे है, यातें आत्माको असु कहे हैं ॥ और प्राप्तविषयकी तथा दुःखनिवृत्तिकी इच्छाको करे हैं, यातें इस आत्माकोही काम कहेहै ॥ और स्त्रीसुखकी पुरुषको जो

अभिलाषा है तिस अभिलाषारूप वृत्तिको यह आत्मा प्रकाश करेहैं, यातें इस आत्माको वश कहे हैं ॥ यह अष्टादश नाम आत्माके हमने निरूपण किये हैं ॥ यह सर्व प्रज्ञानके नाम होवे हैं ॥ २ ॥ यह प्रज्ञानरूप आत्मा ब्रह्म है, यहही इंद्र है, यहही प्रजापति है, अग्निआदिक सर्व देव यहही है और यह सर्व शरीरनके उपादानरूप पृथिवी वायु आकाश जल तेजरूप यह अन्न और अन्नादभावरूप पंचभूत यहही है, और यह सर्व अल्पजंतुओंकर मिश्रित सर्पादिक यहही है, बीज अर्थात् करण और इतर अर्थात् कार्यरूप यहही है, और अन्य स्थावर तथा जंगम भेदसे कथन किए अंडज अर्थात् अंडजन्य पक्षी आदिक और जरायुज अर्थात् जरायुजन्य मानुषादिक और स्वेदज अर्थात् स्वेदजन्य यूकादिक और उद्भिज्ज अर्थात् पृथ्वीको फोड़कर ऊपर जानेवाले वृक्षादिक और अश्व गौ मानुष हस्ति और अन्य जो कुछभी यह प्राणियोंका समूह जो दो और चार पादोंसे चलता है, ऐसा जो जंगम और जो आकाशमें उड़नेके स्वभाववाला पक्षी है और जो स्थावर अर्थात् अचल हैं, सो सर्व तर्फसे प्रज्ञारूप नेत्र निर्वाहकवाला है और प्रज्ञानरूप ब्रह्मविषे उत्पत्ति स्थितिलयकालविषे स्थित है सो प्रज्ञाके आश्रित है ॥ जिससे प्रज्ञारूप नेत्र अर्थात् निर्वाहकवाला लोक है इस प्रज्ञारूप नेत्र अर्थात् चक्षुवाला सर्व लोक है, यातें प्रज्ञा ब्रह्म सर्व जगतकी प्रतिष्ठा अर्थात् आश्रय है, तातें प्रज्ञान अर्थात् प्रत्यगात्मा ब्रह्म है॥यह ब्रह्म सर्व उपाधिसे रहित सत्य निरंजन निर्मल अद्वैतरूप है ॥ ३ ॥ जिसही प्रज्ञानरूपसे ब्रह्मके जाननेवाले विद्वान् पूर्व अमृत होते भये तिसही प्रज्ञानरूपसे उक्त प्रकारसे ब्रह्मको जाननेवाला जो वामदेव तथा अन्य विद्वान् सो अमृत होते भये ॥ तैसे यह आधुनिक विद्वानभी इसीही प्रज्ञानरूपसे ब्रह्मको जानकर इस लोकसे उत्क्रमण करके अर्थात् देहात्मभावका त्याग करके उस ब्रह्मरूप स्वर्गलोकविषे सर्वकामोंको पाकर अमृत होवे है ऐसे ओं अर्थात् अंगीकार किया है इस प्रकार इतराका पुत्र वेदके मंत्रोंसे अपने शिष्योंके तांई उपदेश करता भया ॥ ४ ॥

॥ इति पंचमः खंडः समाप्तः ॥ ५ ॥

॥ दोहा ॥ ईशादिक उपनिषत् अष्ट, चतुरवेदकी मान ॥
हरिप्रकाश जिस पठेसे, पावे ब्रह्मात्मज्ञान ॥ १ ॥
नित्यप्रति करे पाठ इसे, श्रवण करे युत प्रेम ॥
हरिप्रकाश तिस पापहत, पावे योग सक्षेम ॥ २ ॥
ईशादिक उपनिषत् अष्ट, वारंवार विचार ॥
आत्मज्ञानको पायके, रत जे द्वैत संसार ॥ ३ ॥
गुरमुखद्वार विचार कर, संशय सकल मिटाय ॥
भेद कुतर्क सर्व त्यागके, एक अद्वैत उर ध्याय ॥ ४ ॥
शशिग्रहरसनभ जाण, यह सम्वत् विक्रमादित्य ॥
रवि तुलाका प्रगट भयो, इतिश्री ग्रंथपढ नित्य ॥ ५ ॥
डेरासमेलखानमें, मम गुरु रामप्रकाश ॥
नागकुंचवत देह ताजि, भये ब्रह्म चिदाकाश ॥ ६ ॥
तांकी कृपाकटाक्षते, साधुसेवसे मीत ॥
जाण्यो रामहृदयविषे, गयो साविद्याभीत ॥ ७ ॥
॥ सोरठा ॥ टांक बनूंके पास, डेरा समेलखान जो ॥
तांमें कऱ्यो निवास, इतिश्री भयो ग्रंथ सकल ॥ ८ ॥
गुणग्राहक बुद्धिजन जगत, अवगुण ग्राहक मूढ ॥
हरिप्रकाश स्वकुतर्क तजो, गहो सार अतिगूढ ॥ ९ ॥

इतिश्रीऋग्वेदीयैतरेयोपनिषद्गततृतीयाध्यायरूपःपंचमःखंडःसमाप्तः ॥५॥

शुभमस्तु ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

इतिश्रीचतुर्वेदीयेईशाद्यष्टोपनिषद्भाषा बावा ॥
हरिप्रकाशपरमहंसकृतासमाप्ता ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ श्रीशास्त्रविहितस्वानुभवसिद्धांतभाषाफक्का बावाहरिप्रकाशपरमहंसकृतः प्रारभ्यते ॥

॥ दोहा ॥ चैतन्यब्रह्म सुखरूप, नित्यनमो निजातमासार ॥
हरिप्रकाश जिस ज्ञानसे, मिटे सतम संसार ॥ १ ॥

एक श्रद्धावान् साधुसेवी शास्त्रविचारवान् मोक्षार्थी नामकरके पुरुष था, वह एक सर्व शास्त्रवित् ब्रह्मात्मस्वरूपाभेददर्शी सहजानंद महात्माके समीप जाकर दंडवत् प्रणाम करके नम्रतापूर्वक प्रश्न करता भया ॥

॥ मोक्षार्थी उवाच ॥ हे भगवन् ! नानावेदशास्त्रपुराणस्मृतिआदिक पुस्तक तथा मतमतांतर नानाप्रकारके देखकर मेरी बुद्धि भ्रमिक होगई है और उनमें नानाप्रकारके विरुद्धवाक्य है एक संमति नहीं, यातें आप कृपा-करके मेरी भ्रामकबुद्धिको निवृत्त करके यथार्थ निश्चय कराओ ॥

इसप्रकार तिस श्रद्धावान् सत्संगी पुरुषके वचन श्रवण करके वह महात्मा सहजानंद गुरु उत्तर कहते भये ॥

॥ श्री सहजानंदोवाच ॥ हे प्यारे! शास्त्रोंका विरोध अविचारसे प्रतीत होवे है ॥ जब पूर्ण दृष्टिसे विचार किया जावे, तब किंचित मात्रभी विरोध प्रतीत नहीं होता ॥ हे तात ! सर्व वेदशास्त्रस्मृति पुराणादिक ग्रंथनका साक्षात् अथवा परंपराकरके एक अद्वैत परमात्मस्वरूपके बोध करावणे विषे तात्पर्य है और सर्व पुरुष संपूर्ण अत्यंत दुःखकी निवृत्ति तथा सर्वदा काल आनंदकी प्राप्तिको चाहते हैं ॥ ऐसा मोक्षका स्वरूप है सो ऐसी मोक्ष ब्रह्मात्म स्वरूपाभेदके ज्ञान विना प्राप्त होवे नहीं, और सो ज्ञान चित्तशुद्धि वैराग्यादिक साधनोंके विना उत्पन्न होता नहीं और चितशुद्धि निष्काम शुभ कर्मोंसे बिना होवे नहीं, और निष्कामता भोगोंसे तृप्त हुए विना नहीं और भोगोंसे तृप्ति भोगोंके गुण अवगुणके विचारसे विना होवे नहीं और गुण अवगुणका विचार भोगोंके विना होवे नहीं और भोगोंका भोगना सकाम कर्मोंसे

विना प्राप्त होवे नहीं ॥ और सकाम कर्मभी साधन तथा फल तथा अधिकारियोंके भेदसे नानाप्रकारके हैं ॥ जैसा रोगी होता है उसके रोगानुसार उपाय बताया जाता है. तहां चार प्रकारके पुरुष होते हैं ॥ पामर १, विषयी २, जिज्ञासू ३ और मुक्त ४, यह चार प्रकारके पुरुष हैं ॥ जो शास्त्रसंस्कार रहित शास्त्रविरुद्ध इष्ट अनिष्ट भोगोंको भोगे सो पामर कहिये है ॥ और जो शास्त्रानुसार भोगोंको भोगता हुआ परलोकके उत्तम विषय भोगसुखके निमित्त शास्त्रानुसार कर्मोंको करे सो विषयी कहिये हैं ॥ और इस लोक तथा परलोकके विषयसुखोंको त्यागकर केवल साधनसंपन्न ज्ञानकी इच्छावाला पुरुष सो जिज्ञासू कहिये है ॥ और अभेद ब्रह्मात्मज्ञानी पुरुषको मुक्त कहिये है ॥ इस प्रकार पूर्वोक्त चतुर्विध पुरुषोंमेंसे प्रथम पामरको स्वर्गसुखका लालच देकर शास्त्रविहित कर्मोंमें प्रवृत्त करायकर विषयी बनाया जाता है ॥ फिर विषयी पुरुषको स्वर्गादिक विषयसुखविषे दोष दिखायकर सो वैराग्यवान् हुआ केवल मोक्षार्थी जिज्ञासू होजाता है ॥ फिर ब्रह्मात्मस्वरूपके ज्ञानको पाकर सो मुक्त होजाता है ॥ इस प्रकार क्रमपूर्वक चढ़कर अधिक अवस्थावाले होजाते हैं ॥ और वेदशास्त्र स्मृतिपुराण इतिहासादिक सर्व ग्रंथ यथाधिकार सार्थक है ॥ कई वाक्य सकाम अधिकारियोंके वास्ते कहेहैं और कई वाक्य निष्काम अधिकारियोंके वास्ते हैं और कई वाक्य चित्तकी एकाग्रता वास्ते है ॥ सो उपासना योगादिक है, और उपासनाभी निर्गुण सगुण प्रतीकादिकके भेदसे बहुत प्रकारकी है. और कई वाक्य वैराग्यकी उत्पत्तिवास्ते हैं ॥ जैसे इतिहासादिकका कथन राजाका वृत्तांत, सर्व वैराग्यकी उत्पत्तिविषे तात्पर्य है; काहेतें जो ऐसे राजा अधिराजा नहीं रहे हमने क्या रहना है इस प्रकारही तात्पर्य है ॥ और कई वाक्य ज्ञान और ज्ञानके साधनोंके प्रतिपादक हैं ॥ इस प्रकार सर्व वेदशास्त्रपुराणादिकके वाक्य यथार्थ हैं, परंतु पूर्वापरका विचार करनेसे मूढ पुरुषोंको विरोध प्रतीत होवे है निरपेक्ष यथार्थ वक्ता महात्माकी दृष्टिसे कुछ विरोध नही है ॥ सर्व वाक्योंका तात्पर्य अद्वैतात्मस्वरूपके बोध करावनेविषे है ॥ जिस प्रकारसे जिस प्रक्रियाकर अद्वैत बोध होजावे सोई श्रेष्ठ है ॥ यह वार्ता सुरेश्वराचार्यनेभी कही है ॥

श्लोक ॥ यथा यथा भवेत्पुंसां व्युत्पत्तिः प्रत्यगात्मनि ॥
सा सैव प्रक्रियेह स्यात्साध्वीति च व्यवस्थितः ॥

अर्थ यह है जिसजिस प्रक्रियाकरके पुरुषोंको प्रत्यगात्मस्वरूप ब्रह्मका अद्वैत बोध होजावे,सो सो निश्चयकर यहां प्रक्रिया श्रेष्ठ है यहही व्यवस्थित है॥ इसप्रकार वास्तव तात्पर्य यहही है ॥ जो शांतिसुखकी इच्छावाला विचारवान् पुरुष शुष्क वादविवादको छोडकर और तात्पर्य समझकर ज्ञातज्ञेय हुआ शांति आनंदको प्राप्त होवे है ॥ और अज्ञानी मूढ पुरुष तात्पर्यको न समझकर शुष्क वादविवादमें चित्त लगायकर सर्वदाकाल रागद्वेष कर जलता रहता है ॥ हे तात ! तुमभी इस पूर्वोक्त प्रकारसे तात्पर्य समझकर शांतिआनंदको ग्रहण करो॥

दोहा ॥ शास्त्रविहित सिद्धांत कह्यो, स्वानुभवकृत विचार ॥
हरिप्रकाश जिस पढेसे, पावे शांति अपार ॥ १ ॥

इति शास्त्रविहितस्वानुभवसिद्धांतभाषा बावाहरिप्रकाशपरमहंस०स० ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ मनउपदेशकशब्दभाषा बावाहरिप्रकाशपरमहंसकृता प्रारभ्यते ॥

शब्दराग आसा ॥ मनरे झूठी जगकी यारी ॥ मात तात सुत मीत बिरादर बांधव घरकी नारी ॥ यह सर्व मतलबके हैं साथी देखा सोच विचारी ॥ यह नहीं अंतकाल छुडावत भजो गोविंद मुरारी ॥ स्वासस्वास दिनरात अमिर सचितवो गर्भप्रहारी ॥ हरिप्रकाश झूठा जग सारा साचा त्रिभुवनधारी ॥ १ ॥

शब्दराग बिलावली ॥ मनरे गोविंद दीनदयाल ॥ भक्तवत्सल शरणागत रक्षक दुःखहर्ता कृपाल ॥ जो जनसाची भक्ति करत है उसको करे निहाल ॥ अंतर कपट बाह्य करमाला उनसे परें गोपाल ॥ साचे संतभक्तका साथी दुष्टनकरे बिहाल ॥ हरिप्रकाश गोविंद भजो नित्य छांडो सकल जंजाल ॥२॥

शब्दराग भैरवी ॥ मनरे गोविंद आश है भारी ॥ राजारंक उसीसे मांगे पंडित शूर भिखारी ॥ सुर नर सिद्ध ऋषि मुनि मांगे वह सर्वका दातारी ॥

उस बिन दाता अवर न कोई देखा खूब विचारी॥ योगी यती सती संन्यासी वह सर्वका सुखकारी॥हरिप्रकाश गोविंद भजो नित्य राखो आश मुरारी॥३॥

शब्दरागमारू॥ मन रे गोविंद काहे विसारो॥ धाम गाम धन मीत संबंधी झूठा सकल परिवारो॥ झूठी वस्तु साचीकर मानी करे न कछु विचारो॥ अंतकाल सर्व छांड जात है किस विधि करत पसारो॥ मरण कालमें सर्वजन भाखें गोविंद नाम चितारो॥ हरिप्रकाश गोविंद गुण गावो जिससे होय उधारो॥ ४॥

शब्दराग वडवा॥ मन रे तूं निशादिन हाय हाय रोता॥ भोगन में तुम प्रीति करत हो मोह नींद नित्य सोता॥ सुखस्वरूप निज आतम जानो दुखका बीज किम बोता॥ जेते मलिन स्वभाव है अंतर एक वैराग्य सर्व धोता॥ विना वैराग विचारसे भाई सुख कभी नहीं होता॥ हरि प्रकाश सत्यरूप परमात्म देखो जगत अनहोता॥ ५॥

शब्दराग मारू॥ मन रे मौत रेल उर धार॥ वत्नप्यार छोड लै भाई कर्मगठड़ी हो त्यार॥ जीवन देकर फारखती लै टिकट प्रारब्ध बाबूसे करो न प्यार॥ वृद्ध अवस्था टेम रैलका बाल स्वैत घंटी बजी विचार॥ ईशगार्डकी भयी इशारत यमकिंकर लै चले हुशियार॥ हरिप्रकाश नही जोर किसेका सर्व चलते हाथ पसार॥ ६॥

शब्दराग कल्याण॥ मन रे गर्व न कीजे प्यारे॥ जिससे ऋषि मुनिनर देव गर्व करे सर्व भारे॥ रावण कंस भौमासुर सगरे गर्व करते हारे॥ जिससे ईश्वर गर्वप्रहारी ऐसे वेद पुकारे॥ जिस जिसने कुछ गर्व किया है गोविंद उसे धिकारे॥ हरिप्रकाश नमत चित अंतर करत निवास मुरारे॥ ७॥

शब्दराग पहाड़ी॥ मन रे सुखीया सोई पछान॥ जिसको आत्मदृष्ट भयी है द्वैतभ्रम तिनकी नाहान॥ बैठ इकंत करे अभ्यास झूठा देखे सकल जहान॥ शांति संतोष धरे निजअंतर विषयभोग चाहे नहीं मान॥ होय वैराग्य विचार जिस अंतर समता दृष्टि उपज्यो उर ज्ञान॥ हरिप्रकाश ऐसो जन सुखीया निरिच्छत पद पाय निर्वान॥ ८॥

शब्दराग बिहागड़ा॥ मन रे भेदभ्रम सर्व त्यागो॥ जहांकहां एक परमातम देखो अज्ञान नींदसे जागो॥ हों मै रागद्वेष तज दीजे जाण

विषय सम आगो ॥ पूर्ण परमानंद पद पावो द्वैतदृष्टिसे भागो ॥ यह संसार स्वप्नवत मिथ्या इनसे करो वैरागो ॥ हरिप्रकाश तुम रहो बांचारह ब्रह्म-चिंतनमें लागो ॥ ९ ॥

शब्दराग जैजावंती ॥ मन रे जन्म वृथा क्यों खोते हो ॥ बैठ इकंत चितवो निजआतम दुखवीज क्यों बोते हो ॥ शांतिसंतोष धरो निजअंतर हाहाकर क्यों रोते हो॥जगत भ्रम स्वप्नवत मिथ्या अज्ञाननींद क्यों सोते हो॥ धर वैराग्य विचार करो नित्य क्यों मगरूर तुम होते हो ॥ हरिप्रकाश छोड़ सर्वे धंधे क्यों तुम नीर बिलोते हो ॥ १० ॥

शब्दरागपूर्वी ॥ मन रे झूठा सकल संसार ॥ पांच दिवसका जगतप-सारा तुम देखो हृदय विचार ॥ रज्जु सांप सीपमें रूपा मरूजल निहार ॥ स्वप्नप्रपंच बहुत विधि भासे ऐसा यह जग धार ॥ जलतरंग स्वर्णमें भूषण झूठा जगतपसार ॥ हरिप्रकाश एक सत्य परमातम द्वैतदृष्टि देडार ॥ ११ ॥

शब्दराग प्रभाती ॥ मन रे रागद्वेष कर दूर ॥ रागद्वेष तुम किससे करते एक चैतन्य भरपूर॥ राजभोग सर्व तुच्छ पदारथ कभी न हो मगरूर॥ घटघटमें निज आतम देखो दूसर नहीं कोई नूर ॥ रागद्वेषसे शांत न होती यह वेदनमें मशहूर ॥ हरिप्रकाश भेद द्वैतका कीजे चकनाचूर ॥ १२ ॥

शब्दराग आसा ॥ मन रे पांच चोर घर लागे ॥ तुम तो सोते मोहनीं-दमें यह लूटत तुझ आगे ॥ वासनासाथ तुझेको बांधे होय न तुमे वैरागे॥मान-मदिरा तुमें पिलावें खोटे कर्म तुझ जागे ॥ वेदशास्त्रका कह्या न माने तेरे बडे अभागे ॥ हरिप्रकाश बंधन सर्व कोटो करो गोविंद अनुरागे ॥ १३ ॥

शब्दराग भैरवी ॥ मन रे गोविंद भजो निष्काम ॥ जन्मजन्म बहुते दुख पाय अब कियें करत सकाम ॥ कर्मसकामबंधनके कारण जानो दुखके ग्राम ॥ निष्काम कर्म मुक्तिके हेतु देते सुखआराम ॥ कपट त्याग करो सतसंगत भजो हरिका नाम ॥ हरिप्रकाश गोविंदकृपासे मिले शांतिसुख धाम ॥ १४ ॥

शब्दराग बिलावली ॥ मनरे ईश्वरकी गति न्यारी ॥ क्षणमें राजा रंक बनावे रंक भूप सुखकारी ॥ जलमें मरूथल करडारे थलमें सिंध अपारी ॥ रोगी निर्बल सुखी बलवंता सुखीए लगे बिमारी ॥ शूरा धनी कायर निर्धन होय कायर बीर धनुधारी ॥ हरिप्रकाश आश्चर्य गति प्रभु देख देख सर्व हारी॥१५॥

शब्दराग मलार ॥ मनरे तूं हरदम शुकर गुजार ॥ जो चाहेगा ईश्वर भाई होयगा उसी प्रकार ॥ छांड अहंकार कर्तव्य सकल तुम ईशभरो साधार ॥ ईशअधीन सभी कुछ होता वेदनका यह सार ॥ होय प्रसन्न भजोन निज आत्मसुख दुख हाथ करतार ॥ हरि प्रकाश शांति रहौ तुम जगजीवन दिन चार ॥ १६ ॥

शब्दराग जंगला ॥ मन रे तृष्णा बड़ी दुखदाई ॥ तृष्णा लगी फिरे दश दिशमें मिले न सुखकी राई ॥ कभी रसायण पारस चाहे कभी भूतन देवमनाई ॥ कभी सिंधके मोती वांच्छे कभी भूमि बहुत खुदाई ॥ विन प्रारब्ध कुछ हाथ न आवे ऐसे वेद बताई ॥ हरि प्रकाश संतोष जगतमैं यह पारस सुखदाई ॥ १७ ॥

शब्दराग जंगला ॥ मन रे साक्षी सर्वसे न्यारा ॥ दीपवत सर्व जगत्‌-प्रकाशक नामरूप आधारा ॥ पंचकोश और तीन अवस्था सर्वका देखनहारा ॥ अंतरयामी सर्वका ज्ञाता ज्योतिरूप अपारा ॥ दृश्यसे पहिले आप प्रकाशे पाछे दृश्य निहारा ॥ हरिप्रकाश वह दूर नहीहै घटघट उस उज्यारा ॥ १८ ॥

शब्दराग आसा ॥ मन रे काहेको फिरत उदासा ॥ अंतरबाहिर घटघट पूर्ण जलथल ब्रह्मनिवासा ॥ मृगनाभिमें है कस्तूरी मूर्ख फिरे निराशा ॥ निकट जलको जाने नाहीं मूर्ख मच्छप्यासा ॥ तज अज्ञान देखो निजअंतर जहां कहां चिदविलासा ॥ हरिप्रकाश दूसर नही कोई भ्रम तजो सर्व आशा ॥१९॥

शब्दराग भैरवी ॥ आज आय देव मुरार ॥ घरघर खुशीयां करो तुम यार ॥ श्रद्धा दीप प्रेमका तेल बत्ती ध्यान लगावो ॥ गुरुउपदेशकी ज्योत लगावो तब देखो दीप बहार ॥ १ ॥ वैराग्यझारूसे साफ करो मन नामका दीजे लेपा ॥ विचारचित्रसे करो चित्रकारी तब खुलें अजब असरार ॥ २ ॥ ब्रह्माकार वृत्ति है लक्ष्मी पूजन तिसका कीजे ॥ संतोष धूप शमादिपुष्पसे तुम करो जयजयकार ॥ ३ ॥ वेदवचनकी छोड़ो आतशबाजी घरघर मंगल गावो ॥ दीपमाल यह हरिप्रकाश तुम देखो खूब विचार ॥ ४ ॥ २० ॥

शब्दराग वसंत ॥ साधो खुलियां बसंत बहार ॥ साधुसंगत मिल आनंद पाया उपज्या तत्वविचार ॥ शुभ गुणोकी फूली फुलवारी हुआ मंगलचार ॥

सद्गुरु मोपर कृपा कीनी जागे भाग हमार ॥ घटघटमें परमातमपूरण जहां कहां एक निहार ॥ हरिप्रकाश संतनकी महिम वेदन कही अपार ॥ २१ ॥

॥ इति मनउपदेशशब्द समाप्त ॥

काफी ॥ ईहां कोई दिनका है गुजारा ॥ दुनिया आखिर कूच पसारा ॥ कहां गये वह मुलकके वाली ॥ जो थे शाहनशाहं आली ॥ उनां उमर बे-फायदा गाली ॥ नही रम्न्या सर्जनहारी ॥ १ ॥ जिन पाप कमाय भारी ॥ वह कर सन हायहायकारी ॥ सुत बांधव मीत और नारी ॥ यह कोई न पक-ड़सी यारा ॥ २ ॥ जो दुनियामां लख जाने ॥ तुझ आपणेकरके माने ॥ यह जूठे छोड़ ध्यानें ॥ जप गोविंद नाम करतारा ॥ ३ ॥ जिन बहुते पुण्य क-माय ॥ उनका गोविंद हुआ सहाय ॥ वह हरि प्रकाश सुख पाय ॥ उसने आपणा आप उधारा ॥ ४ ॥ २२ ॥

काफी ॥ **अंतरमुखीरामायण प्रारंभः** ॥ दशेरा अजब बण्या है यार ॥ अंतर देखो खूब बहार ॥ ज्ञानरूप राम सुखदाता ॥ विचाररूप लक्ष्मण है भ्राता ॥ वैराग्य हनुमान मदमाता ॥ श्रुतिमात कुशल्या चारु ॥ १ ॥ ब्रह्म वृत्ति सीता सुखरूप ॥ वांदर दैविगुणस्वरूप ॥ दशरथ अभ्यास परम अनूप ॥ शुद्ध हृदय अयुध्यासार ॥ २ ॥ कुमति ककेई जानो मीत ॥ संतोषरूप है भर्त पुनीत ॥ शत्रुघन है शीलविनीत ॥ गुरुरूप वशिष्ट निहार ॥ ३ ॥ विश्वामित्रतप पहिछान ॥ क्रोधं कुतर्क खर दूखण मान॥चिंता ताड़का मारियो जान ॥ विद्यारूप अहिल उधार ॥ ४ ॥ जनकपुरी है प्रीति सुखदाई ॥ राजाजनक सतसंग कहाई ॥ धनुषचंचलतारूप दुखदाई ॥ जब टूटा भया जयकार ॥ ५ ॥ शास्त्ररूप बनवास उजागर ॥ चित्रकूट है चित्त एकाग्र ॥ इंद्री पंचवटी दुखागर ॥ तृष्णाशूर्पनखा बिस्यार ॥ ६ ॥ पाखंड स्वर्णमृग है भाई ॥ जटायुरूप निरोध बताई ॥ भीलनी श्रद्धारूप जनाई ॥ किंशकंद गंभीर विस्तार ॥ ७ ॥ विवेक सुग्रीव मित्र तुम देखो ॥ अविवेकरूप बालीको पेखो ॥ धैर्यरूप अंगदको वेखो ॥ आशा जानो तारा नार ॥ ८ ॥ मानस-मुद्र प्रेम है सेत ॥ पुण्यरूप पाथर धरलेत ॥ यमनियम नलनील सुचेत ॥ हरि भजन रामेश निर्धार ॥ ९ ॥ लंकाहृदय मलिन पछानो ॥ कुंभकरण मोह

तुम जानो ॥ मेघनाद कामको मानो ॥ पुनः रावण है अहंकार ॥ १० ॥ धर्मरूप विभीषण देख ॥ असुरिगुण राक्षस सर्व पेख ॥ विषय अशोक वनको वेख ॥ बुद्धिरूप मंदोदरी धार ॥ ११ ॥ जामवंत शुभ मन सुख देता ॥ शुभ कर्म सर्वरीच्छसमेता ॥ रावण मार सीयाको लेता ॥ सेना-सहितहुए तैयार ॥ १२ ॥ शांतपुष्पकविमान मंगाया ॥ तिसपर चढकर घरमें आया ॥हरिप्रकाश ब्रह्मानंद पाया ॥ यम बूझे कोई विचार ॥ १३ ॥

इति अंतरमुखी रामायण समाप्त ॥ २३ ॥

काफी ॥ यह ज्ञान रैल सवारी है ॥ तुम चढ़ो क्या मुशकिल भारी है ॥ विचार इंजन यह है सुखदाई ॥ युक्तियाँ बहुत कला हैं भाई ॥ प्रेम अभ्यास जल कोइला गाई ॥ नित्य चलती चाल न्यारी ॥ १ ॥ नेक ख्याल सर्व फीते है ॥ नित्य श्रद्धा सड़क चलीते है ॥ इष्टेशन भूमिका पहुचीते है ॥ यह ॐ तार हरकारी है ॥ २ ॥ जिज्ञासी कलको हाथमें धारत ॥ दीगर कोई न इसे विचारत ॥ सत्यगुरु गार्ड जब देत इशारत ॥ तब यह चलती बहुत प्रकारी है ॥ ३ ॥ बाबू संत पुकार करी ॥ लेवो टिकट वैराग्य त्यारधरी ॥ जिन दाम दीया उन हाथ परी ॥ नहि दूसर बात विचारी है ॥ ४ ॥ जब बाबू टिकट बताते हैं ॥ निष्काम धर्मी लै जाते हैं ॥ अधर्मी टिकट न लाते हैं ॥ नही उनको मुक्त प्यारी है ॥ ५ ॥ वेदसि पाही अवाज दिया ॥ घंटी उपदेशने शोर किया ॥ धर्मी चढ़ आनंद लीया ॥ नित्य उनको बड़ी हुशियारी है ॥ ६ ॥ शौकगाड़ी यह साथ लगाई ॥ कोई न इस पर चढता भाई ॥ खाली जाती देत दिखाई ॥ यह हमने खूब निहारी है ॥ ७ ॥ जब यह मौत चराग प्रकाशीं॥चढकर रैल होय उदासी ॥ हरिप्रकाश कटी जगफांसी ॥ उन पाई मुक्त सिरदारी है ॥ ८ ॥ २४ ॥

रेखता ॥ *है न्यारी लटक फकीरांकी ॥ १ ॥ कहूं तो टुकर मांग मांग* खाते कहूं तो मौज अमीरांकी ॥ २ ॥ कहूं तो रोटी रेती मिलती कहूं तो मेवे खीरांकी ॥ ३ ॥ कहूं तो रेशमी वस्त्र पहिने कहूं तो गोदडी लीरांकी ॥ ॥ ४ ॥ कहूं तो हाथी घोड़े चढते कहूं तो बातहकीरांकी ॥ ५ ॥ कहूं तो पृथ्वी आसन करते कहूं तो सेज वजीरांकी ॥ ६ ॥ कहूं तो जावें धके मिल

ते कहूं तो खातर पीरांकी ॥ ७ ॥ ब्रह्मानंदमें मग न जो रहिते चाह नहीं तिन हीरांकी ॥ ८ ॥ हरिप्रकाशको रूप पछाणे वृत्ति रखे है धीरांकी ॥९॥२५॥

काफी ॥ कुशती मनसे खेलो यार ॥ और कुशती सर्व देवो बिसार ॥ यह मन दुशमन है दुखदाई ॥ इसमें जोर बड़ा है भाई ॥ राह पेचसे आप बचाई ॥ तुम रहौ सदा हुशियार ॥ १ ॥ सत संगतमें कसरत कीजे ॥ पुण्य बढाय जोरकर लीजे ॥ शास्त्रयुक्ति यह पेच सिखीजे ॥ गुरुरूप उस्तादको धार ॥ २ ॥ हृदय स्थानमें पिडी लगाय ॥ भले बुरे गुणलोक सर्व आय ॥ मनके पेचसे आप बचाय ॥ तब कभी न होवे हार ॥ ३ ॥ हरिप्रकाश जब पेच होय जोर ॥ तब मन मरे मिटे सर्व शोर ॥ भागे कामादिक तम घोर ॥ मुक्ति इनाम मिले जयकार ॥ ४ ॥ २६ ॥

काफी ॥ उलटा शब्द सुनो तुम भीत ॥ जिनको जाण मिटे भवभीत ॥ मूशमार दीयो मार्जार ॥ मृगने केशरी शेर विदार ॥ चींटी खाय लीया पहार ॥ यह देखो आश्चर्य रीत ॥ १ ॥ जलमें अग्नि जले तुम देखो ॥ अग्नि लगी तन शीतल पेखो ॥ गंगा उलट वहे यह वेखो ॥ तितर बाज लीयो है जीत ॥ २ ॥ बालिक सिंधु तऱ्यो इक क्षणमें ॥ मुर्दा नाच करे निशदिनमें ॥ अंधारूप पिखे क्षणक्षणमें ॥ मक्खी गिरंद उडाय दीत ॥ ३ ॥ हिमालय तप्त देत है भाई ॥ चींटी मारियो हस्ति राई ॥ हरि प्रकाश यह रमजा बुझाई ॥ गुरुविन अर्थ न आवे चीत ॥ ४ ॥ २७ ॥

काफी होली ॥ होली ऐसी खेलो यार ॥ जिससे मुक्ति मिले सुख यार ॥ नेक बखत फागन तुम जानो ॥ सत संगत होली तब मानो ॥ वचन संतोंके रंग पछानो ॥ तुम देखो अजब बहार ॥ १ ॥ हरिका नाम यह खूब गुलाल ॥ हरिकी भक्ति अबीर शिर डार ॥ ढोल वैराग्य बजाउ नाल ॥ फिरो तब इंद्रियांरूप बाजार ॥ २ ॥ साधुसेवा पिचकारी लीजे ॥ प्रेमरूप केशर यह कीजे ॥ मनके उपर निहशंक डारीजे ॥ तब यह मन भरवा हुआ पुकार ॥ ३ ॥ तनमंदरमें आतम ठाकुर ॥ संतोष ढोलकी शम ताल बजाकर ॥ वचन संतोके रंग उडाकर ॥ तब भरवा भरवा मुखों उचार ॥ ४ ॥ मन मूर्ख जग स्वांग बनावे ॥ खेल देखाय लोक भ्रमावे ॥ बुद्धि कंजरीकर

नाच देखावे ॥ तमाशा अंतर देख विचार ॥ ५ ॥ हरिप्रकाश यह होली खूब ॥ और होलीमै मत तू डूब ॥ शांति मुक्ति सुख मिले अजूब ॥ अंतर देखो खूब गुलजार ॥ ६ ॥ २८ ॥

काफी ॥ जुआ ऐसा खेलो यार ॥ जिससे उपजे ब्रह्म विचार ॥ मनके साथ खेलो तुम जूआ ॥ नेक काम दाउ तुझ हूआ ॥ मनका दाउ बदकर्म यह हूआ ॥ तुम रहौ सदा हुशियार ॥ १ ॥ एक विचार दूजो सत संग ॥ तीजो चढे भजनका रंग ॥ तीन पासे यह डार निसंग ॥ जीत होवे या हार ॥ २ ॥ विचार भजन सत संग पछान ॥ जब यह बहुत अठारह जान ॥ तेरी जीत होय मनकी हान ॥ तव होय तेरी जयकार ॥ ३ ॥ जब थोडे त्रय काणे जानो ॥ मनको जीतेगा रख ध्यानो ॥ हरिप्रकाश तूं भज भगवानो ॥ इस मनको दीजे मार ॥ ४ ॥ २९ ॥

काफी ॥ हरदम काल चितारो यार ॥ जिसने मारे जीव अपार ॥ रावणादि भूमासुर सारे ॥ ब्रह्मा आदि सकल तिन मारे ॥ तुम क्या रहोगे कीट विचारे ॥ दूर करो अहंकार ॥ १ ॥ दिलमें मौत रखो तुम याद ॥ दूर होवे तब झगड़ा वाद ॥ एक घड़ी नही करो प्रमाद ॥ यह झूठा सकल संसार॥२ होंमै बहुत मचाई धूम ॥ मैं धनवंत मेरी है भूम ॥ मैं हूं दाता यह है सूम ॥ कुछ मूढ न करे विचार ॥ ३ ॥ हरिप्रकाश मानुष तन जोई ॥ पुण्य बडेसे प्राप्त होई ॥ गोविंद भजनविन व्यर्थ न खोई ॥ तुम आपणा करो उधार ॥ ४ ॥ ३० ॥

काफी ॥ धनधन सतसंगत सुख सार ॥ जिनकी महिमा वेद पुकार ॥ कामक्रोधलोभादिक चोर ॥ आशा तृष्णा चिंता घोर ॥ मनीराम जो करता शोर ॥ क्षणमें भाग तयार ॥ १ ॥ शीलसंतोष क्षमासुखरूप ॥ धैर्य श्रद्धा बोधस्वरूप ॥ प्रेम भक्ति वैराग्य अनूप ॥ पावे और विचार ॥ २ ॥ कपट त्याग करो सतसंग ॥ श्रद्धासहित चढे हरिरंग ॥ पापकामना होते भंग ॥ तब देखे सकक मुरार ॥ ३ ॥ हरिप्रकाश शांति सुख जोई ॥ सतसंगतसे प्राप्त होई ॥ इस समान नहीं कोई ॥ यह मुख कृष्ण उचार ॥ ४ ॥ ३१ ॥

काफी ॥ संतां बहुत किया उपकार ॥ भेटा कबन चढावों यार ॥ पहिले जगमें फिरो दिवाना ॥ दुन्याबीच रहों गलताना ॥ सतसंगतकी सार न जाना

तब तृष्णा बढी अपार ॥ १ ॥ संता हाथ पकड़कर लीया ॥ सतसंगतमें वासा दीया ॥ साधुसेव अमृतरस पीया ॥ तब मिटगयो तृष्णाभार ॥ २ ॥ संतान इक बात बताई ॥ घरतेरेमें ठाकुर भाई ॥ बाहिर ढूंढे आप भूलाई ॥ तुम अंतर करो विचार ॥ ३ ॥ संतनवाक प्यारा लागा ॥ मनविचार मैं कन्यो अनुरागा ॥ मोहभ्रम सर्वे दिलसे भागा ॥ तब देखा आत्मसार ॥ ४ ॥ जो नर आवे संतापास ॥ तृष्णामोह करे सर्वनाश ॥ ब्रह्मानंदविषे होय वास ॥ यह भाखें वेद पुकार ॥ ५ ॥ हरिप्रकाश कचसे लाल ॥ कपटरहित श्रद्धाके नाल ॥ संत करत है बहुतनिहाल ॥ यह मुख कृष्ण उचार ॥ ६ ॥ ३२ ॥

काफी ॥ सज्जनो अंतर तीर्थ नाउ ॥ जिससे आनंद रूप समाउ ॥ प्रयागराज है ब्रह्मानंद ॥ सर्वयलोंका जानो कंद ॥ जिससे रहे कोई फंद ॥ राखो निश दिन भाउ ॥ १ ॥ सतसंगतअभ्यास विचार ॥ गंग यमन सरस्वति धार ॥ ज्ञान अक्षयबट देखो सार ॥ दूसरभावमिटाउ ॥ २ ॥ दैवीगुण साध सर्वजान ॥ शांतित्रयवेणीमज्जन मान ॥ ठाकुर चिद्घन ब्रह्म पछान ॥ घरमें परचा पाउ ॥ ३ ॥ ब्रह्मवृत्ति सुरैल चढीजे ॥ ब्रह्मानंद प्रयाग नवीजे ॥ हरिप्रकाश सर्वद्वंद मिटीजे ॥ दूर न कतहूं जाउ ॥ ४ ॥ ३३ ॥

काफी ॥ अब हमहोली खेलें लाल ॥ हमरे मिटगये सर्व जंजाल ॥ पुण्यसमूहफागन प्रगटाना ॥ सतसंगत होली तब जाना ॥ अहंब्रह्म गुलाल वहाना ॥ तब होगये लालोलाल ॥ १ ॥ श्रवणमननिदध्यासन जोई ॥ तालमर्धंगढोल पुनः सोई ॥ सोहंसोहंध्वनि जब होई ॥ तब रह्यो न कोई ख्याल ॥ २ ॥ बुद्धिवृत्तिसाखियां जब नाचें ॥ तिनमें साक्षी कृष्ण सुमाचें ॥ जो जन इस कौतकमें राचें ॥ सो जन ततही होय निहाल ॥ ३ ॥ हरिप्रकाश होली जबपाई ॥ तब ब्रह्मानंदरूप समाई ॥ भेददृष्टि तबरही न कोई ॥ जग भूलियो हाल बिहाल ॥ ४ ॥ ३४ ॥

काफी ॥ अंतर खेले साक्षी कान ॥ मेरी बुद्धि भई हैरान ॥ तनबिंद्राबन खेलमचाया ॥ गोपीवृत्ति नाच नचाया ॥ अनहतसाज सो खूब बजाया ॥ कवन करेव्याख्यान ॥ १ ॥ जहां जहां गोपी जावे भाई ॥ साक्षी कृष्ण सोनाल रहाई ॥ सूक्षम गति न समझी जाई ॥ गुरुगम्य पावेज्ञान ॥ २ ॥ मनअर्जुनको करे उपदेश ॥ त्यागो धर्म अनात्मभेश ॥ मेरी शरण न रहे-

कलेश ॥ पावो पद निर्बान ॥ ३ ॥ हरिप्रकाश लखसाक्षी स्याम ॥ ब्रह्मवृत्ति राधिका वाम ॥ मनमंदरमें कीनो धाम ॥ राखो निशदिन ध्यान ॥ ४ ॥ ३५ ॥

काफी ॥ आरती ॥ आरती ऐसी कीजे लाल ॥ घरमें देखो ब्रह्मगोपाल ॥ तन मंदर है खूब स्थान ॥ ठाकुर चिद्घन आतम मान ॥ मन चौकीपर स्थित जान ॥ पूजा करो विसाल ॥ १ ॥ प्रेमजल स्नान करवीजे ॥ शुभ वासना वस्त्र दीजे ॥ भूषण नवधा भक्ति चढीजे ॥ क्षमा तिलक कर भाल॥ २॥ दीपक ज्ञान ध्यानकर धूप ॥ ज्योति विचार शंखशमरूप ॥ वैराग घंटा बजत अनूप ॥ अनहत घुंघरूताल ॥ ३ ॥ संतोष भोजन भोग लगाया ॥ सीद प्रसादें शांतिको पाया ॥ हरिप्रकाश सर्व द्वंद मिटाया ॥ कृतकृत्य भये निहाल ॥४॥ ३६ ॥

॥ इति काफीयां बावा हरिप्रकाश
परमहंसकृत समाप्त ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

॥ अथ श्रीआत्मस्तोत्राष्टकभाषाछंद बावा हरिप्रकाश परमहंस कृत प्रारंभ ॥
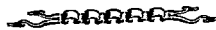
॥ छंद ॥ निराकार निर्गुणरूप पूर्ण परमानंद स्वरूप हो ॥ अद्वैत अपार अखंड चैतन्य वेदवेद्य शिवरूप हो ॥ द्वंदातीत अजीत केवल कल्नाहीन अनूप हो ॥ जयजय सर्वात्मदेव आत्मतीन लोकके भूप हो ॥ १ ॥

अनंत ब्रह्म अनूप ज्योति सर्व शक्तिके धाम हो ॥ अलेप अनुभव शांति मूर्त गुणातीत अभिराम हो ॥ निर्भय निरंजन वेद गावें नेति नेति निष्काम हो ॥ जयजय सर्वात्म देव आत्म वारवार प्रणामहो ॥ २ ॥

सत्यरूप ज्ञाता सर्वत्राता अक्रिय सर्वआधार हो ॥ नामरूप विहीन हीनकलंक जगतके पार हो ॥ तुरीयातीत अभेद साक्षी निर्विकल्प निराधार हो ॥ जयजय सर्वात्म देव आत्म शुद्धरूप अपार हो ॥ ३ ॥

पंच भूतातीत अचूत व्यापक भूताधार अकलेश हो ॥ सर्व सृष्टिकरता अखिलभर्त्ता पोषणहार देवेश हो ॥ मायातीत सर्वज्ञ निर्मल अंतर्यामी सर्वेश हो ॥ जयजय सर्वोतमदेव आत्म निरावरण भूतेश हो ॥ ४ ॥ देहइंद्रियप्राणमनादिदृश्यके द्रष्टा सर्वभरपूर हो ॥ सूक्ष्मस्थूलअतीत अगोचर द्वैतदृष्टिसे दूर हो ॥ निष्पापतापअतीत निष्कंटक परमप्रकाशक सूर हो ॥ जयजय सर्वात्मदेव आत्म सर्ववेदमें मशहुर हो ॥ ५ ॥ सर्वदेशमें सर्वभेशमें सर्वकालमें नित्य एक हो ॥ प्रधानपुरुष क्षेत्रज्ञक्षेत्रके जडचैतन्यकी टेक हो ॥ अगम्य असंग अनादि अयोनि मनबुद्धिसे व्यतिरेक हो ॥ जयजय सर्वात्मदेव आत्म निजमायाकर अनेक हो ॥ ६ ॥

स्वप्नवत यह प्रपंच मिथ्या आप त्रयकालाबाध्य हो ॥ बंधमोक्षज्ञानअज्ञानसे व्यतिरेक दुराराध्य हो॥अवेद्य अपरोक्ष स्वप्रकाश अव्यय निरावयव अगाध हो ॥ जयजय सर्वात्मदेव आत्म निर्वाणरहित अपराध हो ॥ ७ ॥

अज अविनाशी नित्यमुक्त सूक्ष्म सर्वनाम अनाम हो ॥ दीनदयाल अनाथनाथ कृपाल आनंदग्राम हो ॥ हरिप्रकाश स्तोत्र यह जो पढे तिसे विश्राम हो ॥ जयजय सर्वात्मदेव आत्मशांतिचित आराम हो ॥ ८ ॥

॥ इतिश्रीआत्मस्तोत्राष्टकभाषाछंदबावाहरिप्रकाशपरमहंसकृतसमाप्त ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ जगतविलासभाषाछन्द बावाहरिप्रकाशपरमहंसकृत प्रारंभ ॥

कबित ॥ खेलमै लगत कोई विषयमै गलत कोई शोकमै जलत कोई हरिके ध्यान है ॥ सुने नित्य राग कोई विषयसे वैराग्य कोई धनको त्याग कोई योग यज्ञ ठान है ॥ सुमाया प्रीति धारी कहूं ब्रह्मको विचारी कहूं होत है भिखारी कहूं भक्ति ज्ञान है ॥ हरिप्रकाश अज गोविंद सुराम भज झूठ जग आश तज मिले यूं भगवान है ॥ १ ॥

कोई मस्तहाल कोई मायामैं निहाल कोई भोगमैं बिहाल कोई नांगोही फिरत है ॥ कोई मनमारे कोई भोगन चितारे कोई वेदको विस्तारे कोईसुधन को हरत है ॥ कोई राजपाय कोई हरिगुण गाय कोई स्वधर्म बताय कोई मानता धरत है ॥ हरिप्रकाश अजगोविंद सुराम भज झूठ जग आश तजयूं दुख न परत है ॥ २ ॥

कोई मद्यमांस खाय कोई भांग श्रेष्ठ गायकोई सुख पाय कोई दुखिया रहत है ॥ कोई अश्वरूढ कोई खर चढे मूढ कोई बालयुवा बूढ कोई द्वंदको सहत है ॥ कोई देखे नार कोई भजे करतार काई निर्गुण उचारेकोई सगुण कहत है ॥ हरि प्रकाश अज गोविंद सुराम भज झूठ जग आश तज सुख इमि लहत है ॥ ३ ॥

कोई मानधारी कोई सुकर्म अचारी कोई होत है व्योपारी कोई सभी छड देत है ॥ कोई दान देवे कोई खोस सर्व लेवे कोई साधन को सेवे कोई हरि एक चेत है ॥ कोई जूआखेले कोई मूंडत है चेले कोई देखत है मेले कोई शांति सुख लेत है ॥ हरि प्रकाश अज गोविंद सुराम भज जूठ जग आश तजये आनंद को हेत है ॥ ४ ॥

सुंदर लसत कोई रोगसे धसत कोई मोहमें फंसत कोई सुगंगके किनारमै ॥ कोई तप तापे कोई सुदेतहै श्रापे कोई जपहूंको जापे कोई रहे है बाजारमें ॥ कोई धनवान कोई रंकहू अजान कोई मिल्यो भगवान कोई फिरत उजारमें ॥ हरिप्रकाश अज गोविंद सुराम भज जूठ जग आश तज सो सुख है विचारमैं ॥ ५ ॥

इति जगतविलास भाषा कवित छंदबावा हरिप्रकाश परमहंसकृत समास ॥

कवित आरती ॥ मंदर जो देहरूप आतमसुठाकुर कहै पूजन समग्रिसो आगे ही पहिछान तू ॥ देह अहं तज सोई धूप चढाय देत जीवईशभेदहान पुष्प यह मान तूं ॥ दीपक ज्ञानरूप ताल सुमृदंग ढोल श्रवणसे आदि सर्व हृदयमांहि ठान तूं ॥ अहं ब्रह्म शब्द यह हरिप्रकाश कहे ज्ञानी हीकी आरती सुन वेद मै प्रधान तूं ॥ १ ॥

सोरठा ॥ टांकबनूंकेपास, डेरासमैलखान जो ॥
हरिप्रकाश कर वास, इति श्री भयो ग्रंथ सकल ॥ २ ॥

दोहा ॥ मुख भक्ति निश्चय ज्ञान होय, वर्तण विषे वैराग्य ॥
हरिप्रकाश इन तीनसे, सुखी रहे बड भाग्य ॥ ३ ॥

कबित ॥ चितशुद्धिहेत पाहिले कर्म निष्काम करे फेर हूं उपासना सु सगुण पछान तूं ॥ जब चित ठहिरे तब बैठके विचार करे कौनवस्तु में जगईश कौन जान तूं ॥ वारवार दृश्यको तिरस्कार करे निशदिन एक हूं अद्वैतकर निजात्मा संधान तूं ॥ हरि प्रकाश जब द्वैत दृष्टि त्यागकरे तब चित शांत होय स्वब्रह्मानंद मान तूं ॥ ४ ॥

इति जगतविलास भाषा छंद स्वामी हरिप्रकाश परम हंसकृत समाप्त ॥
शुभमस्तु ॥ ॐ । शांतिः । शांतिः । शांति ॥

विक्रयार्थ तैयार.

वेदान्तग्रन्थाः ।

नाम.	की०	डा०म०
वेदान्त दर्शन (व्याससूत्र मूल)	०—२	०—॥
विरविजय श्रीयोगीराज मंगलनाथ विर०	०—२	०—॥
वेदान्त दर्शन अथवा ब्रह्मसूत्र—शारीरकभाष्यानुसार सूत्रभावार्थ प्रकाशिकाभाषाटीका, अधिकरणसूत्र, तथा उनका प्रसंग दर्शित करानेवाली सूची और अकारादिवर्णक्रमानुसार सूत्रावलोकनप्रकारसहित	१—१२	०—४
योगवासिष्ठसार संस्कृत....	५—०	१—०
योगवासिष्ठ संस्कृत सटीक	२०—०	२—८
आत्मबोध भाषाटीका	०—३	०—१
तत्त्वबोध भाषाटीका	०—२	२—॥
वेदान्तस्तोत्र भाग १ला....	०—२	०—॥
,, ,, भाग २ रा....	०—२	०—॥
चर्पटमञ्जरी मूल	०—॥	०—॥
,, ,, भाषाटीका	०—१	०—॥
मणिरत्नमाला भाषाटीका	०—१	०—॥
विवेकचूडामणि श्रीशङ्कराचार्यकृत मूल	०—४	०—१
,, ,, तथा भाषाटीका	०—१	०—॥
पाण्डवगीता मूल	०—१॥	०—॥
,, ,, तथा भाषाटीकासहित	०—१॥	—०॥
हरिमीडेस्तोत्र सटीक	०—१०	०—२
त्रोटक सटीक	०—६	०—?
अपरोक्षानुभूति सटीक (संस्कृतटीका)	०—६	०—१
अपरोक्षानुभूति भाषाटीका	०—६	०—१
वेदस्तुति सटीक (सान्वय भाषाटीका)	०—८	०—१
पञ्चदशीमूल	१—०	०—२
पञ्चदशी (पं० पीताम्बरजी-कृत) भा० टी०	१०—०	०—१२
द्वादशमहावाक्यविवरण	०—४	०—॥
पञ्चदशी (संस्कृतटीका)	२—०	०—६
नारदगीता	०—१	०—॥
रामगीता सान्वय भाषाटीका	०—६	०—२
रामगीता मूलमात्र	०—१	०—॥
शिवगीता सटीक....	१—०	०—३
शिवगीता मूल रेशमी गुटका	०—७	०—१
शिवगीता भाषाटीका	०—१२	०—२
गणेशगीता गुटका रेशमी	०—५	०—१
,, ,, सादी....	०—२॥	०—॥
गणेशगीता भाषाटीका	०—६	०—१
महावाक्यरत्नावली	०—२	०—॥
पञ्चीकरण टीकात्रयसह....	०—६	०—१
वेदसंज्ञा	०—६	०—१
श्रीमद्भगवद्गीता चिद्घनानंदस्वामिकृत गूढार्थदीपिका मूल अन्वय पदच्छेदसहितभाषाटीका	६—०	०—१४
श्रीमद्भ० गीता शंकरानन्दीस०	२—०	०—५
उत्तरगीता भाषाटीका	२—३	०—१
श्रीमद्भगवद्गीता श्रीधरीटीकासह	०—१४	०—३
श्रीमद्भगवतद्गीता मधुसूदनीटीका....	३—०	०—६
श्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका ग्लेजकागद	१—४	०—४
,, ,, रफ कागज ...	१—०	०—४
श्रीमद्भगवतद्गीता बड़े अक्षरकी		

पुस्तक	मूल्य	डाकव्यय
१६ पेजी मूलगुटका रेशमी पुट्ठेका ग्लेज कागज	०—१२	०—२
श्रीमद्भगवद्गीता खुला १६ पेजी रफ	०—१०	०—२
गीतामूलगुटका ६४ पेजी	०—२	०—२
श्रीमद्भगवद्गीता पञ्चरत्न बड़ा अक्षर गुटका १६ पेजी ग्लेज कागज	१—०	०—४
,, ,, तथा रफ कागज गुटका	०—१४	०—४
श्रीमद्भगवद्गीता पञ्चरत्न (द्वादशरत्न) गुटका चित्रसहित ३२ पेजी ग्लेज कागज....	०—१०	०—२
पञ्चरत्नद्वादशरत्न रफकागज	०—९	०—२
श्रीमद्भगवद्गीता पञ्चरत्न और द्वादशरत्न चित्रसहित रेशमी चिनीका गुटका	०—१०	०—२
गीता ३२ पेजी मूल गुटका रेशमी पुट्ठा.	०—३	०—१
गीतापञ्चरत्न छोटा अक्षर गुटका ६४ पेजी रेशमी	०—६	०—१
श्रीमद्भगवद्गीता सान्वयभाषाटीका दोहा सहित ग्लेज कागज	१—४	०—४
,, ,, सान्वय भाषाटीका रफकागज	१—०	०—४
गीता सुबोधिकाख्यभाषाटीकासह छोटा गुटका	०—१०	०—२
अनुभूतिप्रकाश सटिप्पण	१—०	०—१॥
श्रीबृहदारण्यकोपनिषत्—शांकरभाष्यानुसार वेदान्तदीपिकानामक भाषाटीकासहित	१०—०	१—८
ईशाद्यष्टोपनिषद् भाषाटीका	४—०	०—८
छान्दोग्योपनिषद् भाषाटीका	६—०	०—१२
उपदेशसहस्री सटीक	३—०	०—४
अष्टावक्रगीता भाषाटीका	१—०	०—३

वेदान्त—भाषा।

पुस्तक	मूल्य	डाकव्यय
न्यायप्रकाश (स्वामी चिद्घनानंदकृत)	५—०	१—६
तत्त्वानुसंधान भाषा. स्वा. चिद्. कृत	२—०	०—६
योगवासिष्ठ भाषा बड़ा ६ प्रकरण संपूर्ण	९—०	१—०
योगवासिष्ठ वैराग्य और मुमुक्षुप्रकरण (स्थूलाक्षर)	१—८	०—६
योगवासिष्ठ वैराग्य और मुमुक्षुप्रकरण (स्थूलाक्षर)	०—१२	०—३
विचारमाला गोविन्ददासकृतभाषाटीका....	०—१२	०—३
विचारदीपक स्वामी ब्रह्मानन्दकृत	०—१४	०—३

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

हरिप्रसाद भगीरथजी,

कालकादेवीरोड, रामवाड़ी—मुंबई.